Sanskrit-kaviyoon-ka-
Samai

by

Surya prasad.

pub: K.V.P. patna 1901

131 pages

DA
13/2/23

Hindi Sanskrit

हरिमोहन प्रामाणिक प्रणीत

और यशोदानन्दन प्रामाणिक प्रकाशित

भारतवर्षीय

संस्कृत कवियों का समय निरूपण

जिस को

म० कु० बाबू रामदीन सिंह

के आज्ञानुसार

पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र ने

बंगला से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।

बाबू चण्डीप्रसाद सिंह ने छापकर प्रकाशित किया।

१९०१

प्रथम बार] [मूल्य १॥)
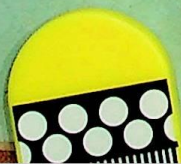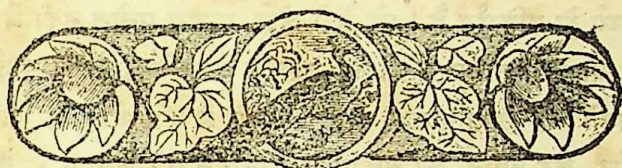
भूमिका ।

—०—

भारतवर्षीय कविगण के जीवनसमय निरूपणविषयक कोई पुस्तक नहीं है; ऐसा कह कर कुछ लोग मुंह बिचकाते हैं। यहां इस न्यूनता का हेतु यही है कि इतिहास लिखने की परिपाटी नहीं है। महापण्डित विलसन् महाशय आदि लोगों ने इस विषय की खोजखाज में डट के यत्न किया अवश्य; पर भली भांति इस कार्य के पूरा करने में कोई समर्थ न हुआ। हां इतना कहेंगे कि सौभाग्य से उन की देखादेखी अब यहां वाले भी इस विषय में कुछ चूं चां करने लगे हैं।

यह उद्दिष्ट मनोरथ थोड़ी रगड़ से सिद्ध नहीं हो सकता। इस के मुख्य दो कारण हैं। एक तो इस विषय की अच्छी कोई पुस्तक रची नहीं मिलती है। दूसरे आजकाल यहां के प्राचीन इतिहास के खोजी विद्वान् लोग अन्यान्य घटनाओं के साथ प्रसंगवश इस विषय में जो कुछ लिखते भी हैं उस में भी परस्पर इतना मतभेद दीखता है कि हमलोगों से उस की छान अनहोनी है। कहने को राजतरङ्गिणी आदि इतिहास के दो एक ग्रन्थ हैं पर उन में एक तो भारतवर्ष भर का इतिहास नहीं। दूसरे उन में प्रायः राजाओं के ही वर्णन मिलते हैं। कवियों के जीवन-चरित लिखने के लिये उन के रचयिताओं का सङ्कल्प न था। इतनी कठिनता रहते भी मैं उन्हीं विद्वानों को मार्ग में अगुआ कर के नाना ग्रन्थों

से ग्रन्थकारों के वचन सङ्कलित कर इस नवीन पुस्तक की रचना करता हूं।

भारतवर्षीय कवियों के समयनिरूपण में विलोड़नपूर्वक अवगाहन मेरे सामर्थ्य से बहिर्भूत है। सो जैसे कोई मनुष्य पुनीत नदी में हेल कर नहाने की योग्यता न रखता हो तो उस के जलविन्दुओं से मार्जन मात्र कर के अपने को शुचि समझ लेता है; तैसे मैं भी थोड़े से कवियों का नाम निर्देश कर अपने को बड़भागी गुनावन कर लेता हूं। केवल इस कलियुग में जितने कवि हो गये हैं; जब उन का भी लेखा हमारा लगाया नहीं लगता तो पुराने युगों में जो ऋषि लोग काव्य करगये हैं; उन की गिनती हम कैसे कर सकते हैं? मैं ने विशेष परिश्रम कर के जो थोड़े से कवियों के नाम इकट्ठे किये हैं; उन की संख्या भूतपूर्व कवियों के शतांश का एक अंश भी न हो सकेगी। अतः इस विषय में मेरा आग्रह से हाथ लगाना कालि दास के कहे उवखान (उपखान) को चेत कराता है—

"तितीर्षुं दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्"।

अर्थात्—"मूढ़ चहइं पनसूइ चढ़ि, सागर पार पहूंच"।

अथवा—"प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः"।

अर्थात्—"लम्ब लभ्य फल लेन जिमि, ठिनगो बांह उठाव"॥

मैं ने इस पुस्तक में जो कुछ लिखा है; वह बहुत कर के अपनी ही खोज और अटकल के ऊपर भरोसा कर के लिखा है। इस से बहुत संभव है कि मैं भूला होऊं। जो लोग इसे पढ़ें और जानकार होने के कारण मेरी भूल पावें किंवा अधिक खोजखाज करने से सत्य निर्णय कर सकें तो उन्हें उचित है कि इस विषय के जिज्ञासुओं की अभिलाषा पूरी करने के मनोरथ से सर्व साधारण के समीप अपना मत प्रकाश करें उस से न केवल मैं उन का कृतज्ञ होऊंगा बरन जगत् भर का परमोपकार मानूंगा।

बहुत से कवि और पण्डितगण ऐसे हो गये हैं कि जिन के ठीक समय का निरूपण अब अशक्य है। उन के भी मोटा मोटी समयनिरूपण

का केवल यही एक अवलम्ब है कि जिन ग्रन्थकर्त्ताओं का समय प्रमाणों से निरूपित हो ; उन के बनाये ग्रन्थों में यदि उन कवियों और पण्डितों का नाम मिलता हो तो उस से जाना जाता है कि वे अमुक समय से आगे हो चुके हैं।

कवियों के विषय में लेखनी चलाने के पहिले उन की पहिचानने के लिये कवि का लक्षण जानना अपेक्षित है। अलङ्कारकौस्तुभ में कहा है :—

"सबीजो हि कविर्ज्ञेयः स सर्वागमकोविदः ।
सरसः प्रतिभाशाली यदि स्यादुत्तमस्तदा ॥"

अर्थात्—कविताशक्ति अथवा काव्य की रसज्ञता पूर्व जन्म के संस्कार से जिस जन में जयमान हो वह कवि है। यदि वह सर्व शास्त्रपारग, प्रतिभाशाली * और रसानुभावक हो तो उत्तम कवियों में गिना जाता है।

साहित्यदर्पण १० म परिच्छेद विशेषालंकार के प्रकरण में कहा है :—

"दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम् ।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमपि कवयो न ते वन्ध्याः ॥"

अर्थात्—जिन के बहु विध गुण कलित, वयन प्रलय पर्यन्त।
टिकि जग सुखद सुदिवगत, उकस न वन्ध्य कवि सन्त ॥

संस्कृत के साहित्याचार्य लोग दृश्य † और श्रव्य § के भेद से काव्य के दो विभाग बतलाते हैं। और इन्हीं दो विभागों में साहित्यशास्त्र की परिसमाप्ति करते हैं। गद्य, पद्य और मिश्र इन तीनों भेदों से श्रव्यकाव्य तीन प्रकार का है। पद्यकाव्य भी तीन प्रकार का है। महाकाव्य, खण्डकाव्य और कोषकाव्य। पूर्वापर सम्बद्ध वर्णनविहीन स्फुट श्लोकों के

---

* प्रतिभा का लक्षण यथा—"प्रज्ञा नवनवोल्लेखशालिनी प्रतिभा मता"। अर्थात् आप ही आप जिस बुद्धि में उत्तरोत्तर अपूर्व ज्ञान की बातें प्रस्फुरित होती रहती हैं, उस बुद्धि को प्रतिभा कहते हैं।

† जिस में की वर्णित बातें सर्वांग कर के दिखलाई जावें जैसे नाटक आदि। अनु०।

§ जिस में की वर्णित बातें केवल सुन ली जावें। यथा रघुवंशादि। अनुवादक।

समूहों को कोषकाव्य कहते हैं । यथा अमरुशतक, सूर्यशतक इत्यादि । यद्यपि कोषकाव्य का लक्षण पूर्वाचार्यों ने ऐसा कहा है तौ भी मैं अमुक शब्द के अमुक अर्थ, लिङ्ग और वचन इत्यादि हैं ; इन बातों के बतलाने वाले निघण्टु ग्रन्थों को उन में काव्यलक्षण विना पाये भी कोषकाव्यों में गिन लेता हूं और इसी परिभाषा के अनुसार अमर सिंह आदि कोषकारों को भी कवियों में लेखता हूं ।

कलिकाल के लगे आज ४९६७ वर्ष बीते । विक्रमादित्य का संवत् १९२३ है। शकाब्द १७८८ और बंगला वर्ष (बंगाब्द) १२७३ (१) खीष्टाब्द १८६६-६७ वर्तमान है । इन में से संवत् चान्द्र, शकाब्द सावन (२) और बंगलावर्ष सौर मास से माना जाता है । खीष्टाब्द (ईसवी) का वहुत कर के प्रति वर्ष सौर पौष के अठारहवें दिवस को आरम्भ होता है । कितने लोग कहते हैं (३) कि युधिष्ठिरसंवत् के ३०४३ वर्ष बीतने पर विक्रमादित्य के राज्यकाल में उन का संवत् चला (४) परन्तु राजतरंगिणी के लेख अनुसार जाना जाता है कि कौरव पाण्डवों का जन्म कलियुग के ६०५३ वर्ष बीतने पर हुआ (५) । इस से आज कलियुग लगे ४९६७ वर्ष और विक्रम के

---

(१) बंगाली १२८० संवत् भाद्रपद की सौर चतुर्थी को हरिमोहन जी हरिलोक सिधारे । सो यह पुस्तक बनने पीछे २९ वर्ष और ग्रन्थकर्त्ता के देहान्त उपरान्त २२ वर्ष बीतने पर आज प्रकाशित होती है । यह सूचना प्रकाशक देता है ।

(२) "सौर संवत्सरे षड् दिवसाधिकः
सावन संवत्सरो भवतीति मलमासतत्वम्" ।

अर्थात् सौर संवत्सर की अपेक्षा सावन संवत्सर में छ दिन अधिक होते हैं ।

(३) कितने एक पुराणादि की यही संमति है ।

(४) उर्दू ज़ुबान में तसनीफ़ की गई 'आराइशमहफ़िल' नामे किताब में ज़िक्र आया है कि युधिष्ठिर का संवत् ३०४४ साल गुज़रने बयद विक्रमादित्य का संवत् जारी हुआ ।

(५) "शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।

संवत् १६२३ वर्ष बीते पर दोनों का लेखा लगाते हैं तो युधिष्ठिरसंबत् के २३९० वर्ष बीतने पीछे विक्रमादित्य का संवत् प्रचलित हुआ; ऐसा बूझ पड़ता है।

मङ्गलाचरणश्लोक।

नत्वेशं द्रुहिणं हरीन् (१) गणपतिं वाणीं गुरुं भार्गवं
वाल्मीकिं भरतं पराशरमपि व्यासं वशिष्ठादिकम्।
कर्तुं कालनिरूपणं हि क्रियतां प्राक् सत्कवीनामहं
सक्तः किन्तु न वेद्मि किं मम परं हास्यास्पदत्वं भवेत्॥

कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरु पाण्डवाः॥"

अर्थात् चौ०—कलियुग छ सौ तिरपन संवत।
बिति भये कुरु पाण्डव उतपत॥

कल्हणकृत राजतरंगिणी प्रथम तरंग का ५१ श्लोक।

(१) इस श्लोक में हरि शब्द का बहुवचन में प्रयोग करने का भाव यह है कि एक शेष कर के हरि शब्द से विष्णु, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र और कपि हनुमान् जी को भी प्रणाम पहुंचे क्योंकि हेमचन्द्र और मेदिनीकोष में हरि शब्द को विष्णु आदि शब्द का अलग २ वाचक बतलाया है। विष्णु आदि कवि हैं। हनुमान् जी भी कवि थे क्योंकि उन ने महानाटक बनाया। उन्हीं के बनाने से इस नाटक का नाम 'हनुमन्नाटक' ऐसा प्रसिद्ध है। कोई २ कालिदास को महानाटक का कवि समझते हैं पर दश रूपकावलोक में महानाटक का यह—

'बाह्वोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य सुतरामय मेव दोषः।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्॥'.

अर्थात्—हौथाइको न पहिले बलतौलि सोल्यौं हौ परशुराम शिवचाप बड़ो पुरानो। एतौक चूक बनि आइ छिमी सुमेरो स्याने चितै शिशुविनोद विनोद मानै॥५५॥ श्लोक 'हनुमन्नाटक' का है ऐसे उल्लेख से उठाया गया है। यों जब पुस्तक में लिखा प्रमाण मिलता है तब विरुद्ध दन्तकथा पर प्रतीति क्यों कर सकते हैं। हनुमान् की बनाई संगीतविद्या आदि की कई पुस्तकें सुनाई देती हैं। श्रीभगवद्गीता पर हनुमद्भाष्य है। हनुमान् के रचित कुछ

अर्थ।

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र हनुमान्, गणेश, सरस्वती, बृहस्पति, शुक्राचार्य, बाल्मीकि, भरतमुनि, पराशर, व्यास और वसिष्ठ (१) इत्यादि को प्रणाम कर के कुछेक सत्कवियों के जीवनसमय निरूपण में अभिरता हूं पर नहीं जानता हूं कि ठट्ठे में उड़ाया जाऊंगा वा नहीं।

ग्रन्थकार का संक्षिप्त जीवनचरित।

शके १७४८ पौष सौर पंचमी मंगलवार को नदिया के पास शान्तिपुर गावँ में हरिमोहन प्रामाणिक का जन्म हुआ। इन के पिता का नाम राधामाधव प्रामाणिक और पितामह का नाम रामचन्द्र प्रामाणिक था। रामचन्द्र प्रामाणिक ने अपने घर में श्री श्री राधारमण जी की अर्चामूर्ति स्थापित करा के उन की सेवा में तथा और और नाना प्रकार के शुभकर्मों में भी अच्छा धन लगाते थे। उस से उन का समाज में बड़ा गौरव भी था।

राधामाधव प्रामाणिक ने पठद्दशा में संस्कृत और फ़ारसी सीखी। सयाने होने पर कलकत्ते में टिक के अंग्रेजी सीखे। पहिलेपहिल जब यहां अंगरेजीशिक्षा का प्रचार होने लगा, उन दिनों शान्तिपुर में जिन कुछेक लोगों ने अंगरेजी सीखी उन में से कितने एक इन्हीं के सिखाये थे। विद्या-

---

श्लोक पद्यावली में उठाये हैं। अनुमान होता है, इन सभों का निर्माता हनुमान् नाम का कोई दूसरा विद्वान् रहा होगा। सेतुबन्ध में वणिग्गण को मिली खण्ड प्रशस्ति भी हनुमान् की बनाई है (The Pandit No. 49) इस 'खण्ड प्रशस्ति' का चौदहवां श्लोक भागवत में आया है और ७६ वां श्लोक कर्णाटक के राजवर्णनात्मक 'महापद्म' नाम पुस्तक में छठवें श्लोक के स्थान में आया है। (The Pandit No. 51. P. 75 and Ditto No. 58.p. 232.)

(१) ये सब के सब आदि कवि हैं। अतः इन में से प्रत्येक को प्रणाम करता हूं। इन का समयनिरूपण अनावश्यक है कारण नाना पुराणों में विस्तार से इन का वर्णन है।

भ्यास में ये बड़े यत्नशील थे। अपने घर में एक मौलवी नौकर रक्खा था। बहुत से विद्यार्थियों को संस्कृत, अंगरेजी और फ़ारसी सिखाते थे। इन का बनाया कोई पूरा ग्रंथ हमारे लोचन गोचर नहीं हुआ। हां, संस्कृत के श्लोक और बंगाली में कुछ गीत, भजन आदि जो इन के बनाये मिले उन्हीं के देखने से अधिकांश में उन की बड़ी गुण दक्षता द्योतित होती है। पाठकों के प्रति प्रकट होने के ध्यान से राधामाधव प्रामाणिक का बनाया एक भजन यहां लिख के दरसाया जाता है।

ताल ठेका राग बसन्त बहार।

चन्द्रमल्लिका यूथि विकशित हय (आहा)
कुञ्जे शोभे अतिशय।
गुञ्जरे मधुकर मनोहर रङ्गे।
हरिखेलत नवगोपी सङ्गे॥
मोहनलाल, लाल, लाल हे।
बाजत ताल तरङ्गे।
नाचत मुरहर मोहन त्रिभङ्गे॥
डारे गोलाल, आजु रङ्ग भेइ भाल।
गावो ये रसाल कोहि धरे करताल;
पीत बसन शोभे श्रीनन्दकुमार,
नील बसन राधार दोंहबदन दोंहे
निरखे अपाङ्गे॥

"नवल बल्लवी बल्लभ श्याम *।
नन्दनँदन पटपीत नीलपट राधाकेलि ललाम। मंजु निकुञ्ज निहाल(१)निवारि जुही अलिगुंजतमाते। चाँदनि चटक नटत नट नागर मोहन सुघर सुहाते॥ कोउ करताल बजावत ताल तरल कर गान रसाला। बलित त्रिभंगी ललित लुभावन लाल उड़ाव गुलाला॥ दम्पति उमगि वदन दोउ दुहु के तक स-कटाक्ष तिरीछे। आजु भले रंग लखि बलि जैयत राधामाधव पीछे॥"

---

* यह पद ऊपर के बंगाली पद का उल्थामात्र है। (१) प्रफुल्लित।

आज लों यह भजन शान्तिपुर में समय २ पर कीर्तन में गान किया जाता है।

राधामाधव प्रामाणिक की उदारता और सच्चरित्रता के विषय में सर्वदा लोगों के मुख से प्रशंसा सुनने में आती है। इन के तीन पुत्र थे। जेठे का नाम राधाश्याम, मझिले का विश्वम्भर और लहुरे का हरिमोहन प्रामाणिक था। जेठे और मझले युवावस्था ही में परलोक चल बसे। बाल्यावस्था में हरिमोहन ने संस्कृत और फ़ारसी तथा थोड़ी सी अंगरेज़ी भी अपने पिता से सीखी। युवावस्था में कविराज कालिदास सेन से संस्कृत और मुन्शी कीनूनामे एक मुसलमान मौलवी से फ़ारसी भली भांति सीखी। सयानपने में किसी से अंगरेज़ी नहीं सीख पाये पर निज श्रम से जैसे संस्कृत और फ़ारसी में व्युत्पन्न थे, वैसे ही अंगरेज़ी में भी विशेष विद्वान हुए थे। नाना भाषाओं के सीखने में इन की अद्भुत बुद्धि थी। इन ने बहुत सी विद्यायों के आरम्भ में पढ़ने की पोथियां और कोष तथा व्याकरण इकट्ठे कर उन की सहायता से न केवल आज कल यूरप और भारतवर्ष भर में प्रचलित बहुतेरी बोलियां वरन कितनी एक पुरानी बोलियां भी सीख लीं। निज विद्योपार्जन करते २ जहां कहीं सन्देह रह जाता उसे जब कभी उस के जानकार किसी विद्वान् से भेंट होती तो पूछ कर मिटा लेने में चूकते नहीं थे (१)।

---

(१) नाना भाषा सीखने के विषय में हरिमोहन का कैसा कुछ अनुराग और उद्योग था तिस के प्रकट होने के लिये नीचे दो चिट्ठियों की प्रति उतारी जाती है। पहिली चिट्ठी ई० १८७१ सन् की पहिली मार्च को शान्तिपुर से उन ने रेवरेण्ड सामुएल् डाइसन महाशय के लिये लिखी थी। दूसरी चिट्ठी बंगला १२७८ संवत् की सौर प्रथम तिथि आश्विन को कलकत्ते के बेनीटोला निवासी श्रीयुक्त पण्डित नवद्वीपचन्द्र गोस्वामी महाशय ने इन के पास लिख पठाई थी। पहिली चिट्ठी की प्रति यह है।

Sir,

* * * * * *

An attentive perusal of the Greek Gospels has incited in me a

१७७७ शक में हरिमोहन प्रामाणिक ने संस्कृत में कोकिलदूत नाम काव्य बनाया और उसे १७८५ शक में छपवाया। इस काव्य पर जो

---

great curiosity of reading the original Pentateuch. I presume therefore to ask your directions as to which Hebrew and English Grammer may be found to be the most appropriate for a beginner.

I have &c.

Hari Mohun Pramanik.

अर्थात्—महाशय!

यवनभाषा में जो ख्रीष्टीय धर्मपुस्तक है उस में उल्लिखित सुसमाचारों की ध्यानपूर्वक समालोचना करने से मेरे चित्त में मूल पेण्टेट्यू पढ़ने की अत्यन्त अभिलाषा हो आई है। अतएव मैं आप से संमति पूछता हूं कि इब्रानी और अंग्रेजी भाषा की कौन सी व्याकरण पुस्तक आरम्भकर्त्ता के लिये सब से अधिक उपयोगी होगी।

आप का इत्यादि

हरिमोहन प्रामाणिक।

दूसरी चिट्ठी का उल्था यह है—

कल संक्रांति थी। उसी दिन श्रीमद्भागवत का लिखाना आरम्भ किया गया। गोस्वामी भट्टाचार्य की टिप्पणी और जितनी टीका मिलती हैं उन को तथा गोस्वामी के ग्रन्थों की तालिका भी भरसक जितना शीघ्र हो पठाओ तो उत्तम है। श्रीश्री ७ ग्रन्थ का लिखना तुम्हारी बाट हेरने में रुका है। इन सब टीका टिप्पणियों के बिना पाये वह कैसे लिखा जा सकता है? मैं एक ही पुस्तक में साथही सब टीका लिखवा रहा हूं। तुम्हारा वह जेन्दभाषा की व्याकरण आज लों नहीं पाया। उस के लिये फिर लिखा।

ते * * * के *

शुभाकांक्षी

श्री नवद्वीपचन्द्र गोस्वामी।

पाठक लोग ध्यान दें कि इन दोनों चिट्ठियों के लिखे जाने के समय में हरिमोहन की वय ४५ वर्ष की थी। इस के दो वर्ष पीछे उन का देहान्त हुआ।

संस्कृतटीका रची गई उस के कर्ता संस्कृत के अध्यापक कालिदास सेन और जो बंगाली में उलथा हुआ उस के कर्त्ता दीनदयाल प्रामाणिक निर्देश किये गये। दीनदयाल कोकिलदूत काव्य के कवि के भतीजे हैं। वास्तव में सिगरी कृति हरिमोहन ही की थी। यह काव्य उन ने बिना मूल्य बांटने के लिये छपवाया था।

संस्कृत में कोकिलदूत काव्य के बनाने से पहिले उन ने अंगरेजी में 'ऐन ऐड्रेस टु यङ्ग बंगाल' नाम एक सन्दर्भ निर्माण किया था। उस में आर्यधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। वह आज लों नहीं छपा। उन ने १७८७ से १७९३ शक तक अपना समय 'कवियों के समयनिरूपण' और 'कमलाकरुणाविलास' इत्यादि ग्रन्थों के निर्माण में बिताया। उन में से कितने एक का सूत्रपात ही होने पाया और कितने एक समाप्ति के पास भी पहुंचे थे। 'कमलाकरुणाविलास' यह संस्कृत में नाटक है (१)।

---

(१) १८९१ खीष्टाब्द की पन्द्रहवीं (?) तारीख़ को कलकत्ते में बास करते हरिमोहन प्रामाणिक ने अपने पुस्तकों की एक तालिका बनाई। उस की प्रति नीचे लिखी जाती है।

IN SANSKRIT.

1. A Dramatic poem founded upon the subject of an Episode of the Puran and written also with reference to the late famine, containing some moral precepts as regards the acquisition and the proper use of wealth.

IN VERNACULAR.

2. Sanskrit Dissertation of Rhetoric translated for the first time.

3. A Chronological Biography with critical remarks of the some eminent Indian poets.

4. A Philosophical work with a brief synopsis showing the coincidence existing in some points between the Eastern and the Western tenets of philosophies.

उन पुस्तकों में से 'कवियों का समयनिरूपण' आज बहुत दिन पीछे

---

5. An Alphabetical Lexicon showing the different modes in which Sanskrit words may be written.

6. A new guide for learning easily Rules for distinguishing the Numbers and Genders of certain Sanskrit words.

NOT YET COMPLETE.

7. Comparative Grammar.

8. The Common Source of Religion.

संस्कृत के ग्रन्थ।

(१) पुराण के किसी कथानक सम्बन्धी विषय का एक नाटकाकार काव्य जो गत अकाल के प्रकरण में लिखा गया और जिस में धनोपार्जन और उचित व्यय के उपदेश में नीति-वाक्य हैं।

भाषा के ग्रन्थ।

(२) संस्कृतसाहित्य विषयक एक प्रबन्ध जो पहिलेपहिल अनुवाद किया गया।

(३) भारतवर्ष के कुछेक कवियों का ऐतिहासिक क्रम से जीवनचरित जिस में कुछ अपना भी मत दिया है।

(४) संक्षिप्त समालोचना सहित एक दार्शनिक प्रबन्ध जिस में पूर्वी और पश्चिमी दर्शन शास्त्रों के मूल नियमों के कहीं २ पर साम्य दरसाया है।

(५) संस्कृत शब्दों के लिखने के भिन्न २ नियमों को दरसानेवाला अकारादि क्रम से एक कोष।

(६) संस्कृत भाषा के शब्दों के वचन और लिंग के भेदों के नियमों को जो सरल रीति से लिखा है।

जो ग्रन्थ पूरे नहीं हुए।

(७) एक बृहद् व्याकरण।

(८) सब मतों का एक ही मूल।

छाप के प्रकाशित किया जाता है (२) यूरोप में जितनी बोलियां पहिले बोली जाती थीं और आज भी जो प्रचलित हैं उन सबों की जड़ संस्कृत-भाषा है। इस बात को सिद्ध कर दिखलाने निमित्त वर्षों श्रम कर के बहुत से प्रमाण हरिमोहन प्रामाणिक ने इकट्ठे कर एक विशाल पुस्तक प्रस्तुत करने में लग्गा लगाया पर अहो अकालमृत्यु ने उन्हें ग्रास कर के उस कार्य को अधूराही पड़ा रहने दिया।

१७९५ शक भाद्रपद की सौर चतुर्थी को हरिमोहन प्रामाणिक का ४६ वर्ष ८ मास की वय में परलोक हुआ। मृत्यु के कुछ वर्ष पहिले से ये घर के काम धन्धों के बड़े झञ्झट में थे। तौ भी ऐसे धीर पूर थे कि अपने को संसार के लपेट से बचाते हुए अपने नित्य कृत्य में कुछ भी रुकावट को अपने पास फटकने नहीं देते थे। बड़े तड़के उठ कुछ बेर तक धर्मचिन्तवन करते। तदुपरान्त दिन के ग्यारह बजे तक पठन पाठन में रहते थे। पश्चात् नहा धोकर दो घण्टे तक पूजा पाठ करते। तीसरा पहर फिर पढ़ने में बिताते थे। सांझ को गृह में स्थापित देवता के मन्दिर में जा हरि के नाम कीर्त्तन और भजन में मग्न रहते थे। रात को फिर नौ बजे से ग्यारह बजे तक पढ़ने में दत्त चित्त रहते थे। इतना उन का नित्य नियम था। किसी का दुःख उन से नहीं देखा जा सकता था। भरसक सब को दुःख मिटाना और पात्र में दान देना उन के जीवन का सार था। उन्हें 'अजातशत्रु' कहें तो झूठ बढ़ावा न होगा क्योंकि

---

[२] पाठकों के प्रति इस बात का निवेदन करना उचित जंचता है कि मैं ने इस ग्रन्थ में कुछ भी कहीं उलट पुलट नहीं किया। ग्रन्थकार इस ग्रन्थ को जैसा लिख गये मैंने उस को वैसा ही अविकल छपवाना उचित जाना। यद्यपि आज ग्रन्थकार के परलोक सिधारने पीछे बाईस वर्ष व्यतीत हो चुके और इस ग्रन्थ में लिखित बहुतेरी बातों के निर्णय के विषय में विशेष खोजखाज होते रहने से जो बात पहिले अज्ञात थी वह पीछे ज्ञात हुई है तौ भी मैंने बिन्दु विसर्ग भी कहीं परिवर्त्तन नहीं किया।

श्री यशोदानंदन प्रामाणिक प्रकाशक।

बड़े ही मिलनसार थे। उन के पुनीत जीवन का बहु भांति गुणगान आज लों लोगों के मुख से सर्वदा कर्णगत होता है।

ग्रन्थकार का इतना संक्षिप्त जीवनचरितप्रकाशक (श्री यशोदानन्दन प्रामाणिक) ने लिखा।

इस में जिन कवियों का समयनिरूपण किया जाता है उन का समय पांच भागों में बांटा गया है। यथा प्राचीन, विचला, अर्वाचीन, नवीन और वर्त्तमान इसी क्रम से समयनिरूपण किया जायगा।

अनुवादक।

सूचीपत्र।

प्रथम काल।

द्वितीय काल।

तृतीय काल ।

चतुर्थ वा अन्त्यकाल।

वर्त्तमान काल।

श्रीगणेशाय नमः ।

भारतवर्षीय

संस्कृत कवियों का समयनिरूपण ।

प्रथमकाल (प्राचीनकाल) ।

गुणाढ्य * ।

कथा सरित्सागर से जाना जाता है कि गुणाढ्य कवि कात्यायन वररुचि के समसामयिक थे । यह कात्यायन एक वैदिक मुनि थे । इन ने स्वयं बहुत से ग्रन्थ बनाये हैं जिन के नाम ये हैं । वाजिसूत्र, सामवेद का उपग्रन्थ, स्मार्त श्लोक, कर्मप्रदीप, अथर्ववेद की ब्राह्मणकारिका और महासागर के समान गम्भीर पाणिनीय व्याकरण पर महावार्तिक रचा है । वेद की सर्वानुक्रमणी भी इन्हीं कात्यायन मुनि की बनाई है । इन के सर्वानुक्रमणी नामक ग्रन्थ के भाष्यकार षड्गुरु शिष्य ने अपने बनाये भाष्य में कात्यायन के विषय में बहुत कुछ ज्ञातव्य बात लिखी है । सब का स्थूल मर्म यह है । 'वैदिक ग्रन्थकारों के बीच पहिले शौनक दूसरे उन के शिष्य आश्वलायन तीसरे कात्यायन और चौथे पतञ्जलि हुए' । पतञ्जलि ने कात्यायन के वार्तिक पर भाष्य किया है और कात्यायन के थोड़े ही पीछे वे उदय हुए थे । पांचवें ग्रन्थकार व्यास हैं । इन व्यास ने पतञ्जलि रचित योगसूत्र नाम ग्रन्थ की टीका लिखी है और सम्पूर्ण वेद का संग्रह कर के वेदव्यास नाम से संसार में प्रसिद्धि पाई । गुरु और शिष्य अथवा पिता और पुत्र जैसे क्रम से एक दूसरे के पीछे होते हैं, प्रायः इन सब वैदिक मुनियों में वैसाही क्रम होना सम्भव है। परन्तु ऋषि लोगों की ग्रन्थरचना के समय का विवेचन करने से उन के निज विद्य-

* इन से पहिले जो भास इत्यादि कवि हुए हैं उन का केवल नाम भर सुनने में आता है । उन के रचित कोई काव्य आदि आज तक हम लोगों को नहीं मिले ।

मानता के समय का क्रम ठीक नहीं बैठता है। देखो पातञ्जल योगदर्शन का भाष्य बनाने मात्र से तो वेदव्यास पतञ्जलि मुनि के शिष्य अथवा उन की अपेक्षा आधुनिक नहीं माने जा सकते क्योंकि अनेक पुराणों में वेदव्यास ही को और सब वैदिक मुनि लोगों का गुरु लिखा है। सो जो कुछ हो। षड्गुरु शिष्य के कथनानुसार कात्यायन मुनि बहुत प्राचीन जान पड़ते हैं * अमर कोष में जो दुर्गा भगवती के नामों में एक कात्यायनी नाम भी लिखा है; बहुत से लोग उस का निर्वचन (व्युत्पत्ति) ऐसा करते हैं कि भगवती दुर्गा किसी कल्प में कात्य अथवा कात्यायन मुनि की कन्या के रूप में अवतार लिये थीं। इस कारण उन का एक नाम 'कात्यायनी' भी है। अतएव यह भी कात्यायन मुनि के अति प्राचीन होने में एक प्रमाण है। परन्तु कथा सरित्सागर के कर्त्ता कहते हैं कि कात्यायन वररुचि, महादेव के शाप से वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी नगरी में जन्मे थे †।

---

* पाणिनि की भूमिका में 'गोल्डष्टुकर' महाशय लिखते हैं कि कात्यायन पतञ्जलि जी के समय में थे। अर्थात् वे सन् ईस्वी से १४०—१२० वर्ष पहिले जीवित रहे होंगे।

† इस से यह बात विवेचना से सिद्ध होती है कि ये पहिले कात्यायन मुनि के नाम से प्रसिद्ध थे। पीछे वेही महादेवजी के शाप से कलियुग में जन्म लेकर वररुचि नाम से ख्यात हुए। इसी लिये कहीं २ पर उन्हें कात्यायन वररुचि भी कहते हैं क्योंकि कलाप व्याकरण के रचयिता सर्ववर्माचार्य ने जोकि शालिवाहन नाम किसी राजा के मन्त्री थे, इन्हीं कात्यायन वररुचि के व्याकरण से सब कृदन्त शब्द व्युत्पन्न होते विचार अपने व्याकरण में पृथक् कृदन्त प्रकरण नहीं लिखा। इसी ध्यान से कलापव्याकरण के वृत्तिकार दुर्गसिंह लिखते हैं कि—

> "वृक्षादिवदमी रूढ़ाः कृतिना न कृताः कृतः।
> कात्यायनेन ते सृष्टा विबुद्धिप्रोति बुद्धये॥"

अर्थात् वृक्ष आदि शब्दों की नाईं कृदन्त के सब शब्द रूढ़ (स्वार्थ के बोधन में प्रसिद्ध) हैं। इस हेतु से सर्ववर्माचार्य ने पृथक् कृदन्त की रचना न की। क्योंकि बोधार्थ कात्यायन ने उन की प्रक्रिया रची है। इस स्थान पर दुर्गसिंह की वृत्ति पर पञ्जिकाकार 'त्रिलोचनदास' ने लिखा है 'कात्यायनेन वररुचिशरीरं परिगृह्य' इत्यादि अर्थात् कात्यायनही वररुचि का शरीर धारण कर के इत्यादि। इस से भी कात्यायन ने दूसरा जन्म लिया, यह आशय बूझ पड़ता है। गरुड़पुराण में जो कुमार नामक व्याकरण का उल्लेख है उस में कार्त्तिकेय वक्ता और कात्यायन श्रोता कर के लिखे हैं। इन बातों से जानना चाहिये कि कात्यायन मुनि, वररुचि से न्यारे कोई और ही हैं।

कात्यायन लड़कपन ही से अति अद्भुत बुद्धिमान् थे। वे नाट्यशाला में किसी नाटक का खेल देखते और सुनते तो उसे अपनी माता के निकट आ के समग्र आद्योपांत कह दे सकते थे और जनेऊ होने के पहिले ही से व्याड़ि (व्यालि) आदि मुनियों से सुने प्रातिशाख्य को सहज में कण्ठाग्र कह जा सकते थे। कुछ काल पीछे वे वर्ष मुनि के शिष्य हुए और थोड़ेही समय में वेद वेदांग में इतना अधिक व्युत्पन्न हो गये कि एक वार व्याकरणविषयक विचार में पाणिनि से भी बढ़ गये थे। केवल महादेव के ही अनुग्रह से अन्त में पाणिनि की जीत हुई और कात्यायन ने महादेव जी का क्रोध शांत होने के लिये स्वयं पाणिनि के व्याकरण को पढ़ कर उस पर वार्तिक बनाया। पश्चात् वे पाटलिपुत्र के महाराज नन्दराज के मंत्री पद पर नियुक्त हुए। सोमदेव के लिखे ऊपर उक्त वर्णन के पढ़ने से कात्यायन बहुत आधुनिक जान पड़ते हैं। इस का कारण यह है कि कात्यायन को जिस नन्द राजा का मंत्री कर के निर्देश किया * है वह चन्द्रगुप्त के ठीक पहिले पाटलिपुत्र का राजा था। इतिहास जाननेवाले लोग चन्द्रगुप्त के राज्य का समय, खीष्टाब्द के आरम्भ से पूर्व तीसरी वा चौथी शताब्दी के बीचही में रखते हैं। अतः यदि चन्द्रगुप्त को खीष्टाब्दारम्भ से तीन सौ वर्ष पहिले रक्खें तो कात्यायन का समय उस के कुछ थोड़े ही पूर्व में हो सकता है † । केवल इन बातों से मुनि लोगों की विद्यमानता का समय निरूपण करना ठिक नहीं है क्योंकि कहीं किसी लेख से पाणिनि वेदव्यास की अपेक्षा अति नवीन जान पड़ते हैं और कहीं वेद-

---

* ऐसा सुनने में आया है कि जिस समय प्रसिद्ध योद्धा महावीर सिकन्दर (जो सन् ईस्वी से ३५५ वर्ष पहिले जन्मा था) भारतवर्ष पर चढ़ आया था; उन दिनों महानन्द बीस सहस्र घोड़े दो लाख पैदल और बहुत से हाथी तथा सेना को साथ लेके उस के विरुद्ध युद्ध के लिये सन्नद्ध हुआ था। इतिहास जाननेवालों की समझ में नन्द अटकल से सन् ईस्वी से ४०० वर्ष पहिले वर्त्तमान था।

† कश्मीर देश के राजतरङ्गिणी नाम के इतिहासग्रन्थ में भी पाणिनि और कात्यायन को नन्द और चन्द्रगुप्त के सम सामयिक लिखा है। यह बात १७८५ शक वर्ष की २३६ संख्या की 'तत्त्वबोधिनी' नामक पत्रिका के ५० पृष्ठ में लिखी है पर राजतरङ्गिणी में ऐसा कहां लिखा है सो नहीं बतलाया है। पाणिनि विश्वामित्र के परपोते थे और विश्वामित्र रामचन्द्र के समय में थे। अब विचार कीजिये कि इस भांति से पाणिनि कितने प्राचीन जान पड़ते हैं।

व्यास उन की अपेक्षा नवीन बोध होते हैं। ऐसी भी कहावत प्रचलित है कि पाणिनि अपना व्याकरण बना के वेदव्यास के पुराण में लिखे हुए पदों को व्याकरण से अशुद्ध कह कर खण्डन करने लगे। परन्तु एक रात्रि में उन्हें स्वप्न हुआ कि कोई महापुरुष आ के बड़े क्रोध से एक श्लोक में उन को फटकार रहा है।

" यान्युज्जहारमाहेशाद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
तानि किं पद रत्नानि सन्ति * पाणिनिगोष्पदे ॥"

अर्थात् व्यासदेव ने महादेव जी के रचित व्याकरण रूपी समुद्र से जिन सब पदरत्नों का उद्धार किया है, क्या वे पाणिनि के बनाये व्याकरण रूपी गोष्पद में अमा सकते हैं? † ॥

यह उद्भट श्लोक यदि बिना जड़ का बनौआ न हो तो पाणिनि को व्यासदेव से बहुत पीछे समझना होगा और देखने में भी आता है कि पाणिनिकृत व्याकरण के भाष्यकार पतञ्जलि हैं और इन्हीं पतञ्जलि के बनाये पातञ्जलयोगदर्शन के भाष्यकार वेदव्यास हैं। अतएव ऐसे गोलमाल के झमेले में यही समझ के मौन होना पड़ता है कि ऋषिलोग योग के बल से चिरञ्जीव होते हैं। इसी कारण से जभी तभी उन के बनाये नाना ग्रन्थों का प्रकटाव अनघट नहीं है। कथासरित्सागर के लिखे अनुसार महर्षि वेदव्यास को राजा नन्द वा चन्द्रगुप्त के समसामयिक अथवा उन के उत्तर वर्त्ती कहने का कदापि हियाव नहीं बंधता है क्योंकि उस लेखे से पुराणादिक आधुनिक भये जाते हैं। पुराणादिक यदि सचमुच अति नवीन होते तो चाणक्य पण्डित ने जिन पुराणादिकों में से नीति विषयक वाक्य चुने हैं वे उन पुराणादि को विशेष गौरव के साथ शास्त्र न मानते और अपने सङ्कलित चाणक्यशतक के आरम्भ में

" नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीति समुच्चयम् " §

यह प्रतिज्ञा न लिखते। पुनः जो लोग हिन्दूशास्त्रों का आधुनिक होना सिद्ध करने में कुछ भी गई (त्रुटि) नहीं लगाते हैं वे भी कहते हैं कि

---

* यहां पर काशीखण्ड की टीका में 'मान्ति' ऐसा पाठान्तर है। अनुवादक।

† मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्थानभेद में पाणिनीय व्याकरण को माहेश्वर व्याकरण कहा है और कलाप व्याकरण की पञ्जिका के अन्त में एक श्लोक लिखा है जिसमें कि माहेश व्याकरण को पाणिनीय व्याकरण से भिन्न अलग निर्देश किया है। यथा—

" माहेश्वरव्याकरणेनोक्तम्" ।

§ अर्थात् नाना शास्त्रों से वचन इकट्ठे कर के राजनीति कहूंगा। अनुवादक।

कुरुक्षेत्र में महाभारतयुद्ध खीष्टाब्दारम्भ से १४०० वर्ष पूर्व हुआ और उस समय व्यासदेव जीवते थे। इस गणनानुसार कुरुक्षेत्र के युद्धकाल से नन्दराजा के समय तक बीच में एक सहस्र वर्ष बीतते हैं * ।

सोमदेव भट्ट के, ऊपर उक्त वचन से गुणाढ्य कवि कात्यायन वररुचि के तुल्यकालिक सिद्ध होते हैं। विक्रमादित्य के सम्बत् चलने के अर्थात् उन के राज्य पर बैठने के अल्प से अल्प ढाई सौ वर्ष पहिले गुणाढ्य वर्तमान थे। वासवदत्ता के पुराने टीकाकार जगद्धर लिखते हैं कि गुणाढ्य कवि ने महादेव जी के मुख से सुन के राजा बड़ाह के चरित्र के वर्णन में बड़ाहकथा (बृहत्कथा) नामक ग्रन्थ रचा †। मिथिलाधीश राजा देव सिंह के आज्ञानुसार विद्यापति ठाकुर ने जो पुरुषपरीक्षा नाम की एक पोथी लिखी है, उस के बाईसवें अध्याय से जाना जाता है कि राजा विक्रमादित्य के समान समय में बड़ाह नामक एक राजा था। उस की बड़ाई से पूर्ण कोई श्लोक सुन राजा विक्रमादित्य उस से मिलने गये थे। इस ठौर अब सोचना चाहिये कि बृहत्कथा यदि बड़ाह राजा के कहानी की पोथी है तो निःसन्देह वह राजा विक्रमादित्य से पीछे बनी होगी। तब तो बृहत्कथा के बनाने हारे गुणाढ्य, विक्रमादित्य के नवरत्नों में से वररुचि के समसामयिक निर्द्धारित हो सकते हैं। पर यह बात सत्य

---

* इसी गड़बड़ को उधेड़ने के लिये आज काल के इतिहासज्ञ लोग कल्पना करते हैं कि व्यास अनेक हुए हैं।

† "बृहत्कथा" बड़ाह इति प्रसिद्धस्यराज्ञः कथा। किञ्च बृहत्कथा बड़ाहकथा। गुणाढ्यो नाम कविः। तेन किल भगवतो भवानीपतेर्मुखकमलादुपश्रुत्यबृहत्कथानिबद्धेतिवार्ता। यथा—

"विप्रैः सन्तुष्टचित्तैः प्रमुदितहृदयैर्वन्दिभिर्लब्धकामै-
र्भृत्यैः सिद्धाभिलाषैर्दिगवनिपतिभिर्वश्यतामाश्रयद्भिः॥
विद्वत्सार्थैःप्रहृष्टैर्दिशिदिशि सुभटैः काञ्चनाभ्यर्थमानै-
र्नित्यं संस्तूयमानः स जयति नृपतिर्दानवीरोबड़ाहः॥"

अर्थात् गुणाढ्य नाम कवि ने भगवान् महादेव के मुख कमल से सुन के बृहत्कथा बनाई, ऐसी कहनावत प्रसिद्ध है।

तोषत द्विजन प्रबोधत बन्दी। सिद्ध मनोरथ भृत्य अनन्दी॥
देश देश के भूप अधीना। सुभट सकल दिसि डंटहि अदीना॥
मुदित विबुध नित जाहि सराहा। जयति सुनृपति उदार बड़ाहा॥

नहीं है क्योंकि कथा सरित्सागर जगद्धर की रची टीका की अपेक्षा बहुत प्राचीन है। उस ग्रंथ में लिखा है कि बृहत्कथा कर्ता गुणाढ्य, वररुचि और व्याड़ि ये तीनों एक समय में वर्तमान थे और जब व्याड़ि के रचित कोष के प्रमाणों को पतञ्जलि अपने महाभाष्य में उठाते हैं तो फिर व्याड़ि के समकालवर्ती गुणाढ्य को विक्रम के नवरत्नोंमें से एक वररुचि के समकालिक नहीं कह सकते। मेदिनी * और हेमचन्द्र के कोष में भी कात्यायन मुनि का नामान्तर वररुचि मिलता है। कात्यायन प्रणीत सर्वानुक्रमणी के विषय में जब कहीं वररुचिरचित यों लिखा मिलता है † तब कात्यायन और वररुचि ये दो नाम एक ही जन के हैं; इस में और संशय नहीं रह जाता है। सोमदेव के कथनापेक्षा जगद्धर की बात कभी अधिक प्रामाणिक नहीं ठहर सकती। इस ठौर अटकलपच्चो गुणावन होता है कि बृहत्कथा इस शब्द को बिगाड़ के बड़ाह कथा नाम से हिन्दुस्थानी लोग बोलते रहे होंगे और जगद्धर ने बड़ाह कथा शब्द का विग्रह बड़ाह राजा की कथा ऐसी कल्पना कर ली होगी। परन्तु बड़ाह यह किसी मनुष्य का नाम हो सकता है कि नहीं सो खोजने की बात है। हां बराह नाम भले मिलता है। लेखक की भूल से एक अक्षर के स्थान में दूसरे अक्षर की लिखौटी (लिपि) दुर्घट नहीं है और जब जगद्धर ने लिखा कि गुणाढ्य ने शिव के मुख से सुन के बृहत्कथा रची तो उन्हीं के लेख से व्यक्त होता है कि बृहत्कथा की प्राचीनता उन्हें स्वीकृत थी। अन्यथा नव निर्मित किसी पोथी के सम्बन्ध में वे झूठीमूठी कहानी न उठाते। गुणाढ्य रचित बृहत्कथा में चाणक्य की भी चर्चा आई है उस से झलकता है कि गुणाढ्य नन्दराज के समय से उस के उत्तरवर्ती चन्द्रगुप्त के समय तक जीते रहे होंगे।

व्याड़ि।

व्याड़ि इसी गुणाढ्य के समकालिक थे। इन को भी मुनियों में गिनते हैं। ये विन्ध्याचलमें रहते थे। उसी कारण इन का नामान्तर विन्ध्यवासी भी था। हेमचन्द्र आदि कोषकारों ने इन के नाम के पर्याय में विन्ध्यवासी और नन्दिनीपुत्र ये दो नाम लिखे हैं। इन का बनाया एक कोष था। पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में उस कोष के वचनों को उठा के प्रमाण रूप से उपन्यास किया है।

---

* पतञ्जलि का भी नाम वररुचि है।

† शौनकादिमत संग्रहोतुर्वररुचेरनुक्रमणिका।

चाणक्य * ।

चाणक्य, मगध देश के राजाधिराज चन्द्रगुप्त के मन्त्रिपद पर नियुक्त थे और चन्द्रगुप्त का राज्यकाल आज से लगभग २१०० वर्ष पहिले जाना जाता है। इस से चाणक्य भी उतने वर्ष पूर्व के सिद्ध होते हैं † मुद्राराक्षस में चाणक्य का जैसा वृत्तान्त लिखा है, उस से वे चन्द्रगुप्त के समकालिक समझे जाते हैं किन्तु चन्द्रगुप्त के पहिले नन्दराजा थे। उन के तुल्यकालिक गुणाढ्य कवि ने वृहत्कथा नामक ग्रन्थ बनाया है उस में चाणक्य और चन्द्रगुप्त का वर्णन मिलता है। उस से गुणाढ्य की अपेक्षा चाणक्य ही प्राचीन बोध होते हैं। फलतः इस बात के मान लेने में कथा सरित्सागर की उल्लिखित बात कटती है। निदान दोनों के सामञ्जस्य की केवल एक ही युक्ति यह है कि राजतरङ्गिणी के लिखे अनुसार पाणिनि, पतञ्जलि, कात्यायन, गुणाढ्य, चाणक्य, नन्द और चन्द्रगुप्त इन सब को समसामयिक मान लेवें।

चाणक्य ने नाना पुराण आदि से संग्रह कर के 'चाणक्य सार संग्रह' नाम एक नीति का ग्रन्थ बनाया। इस का इतना अधिक प्रचार है कि विद्यार्थी लोग छुटपन से ही इस के श्लोकों को घोस २ के कण्ठ करते हैं। इस के अतिरिक्त पहिले इनने कोई कोष बनाया था क्योंकि कई टीकाकार उस के वचनों को प्रमाणरूप से उठा के लिखते हैं।

---

* कामन्दकीय नीतिसार में चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त लिखा है। और त्रिकाण्डशेष नाम कोष में इनको वात्स्यायन मुनि के नामराशि (तुल्य नाम) कहा है। यथा :—

"विष्णुगुप्तस्तु कौण्डिल्यश्चाणक्यो द्रोमिणोऽङ्गुलः।
वात्स्यायनो मल्लनागः पक्षिलस्वामिनावपि॥"

अर्थात विष्णुगुप्त, कौण्डिल्य, (कौटिल्य) द्रोमिण, अंगुल, वात्स्यायन, मल्लनाग, पक्षिल और स्वामी इतने नाम चाणक्य के हैं।

देखो त्रिकाण्ड शेष ब्रह्मवर्ग। इस से जान पड़ता है कि वररुचि जैसे कात्यायन के अवतार हैं, वैसेही ये वात्स्यायन मुनि के अवतार रहे।

† देखो शब्दकल्पद्रुम द्वितीय खण्ड १७५२ पृ० में जो गरुड़पुराण के एकसौ अठारहवें अध्याय का नीतिसार उठा के लिखा है।

कामन्दक ।

ये चाणक्य के शिष्य थे। इन ने 'कामन्दकीय नीतिसार' नामक एक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बनाया है। नहीं निश्चय होता कि ये किस समय में थे। परन्तु अपने ग्रन्थ में वे ऋषियों के नीतिवाक्यों के सङ्कलन के साथ यह भी लिखते हैं कि मैं ने चाणक्य के नीतिग्रन्थ का सहारा लिया हैं। चाणक्य को छोड़ न्यारे किसी अर्वाचीन शास्त्रज्ञ का नामोल्लेख उन ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। उस से पक्का ज्ञात होता है कि वे चाणक्य के पीछे हुए हैं।

माघ ।

ये प्रसिद्ध कवि हैं। यद्यपि अपने रचित शिशुपालबध नामक महाकाव्य के अन्त में इन ने अपने वंशादि का परिचय दिया है * तौ भी उस के द्वारा हम लोगों की इष्ट सिद्धि नहीं होती क्योंकि ये कवि कौन से देश और समय में हुए सो उस से नहीं बतलाया जा सकता। पण्डित वर श्रीयुत ईश्वरचन्द्रविद्यासागर महाशय ने निज रचित 'संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव' नामक पुस्तक के

---

(१) सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीधर्मनाथस्य बभूव राज्ञः।
आसक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥ ८०॥
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः॥ ८२॥
श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरित कीर्त्तन चारुमाघः।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः
काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्॥ ८४॥

माघ २१ सर्ग।

अर्थात्—संसारकार्यरतनित्य राऊ प्रलिप्त। सर्वज्ञ देव इव सुप्रभदेवसाधु॥
श्रीधर्मनाथ नृप के सुत तासु सूनु। धर्मीक्षमी मृदुल दत्तकनाम नीके॥
तत्पुत्रमाघ यह दुर्लभसत्कवीकी। सत्कीर्त्ति चाहि शिशुपालबधाख्य कीरो।
श्रीशब्द अङ्कितसमापति सर्वसर्गं। श्रीकृष्ण वर्णन मनोहर काव्य कीन्हो॥

१८ वें पृष्ठ में लिखा है कि माघ ने भारविकृत किरातार्जुनीय काव्य की अनुकृति की है। इस से माघ भारवि की अपेक्षा नवीन बोध होते हैं। परन्तु इतिहास में निरे अटकल की अपेक्षा उबखान (उपाख्यान) प्रबल होता है। नीचे उबखान जो लिखा जाता है उस से सिद्ध होता है कि भारवि से माघ बहुत प्राचीन हैं । सुनते हैं कि यद्यपि घटकर्पर और कालिदास इन दोनों में परस्पर बे बनाव था तौभी घटकर्पर ने किसी समय शुद्ध हृदय से एक श्लोक बना के उस में कालिदास के उत्कर्ष को शिरोधार्य किया है। वहश्लोक यथा—

"पुष्पेषु जाती, नगरेषु काञ्ची, नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गङ्गा, नृपतौ च रामः, काव्येषु माघः कवि कालिदासः॥"

इस का अर्थ यह है—

फूलनबीच चमेलि मनोहर; नगरन में बड़ कांची।
पुरुषन में पुरुषोत्तम; रम्भा तियमधि बड़ विधि रांची॥
गङ्गा सरितन में अति पावन; राम बड़े राजन में।
काव्यन में बड़ माघ; न कवि कोउ कालिदास दांजन में॥

इस के विपरीत पक्ष में भी प्रमाण अनमिल नहीं है। यथा—

" भारवेर्भाति भा तावद्यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥ "

अर्थात् जैसे माघ मास में सूर्य की दीप्ति मन्द पड़ जाती है ऐसे ही माघ (कृतकाव्य) के साम्हने भारवि (कृतकाव्य) की ज्योति नहीं जागती है परंतु जब नैषध खड़ा होता है तब उस के साम्हने भारवि और माघ भी किस गिनती में हैं।

और " भारवेर्भारवेरिव " इति भारवि की सूर्य सरीखी दीप्ति है।

ये सब ऊपर लिखे उद्भट वाक्य किस के कहे हैं; तिस का कुछ पता नहीं मिलता। इस कारण इन सब की अपेक्षा जिस वाक्य के वक्ता का नाम स्पष्ट मिलता है वही पुष्ट प्रमाण है। 'पुष्पेषु' इत्यादि श्लोक के रचयिता का नाम घटकर्पर मिलता है। इस से उसी को पकड़ना योग्य है।

माघकाव्य में काशिका का नाम मिलता है * यह काशिका पाणिनीय अष्टाध्यायी की व्याख्या है। यथा—

---

* इस श्लोक में काशिका का नाम नहीं मिलता है पर मल्लिनाथ ने टीका में 'काशिका' नाम लिखा है। देखो वहीं पर। अनुवादक।

'अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥'

माघ २ सर्ग ११२ श्लोक।

अर्थात् जो राजनीति, नीति शास्त्र का डेग भर भी उल्लङ्घन नहीं करती और भृत्यों को अच्छी जीविका तथा अच्छे धन धरती (जागीर) दिलवाती है यदि वह भी भेदुए दूतों से काम न लेती हो तो व्याकरण विद्या की उस पुस्तक की नाईं नहीं सुहाती है जिस में पाणिनीय अष्टाध्यायी के सूत्रों ही से सब प्रयोग साध लिये जाते हैं एतादृशन्यास नाम ग्रंथ का आधार लिया है और जिस में सूत्रों की वृत्ति अच्छी बनी है और पातञ्जलभाष्य को भी भले उठाया है परन्तु पस्पशा* को छोड़ दिया है।

यह बात सत्य जंचती है कि किरातर्जुनीय और शिशुपालबध ये दोनों काव्य अर्थांश में आपस में बड़ा मेल खाते हैं किन्तु कौन किस की अनुकृति है इस का भेद तभी खुल सकता है जब कि खोज करके निर्णय किया जावे कि इन दोनों में से पहिले किस का नाम पुराने समय में मिलता है। सो पुराने उबखानादि में माघ का नाम जैसा मिलता है वैसा भारवि का नहीं मिलता। इस पकड़ से मैं ने माघ को भारवि से प्राचीन मान के निर्देश किया है॥

ग्रन्थ के रचना की शैली देखने से माघ और भारवि ये दोनों ग्रन्थकर्ता कालिदास की अपेक्षा नवीन समझ पड़ते हैं क्योंकि कालिदासकृत रघुवंश के नवम सर्ग में जो द्रुतविलम्बित छन्द है उन के चौथे चरण में जैसा यमक मिलता है, वैसा यमक, माघकृत शिशुपालवध और भारवि कृत किरातार्जुनीय के किसी२ द्रुतविलम्बित के चरणों में ग्रथित मिलता है।

रघुवंश में यथा—

गजवती जवती व्रहयाच्चमूः। (९।१०) †
भुजलतां जडता मवलाजनः। (९।४३) §

माघ काव्य में यथा—

नवपलाश पलाशवनं पुरः स्फुट पराग परागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्त लतान्त मलोकयत् ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥ (माघ ६।२)

इत्यादि।

---

* व्याकरण की उपोद्घात को पस्पशा कहते हैं। अनुवादक।

† अर्थात् राजा दशरथ की सेना में अच्छे२ हाथी और बड़े दौड़ाक घोड़े थे। अनुवादक।

§ अर्थात् स्त्रियों ने लता तुल्य अपनी भुजा को निश्चल कर लिया। अनुवादक।

अर्थात् श्रीकृष्ण ने पुष्पों के समूहों के सुगन्ध से मनोहर वसन्त को अपने आगे आया देखा कि पलाशों के वनों में नये पत्ते लग गये हैं और पुष्प धूलि से भरे कमल खिले हैं। लताओं में लगे नये कोंपले घाम से तनिक कुम्हिलाये हुए हैं।

किरातार्जुनीय में यथा—

पृथुकदम्बकदम्बकराजितं ग्रथितमालतमालवनाकुलम्।
लघुतुषारतुषारजलश्च्युतं धृतसदानसदाननदन्तिनम्॥ (कि०र्जु० ५।९)

अर्थात् हिमालय पर्वत बड़े २ कदम्ब के फूलों से शोभित और तमालवृक्ष के सघन वनों से गहन तथा मदजल से सुन्दर मुखवाले हाथियों से सुहावना है। वहां पाले के छोटे २ कण गिर रहे हैं।

इस से अनुमान होता है कि इन दोनों कवियों ने न केवल कालिदास की उक्त युक्तियों को राई से पहाड़ किया किन्तु उन की चलाई यमक की चाल को पूरी अवधि पर पहुंचा दिया।

चोर कवि (सुन्दर)।

ऐसा सुनते हैं कि विक्रमादित्य के सभासद् वररुचि ने विद्यासुन्दर की कहानी की संस्कृत में एक कवितापुस्तक रची थी। "नह्यमूला प्रसिद्धिः" अर्थात् प्रसिद्धि अमूलक नहीं होती है। इस कहनावत के अनुसार ऊपर उक्त प्रसिद्धि के अनुरोध से मैं ने चोर कवि को राजा विक्रमादित्य से प्राचीन गिना।

इस कवि की बनाई 'चोरपञ्चाशिका' जिस में पचास श्लोक हैं बहुत प्रसिद्ध है। यह कवि दक्षिण देश में काञ्चीपुर नगर के अधीश राजा गुणसिन्धु का पुत्र था और गौड़ देश के वर्द्धमान नगर के महाराज वीर सिंह की बड़ी विदुषी विद्या नाम बेटी ब्याहे थी। छिप के विद्या के घर तक सुरङ्ग खोद भीतर जा उसे ब्याह ल्याया। इसी से इस का नाम 'चोर' हुआ।

मयूरक (मयूर)।

"कवी चोर मयूरकौ" इस उद्भट वाक्य में चोर कवि के साथ मयूर का नाम मिलने से साहचर्य से अनुमान होता है कि ये चोर कवि के समसामयिक थे। इन का बनाया कोई काव्य आदि ग्रंथ नहीं मिलता। काशीश्वर ने वोपदेवकृत मुग्धबोध व्याकरण पर जो 'परिशिष्ट' लिखा है, उस में इस मयूर के बनाये एक श्लोक का आरम्भ यों लिखा मिलता है।

'आदध्यादन्धकारे रतिमतिशयनीमिति'।
अर्थात् अन्धकार में विशेषता विशिष्ट प्रीति आधान करे॥

राजा भर्तृहरि।

कलियुग लगने पीछे अनुमान ३००० वर्ष बीतने पर भर्तृहरि उत्पन्न हुए। इन की जन्मभूमि उज्जैन है। उज्जैन का पुराना नाम अवन्ती है। यही पहिले पहिल सेन्धिया की राजधानी थी और उसी से इसे आज लों सेन्धिया के पूर्वजों की राजगद्दी कहते हैं। यह शिप्रा नदी के दक्षिणतट पर बसी थी। राजा भर्तृहरि ने संन्यास धारण कर शिप्रा नदी के तीर धरती के भीतर एक गुप्त गुहा में योगसाधन किया था। वह गुहा अब खोद के निकाली गई है। वह पहाड़ का पत्थर काट के बनाई गई थी।

इन महा कवि के रचित काव्यादि ग्रन्थों के नाम ये हैं। नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक। ये व्याकरण और अलङ्कार में भी प्रसिद्ध पण्डित थे। इन की बनाई हरिकारिका की * जो कि व्याकरण का ग्रन्थ है कारिकाओं को प्रमाणरूप से शब्दशक्ति प्रकाशिका और दशरूपक इत्यादि पुस्तकों में उठा के लिखा है।

कुसुम देव।

यह राजा भर्तृहरि के सभासद् थे और इन का रचित दृष्टान्तशतक नामक एक ग्रन्थ है।

[देखो काव्यसंग्रह २१७ पृष्ठ और श्रीयुत नन्दकुमार कविरत्न रचित ज्ञानसौदामिनी ९२ पृष्ठ।]

राजा विक्रमादित्य †।

इस प्रसिद्ध राजा का यश जगत् भर में विदित है। इस की कहानियों की कई पोथियां बन चुकी हैं। इस लिये यहां उन का पुनः कथन

---

* यह पुस्तक पाणिनीय व्याकरण के ज्ञान में अतिअपेक्षित बूझ पड़ती है।

अनुवादक।

† देखो शब्दकल्पद्रुम ५ खण्ड विक्रम शब्द पर स्कन्दपुराण का एक और वचन है जिस से विक्रमादित्य का समय कलियुग के लगने से ३००० वर्ष पीछे ठहरता है। देखो The Indian Antiquary. जटाधर अपने कोष में इन का नाम साहसाङ्क और शकारि भी लिखते हैं।

पिष्टपेषण है। स्कन्दपुराणीय कुमारिकाखण्ड के वचनानुसार जाना जाता है कि कलियुग लगने से ३०२२ वर्ष पीछे ये उज्जैन के राज्य पर बैठे। स्कन्दपु० कुमारिका खंड का वह वचन यह है—

"तत स्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्याद्यधिकेषु हि।
भविष्यद्विक्रमादित्यराजः सोऽथ प्रणश्यते॥"

अर्थात् कलियुग लगने से तीन सहस्र बाईस वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य राजा होगा पर वह भी अटल न रहेगा। कलियुग के लगे आज ४९६७ वर्ष हुए और विक्रमादित्य का चलाया १९२३ संवत् है। यदि विक्रमादित्य के जन्म से उन का संवत् चला ऐसा मानें तो स्कंदपुराण कुमारिकाखण्ड के वचन से मेल नहीं खाता क्योंकि ४९६७ में से १९२३ घटा दिया तो ३०४४ वर्ष बचते हैं। हां, विक्रमादित्य का जन्म यदि कलियुग लगे पीछे ३०२२ वर्ष में और संवत् का आरम्भ उन के राज्याभिषेक के समय से अर्थात् कलियुग लगे पीछे ३०४४ वर्ष से मानें तो और गड़बड़ अध्याय नहीं रह जाता। शालिवाहन का शक संवत् १३५ में चला। इस से कोई २ यह निकालते हैं कि संवत् विक्रमादित्य के जन्म दिन से और शक शालिवाहन की मृत्यु के दिन से चला होगा क्योंकि ऐसा तर्क कर लिये बिना अन्य किसी गणना से उन दोनों राजाओं का परस्पर साम्हनी साम्हना सिद्ध होना सुघट नहीं है। विक्रमादित्य की २२ वर्ष की अवस्था बीतने पर संवत् का आरम्भ माना जावे तो भी हमारी समझ में कोई अनुपपत्ति नहीं जान पड़ती।

विक्रमादित्य ने एक कोष बनाया उस की इतनी मान्यता थी कि मेदिनी आदि कोषों के बनानेहारे पण्डितलोग भी उस के वाक्यों को प्रमाण रूप से अपने ग्रन्थों में उपन्यस्त करते हैं और इन ने भूगोल के वर्णन में भी एक पुस्तक रची थी। इन्हें एक राक्षसी दिखाई दी। उस ने इन्हें एक समस्या पूरी करने के लिये दी। उसे इनने तुरन्तही पूरी करदिया। इस दन्तकथा से छिपा नहीं रह जाता है कि ये अच्छे फुर्तीले कवि थे।

इसी विक्रमादित्य ने अपने सभासद नव पण्डितों को 'रत्न' यह पदवी दी थी। वे नवो रत्न एक में मिला के नवरत्न कहाते हैं। उन के नाम निम्न लिखित श्लोक में मिलते हैं।

"धन्वन्तरिःक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातौ वराहमिहिरौ नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥"

अर्थात्—धन्वन्तरि क्षपणक अमर सिंह शंकु वेताल।

घटकर्पर वररुचि वराहमिहिर * बुद्धि विशाल ॥
कालिदास ये नवरतन विक्रम नृपति समाज ।
कीन्ह अलंकृत नाम निज जगत उजागर आज ॥

धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि। इन नवो पण्डितों में से कौन किस क्रम से अभ्यर्हित (पूजित) था, तिस का कुछ निश्चय नहीं है। इसलिये श्लोक में जिस क्रम से नाम दिये गये हैं; उसी क्रम से मैं एक २ का वर्णन कर चलता हूं।

इन नवरत्नों ने अलग २ एक २ श्लोक रचा है। उन नव श्लोकों के समुदाय को भी नवरत्न कहते हैं।

धन्वन्तरि ।

ये महाशय आयुर्वेद के प्रसिद्ध पण्डित थे। नवरत्न के श्लोकों में इन का श्लोक पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि इनमें भी कविताशक्ति थी।

क्षपणक ।

नवरत्न के श्लोकों के बीच तीसरा श्लोक इन का बनाया है। यथा—

'नीतिर्भूमिभुजां नतिर्गुणवतां ह्रीरङ्गनानां धृति-
र्दम्पत्योः शिशवो गृहस्य कविता बुद्धेः प्रसादो गिराम्।
लावण्यं वपुषः स्मृतिः सुमनसां शान्तिर्द्विजस्य क्षमा
शक्तस्य द्रविणं गृहाश्रमवतां स्वास्थ्यं सतां मण्डनम् ॥'

अर्थात्—नीति नरेशन्ह को गुणवन्तन्ह को नति कामिनि को लजिताई।
धीरजदम्पति को गृह के शिशु धीको गिरा गिर को सरलाई ॥
रूप सरूप को प्राज्ञन्ह को स्मृति विप्र को शान्ति बली को छिमाई।
वित्त गृहस्थन को अरु सन्तन को गहनो मन की थिरताई ॥

अमरसिंह † ।

अग्निपुराण में जिस ढङ्ग से श्लोकबद्धकोष ग्रन्थ लिखा है, अमर

---

* कोई २ समझते हैं कि वराह और मिहिर ये दो जन थे। एक २ आधे २ रत्न थे। दोनों मिला के एक ही रत्न गिने जाते थे।

† इहदमर सिंह नामक एक कोष है। देखो सार्वभौमकृत रायमुकुट की टीका में अनिरुद्ध नाम पर।

सिंह ने उसी ढङ्ग से 'लिङ्गानुशासन' नाम एक श्लोकबद्ध कोष बनाया। उस का इतना प्रचुर प्रचार है कि संस्कृत विद्यारम्भ में लगभग सब विद्यार्थी उस को कण्ठाग्र करते हैं।

किसी २ ग्रन्थ में लिखा मिलता है कि ये हेम सिंह के शिष्य थे। अमर रचित अमरमाला और अमरकोष इन दो ग्रन्थों को छोड़ शेष सब ग्रन्थ शङ्कराचार्य ने जलादिये। पृथुराजचरित नामक काव्य में लिखा है कि जैनों की भांति ये भी मोरपङ्ख रखते थे। परन्तु और लोग स्थिर करते हैं कि ये बौद्ध थे और डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र आदि पण्डित लोग अनुमान करते हैं कि गया जी का प्रसिद्ध बौद्धमन्दिर इन्हीं का बनवाया है। जेनरल कनिङ्गहम महाशय समझते हैं कि यह बौद्धमन्दिर खीष्टीय चौथी शताब्दी से छठवीं शताब्दी तक के बीच में कभी बना होगा। इस मन्दिर में जो कुछ लेख खुदा है उस से प्रकट होता है कि अमर सिंह खीष्टीय पांचवीं शताब्दी में सदेह थे *।

शङ्कु।

नवरत्न के श्लोकों में चौथा श्लोक इन का रचित है। यथा—

"धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिर्भावनीया सदैव
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचरनयनैर्मण्डलं वीक्षणीयम्।
प्रच्छाद्योरागरोषौ मृदुपरुषगुणौ योजनीयौ सदैव
आत्मा यत्नेन रक्ष्यो रणशिरसिपुनः सोऽपि नापेक्षणीयः॥"

अर्थात्-सब सों पहिले पहिचानिये धर्ममती कि गती सचिवों की पिछानिये। वर चार चखों नित ताकिये मण्डल लोक परम्परा रीतिहिं छानिये॥ रखिये मन दाबि कृपा अरु कोप समै पर नर्मि करेरिहु ठानिये। निज गात जुगाइये यत्न सों सो रण काम पड़े तृन तुल्य विहानिये॥

काव्यप्रकाश में इन के वचनों को प्रमाण रूप से उठाया है उस से ऐसा जान पड़ता है कि ये अलङ्कारज्ञ पण्डित थे।

---

* सैनन्द्वीप के अमर सिंह, दुर्गसिंह, भट्टनारायण सिंह इतने जन 'पञ्जीकर' इस उपाधि से प्रसिद्ध थे क्योंकि इनने पञ्जी बनाई थी। ये तीनो जन जाति के कायस्थ थे। यह बात अमरकोष की टीका, सारमञ्जरी, रमानाथी, रायमुकुट और भरत इत्यादि ग्रन्थों में 'पञ्जिका' शब्द पर लिखी मिलती है। देखो जगन्नाथ प्रसाद मल्लिककृत शब्दतरङ्गिणी।

वेतालभट्ट ।

संस्कृत में 'वेतालपञ्चविंशति' और 'नीतिप्रदीप' ये दो पुस्तक इन की बनाई हैं। वेतालपचीसी में विक्रमादित्य की अद्भुत २ कहानियां हैं। नीतिप्रदीप के आरम्भ में यह श्लोक है—

"रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डखण्डैर्मलयाचलः किं परोपकाराय सतां विभूतिः॥"

अर्थात्—"जलधि क्या निज रत्नन्ह सों करे करिन्ह सों गिरि विन्ध्य को क्या सरे।
मलय चन्दन वृन्दनि क्या करे सुजन श्री बढ़ती पर हेतु ही" ॥

घटकर्पर ।

इन ने संस्कृत में अपने नाम से प्रसिद्ध 'घटकर्पर' काव्य रचा। उस में वर्षा ऋतु के वर्णन के बाईस श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक के दो २ चरणों में यमक (तुक) मिलाया है। उस का प्रथम श्लोक यह है—

निचितं समुपेत्य * नीरदैः प्रियहीनाहृदयावनीरदैः।
सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ रविचन्द्रावपि नोपलक्षितौ॥

अर्थात्—घन घमण्डनभमण्डलमण्डे। विरहिणि हृदय धरातलखण्डे॥
सलिल कलिल(मलिन)करिरजसमथाना। रवि शशि बिम्बहु नहिं दरसाना॥

इन की बनाई 'नीतिसार' नाम एक और भी पुस्तक है जिस का प्रथम श्लोक यह है—

शिखी कलापी गगने पयोदा लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषु पद्माः।
इन्दुर्द्विलक्षं कुमुदस्य बन्धुर्योयस्य मित्रं नहि तस्य दूरम्॥

अर्थात्—धाराधर नभमण्डल गाजा। शिखी धराधर शिखर विराजा॥
लाख कोश अन्तर पर तरणी। सरसि सरसिरुह सोहत धरणी॥
दुइलख कोश दूर वह चंदा। सरसावत सर कुमुद अनन्दा॥
जाकर जो जग सत्य सनेही। दूर बसेहु प्रिय लागत तेही॥

कालिदास ।

यद्यपि नवरत्नों में से प्रत्येक जन काव्यकला में निष्णात थे तौ भी काव्यकर्तृत्व की कीर्ति इन्हीं के हाथ लगी है। इन के निर्मित काव्यों के नाम यथा—ऋतुसंहार, शृङ्गारतिलक, प्रश्नोत्तरमाला, मेघदूत, नलोदय,

---

* खमुपेत्य। अनुवादक।

रघुवंश, कुमारसम्भव, शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, महापद्य, शृङ्गार रसाष्टक और साख्य *। छन्द विषयक श्रुतबोध और ज्योतिष विषयक रात्रिनत्यमान निरूपण भी इन के बनाये हैं।

ऐसी दन्तकथा है कि सरस्वती के बरदान से कालिदास विद्वान् हुए। इन की स्त्री का नाम रत्नावती † था। वह स्त्री सब विद्याओं में बड़ी विदुषी थी। जब ये विद्वान् हो के घर लौटे तो पत्नी के प्रति अपनी विद्वत्ता प्रकाश करने के भाव से संस्कृत में यह वाक्य बोले। "अस्ति-कश्चिद्वाग्विशेषः"। अर्थात् ऐसा भी कोई शास्त्रवचन है जिसे मैं ने न पढ़ा हो? उसे सुनकर उन की स्त्री ने कहा कि संस्कृत के इस वाक्य ही के केवल बोल देने से पण्डितमण्डली में गिनती नहीं होती। यदि अस्ति कश्चित् और वाग्-विशेषः इन चार वाक्यखण्डों में से एक २ को ले के अलग२ तीन काव्य आप बना सकें तो मैं मानूंगी कि आप 'महाकवि' हैं। यह सुनते ही कालिदास ने उसी क्षण अलग २ चार काव्यों की रचना में लग्गा लगा दिया।

यथा कुमारसम्भव के आरम्भ में "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" इत्यादि कह के 'अस्ति' पद को डाला है।

मेघदूत के आदि में "कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा" इत्यादि कह के 'कश्चित्' पद का विन्यास किया।

रघुवंश का मङ्गलाचरण "वागार्थाविव संपृक्तौ" इत्यादि श्लोक रचा। उस के शीर्ष में 'वाक्' शब्द आया है। 'विशेषः' इस पद को भी आरम्भ कर के कोई काव्य रचा होगा।

वराह।

ये ज्योतिष विद्या में बड़े धुरन्धर विद्वान् थे। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि 'सूर्यसिद्धान्त' नाम जो भूगोल और खगोल विषयक ग्रन्थ है वह इन्हीं का संगृहीत है। कोई कोई लोग इन्हीं की पदवी भास्करा-

---

* कहतूति है कि 'हास्यार्णव' भी कालिदासही का रचित है पर किसी किसी पुरानी पोथी में उस के रचयिता का नाम 'जगदीश्वर' ऐसा लिखा मिलता है। 'सेतुबन्ध' नाम भी एक काव्य है। उस के रचयिता का भी नाम सुनते हैं कि कालिदास था पर निश्चय नहीं होता कि वे यही थे अथवा राजाभोज के सभासद कालिदास थे। [The Indian Antiquary.]

† कोई २ कहते हैं कि उस विदुषी का नाम 'विद्योत्तमा' और उस के पिता का नाम 'शारदानन्दन' था।

चार्य बतलाते हैं पर यह बात सर्वसम्मत नहीं है। बहुत से ऐसा अनुमान करते हैं * कि भास्कराचार्य आज से सात सौ वर्ष पहिले थे।

मिहिर।

कहनावत है कि मिहिर वराह के जामाता थे। वराह की ज्योतिः-शास्त्र में बड़ी पण्डिता खनानाम्नी जो कन्या थी मिहिर का उसी से विवाह हुआ था। यद्यपि कितने लोग वराह और मिहिर ये दोनों एकही जन के नाम समझते हैं पर वह उन की समझ निर्मूल है ऐसा हम नहीं कह सकते क्योंकि मिहिर एक भिन्न जन है। इस बात में अनेक प्रमाण हैं।

वररुचि †।

वररुचि एक प्रसिद्ध कोषकार हैं। 'नीतिरत्न' नाम एक छोटी सी पुस्तक इन की बनाई है। उस का प्रथम श्लोक यह है—

"चतुर्मुख मुखाम्भोजश्रृङ्गाटक विहारिणीम्।
नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम्॥"

अर्थात् ब्रह्मा के चारो मुख कमलों के संयोग रूपी चौहट्टे पर विहार करनेहारी नित्य उद्दण्ड बातें बोलनेहारी सरस्वती देवी की स्तुति मैं करता हूं।

'पत्रकौमुदी' भी इन्ही महाकवि की रचित है।

कोई २ कहते हैं कि वररुचि ने विद्यासुन्दर का उपाख्यान रचा है §।

---

* डाक्तर कर्ण (कारण) और भाऊदा जी निरूपण करते हैं कि वराह और मिहिर ये दोनों नाम एकही के हैं। वराह मिहिर ने बृहत्संहिता नाम एक पुस्तक रचना की है। डाक्टर कर्ण ने उस का उल्था किया है। भाऊदाजी समझते हैं कि ये वराह मिहिर अवन्ती में रहते थे। कर्ण और भाऊदाजी दोनों इस बात में सम्मत हैं कि ये खीष्टीय छठवीं शताब्दी में सदेह थे। इन्हों ने 'पञ्चसिद्धांत' नाम एक ग्रन्थ निर्माण किया है। 'पञ्चसिद्धांत' नाम रखने का हेतु यह है कि 'ब्राह्मसिद्धांत' जिसे कि 'पैतामहसिद्धांत' भी कहते हैं 'सूर्यसिद्धांत' जिसे 'सौरसिद्धांत' भी कहतें हैं 'वशिष्टसिद्धांत' 'रोमकसिद्धांत' और 'कुलिजसिद्धांत' इन पांचों सिद्धांत ग्रन्थों का आश्रय ले के यह ग्रन्थ लिखा गया। भाऊदाजी लिखते हैं कि खीष्टीय ५८७ संवत् में वराह मिहिर का देहांत हुआ।

† इन का दूसरा नाम पुनर्वसु है परन्तु वररुचि यही नाम बहुत प्रसिद्ध है।

§ वररुचिकृत संस्कृत 'विद्यासुन्दर' अब सटीक छप गया है।

उस की रचना के बहुत पीछे उस का आधार ले नवद्वीप के राजा कृष्ण-चन्द्र राय के सभासद् भारतचन्द्र राय ने गौड़ भाषा में पद्यबद्ध दूसरा विद्यासुन्दर बनाया* । यह बात सुनते ही एकाएकी मन में नहीं समाती पर "नह्यमूला प्रसिद्धिः" इस न्यायानुसार निपट निर्मूलक न होगी ।

मातृगुप्त ।

ये विक्रमादित्य के समय में हुए हैं । यद्यपि सुनने में नहीं आता कि इन का बनाया कोई प्रसिद्ध काव्य है तथापि राजा विक्रमादित्य ने इन की कविता शक्ति ही के गुण से इन्हें कश्मीर के राजसिंहासन पर बिठलाया । यह बात राजतरङ्गिणी आदि पुराने इतिहास के ग्रन्थों के पढ़ने से जानी जाती है । उस का विवरण इस प्रकार से है कि मातृगुप्त अनेक गुणों से भूषित रह कर के भी दरिद्रता के कारण फटे कपड़े पहिने जर्जर शरीर हो के अपना घरबार छोड़ विक्रमादित्य के यहां आये और अत्यन्त गुणग्राही जान उन का आश्रय ग्रहण करना चाहा । उसी आशा में ये बहुत समय लों विक्रमादित्य ही की सेवा में लगे रहे तौ भी अभाग्यवश इन की मनकामना पूरी होने का अवसर न आया । दैवात्

---

* श्री कवि वल्लभकृत 'कालिकामङ्गलविद्यासुन्दर' नाम एक पुरानी पोथी गौड़-भाषा में थी । कलकत्ते के रहवैये राजा नवकृष्ण बहादुर के किसी सभासद् ने उसे संशोधन कर के प्रकाशित किया और कहा है कि इस विद्यासुन्दर की अपेक्षा भरतचन्द्र कृत विद्यासुन्दर बहुत आधुनिक है । उस से पहिले 'कालिकामङ्गलविद्यासुन्दर' रचा गया ।

वसु वसु विशिख निशाकर शाके । श्री कवि वल्लभ विप्र बनाके ॥
कालिकमङ्गल गान सुनायो । रामचन्द्र तिहि प्रकट करायो ॥
पुस्तक ठौर ठौर लिप लोपी । शोधि कियउं तिहि बहुरि अतोपी ॥
कालिकामङ्गल विद्यासुन्दर । श्री कवि बल्लभ कीन्ह प्रथमतर ॥
कृष्णराम बिनतापुरवासी । विद्यासुन्दर अपर प्रकाशी ॥
तासु जहां तहं प्रचुर प्रचारा । रामप्रसाद रचित न उबारा ॥
भारतचन्द्र अन्नदामङ्गल । बीच रचेउ पाछे प्रसङ्गकुल ॥

अन्नदामङ्गल की समाप्ति में भारतचन्द्र ने लिखा है—

शाके सोरह सौ चौहत्तर । भारत रच्यो अन्नदामङ्गल ॥

अत: इस से ज्ञात होता है कि कालिकामङ्गल की रचना से ८६ वर्ष पीछे अन्नदामंगल बना है ।

एक दिन जाड़े की आधी रात में महाराज विक्रमादित्य की नींद खुली और उन ने देखा कि घर में सब दीपक बुझने चाहते हैं। उन के उसकाने के लिये परिचारक को बुलाया पर उस बेला सब गाढ़ी नींद में सो रहे थे। कोई नहीं सनका। केवल मातृगुप्त जागते थे क्योंकि वे कंगलेपन के दुःख से बिनचैन थे। ये शीघ्र मराराज के पास दौड़ आये। उन्हें चीन्ह महाराज ने पूछा। क्या कारण कि तुम इतनी रात लों जागते रहे? इस प्रश्न को सुनते ही तुरन्त इन ने श्लोकबद्ध उत्तर दिया।

"शीतेनोद्धुषितस्य मासमनिशं चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्नि स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता सन्त्यज्य दूरं गता
सत्पात्रे प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी॥"

अर्थात्—मास व्यतीत भयो जड़काले को नित्य सचिन्त छुधातुर कांपौं।
बूझत आगि सुफूंकत फूंकत ओठनि पीर कहां लगि नांपौं॥
प्यारि कुंहांइ गई इव नींद न आवत नेर कहा दृग ढांपौं।
सद्गुण पात्र समर्पित भूइव बाढ़ बढ़ोत्तर रैनहि थापौं॥

गुणज्ञ महाराज विक्रमादित्य इन की ऐसी अद्भुत कविताशक्ति और चटकवाई देख अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञा दी कि अपने डेरे चले जाओ। पर उस समय कुछ पारितोषक देने के विषय में बात चीत न की। पीछे उन ने एक दिन मातृगुप्त को बुला भेजा और अपने हाथ की लिखी एक चिट्ठी थंभा के कहा कि कश्मीर में जाओ। मातृगुप्त कश्मीर में गये और वहां विक्रमादित्य के नियुक्त राजकाजियों के हाथ में महाराज की चिट्ठी दी। राजकाजियों ने उस पत्र को पढ़ा और महाराज का भाव बूझ लिया। सो कश्मीर के राज शून्य सिंहासन पर मातृगुप्त को बड़े धूमधाम से बिठला के राज्याभिषेक किया। मातृगुप्त महाराज विक्रमादित्य की ऐसी अनुपम गुणज्ञता पर आश्चर्यित हो न्यौछावर हो गया। उस के अभिनन्दन में यह श्लोक लिख महाराज के पास पठाया।

"नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि।
निःशब्द वर्षण मिवाम्बुधरस्य राजन्
संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः॥"

अर्थात्—चेष्टाहु ना बुझ परै न विशेष भाषौ
दानाभिलाष लखए बिनु दान देते।
भूप प्रसाद अपनो फल तें जताओ

ज्यों गर्जे वर्जित बलाहक वारि वर्षै ॥

मातृगुप्त जाति के वैश्य थे क्योंकि कल्हणकृत राजतरङ्गिणी तृतीय तरंग के आठवें श्लोक में उन्हें 'विशाम्पति' ऐसा कहा है और २०९ श्लोक में लिखा है कि इन ने विक्रमादित्य को प्रणाम किया। इस से भी सूचित होता है कि ये वैश्य ही थे। ३०२ श्लोक से जाना जाता है कि वे संन्यास लेना चाहते थे और ३२२ श्लोक से स्पष्ट है कि वे संन्यासी हो भी गये। संन्यास लेने का अधिकार ब्राह्मण ही को है। इस सूत्र से कोई २ उन्हें ब्राह्मण भी गुनावन करते हैं परन्तु शास्त्रों में देखते हैं कि संन्यास केवल शूद्रों को वर्जित है न कि द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को भी। अतः ये वैश्य हो के भी संन्यासी हुए इस में कुछ पचड़ा नहीं है क्योंकि यदि ये ब्राह्मण होते तो क्षत्रिय राजा को कदापि प्रणाम न करते।

मेण्ठ * ।

इन ने हयग्रीववध नामक नाटक बना के राजा मातृगुप्त के साम्हने उस का अभिनय किया। यह बात कल्हणकृत राजतरङ्गिणी के ३य तरङ्ग के २५४ श्लोक से विदित होती है। यथा–

"हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्नवम्।
आसमाप्ति ततोनाप त्साध्वसाध्विति वा वचः॥"

अर्थात् मेण्ठ नाम कवि ने हयग्रीववध नाम नया नाटक बना के मातृगुप्त के साम्हने उस का अभिनय किया। परन्तु उस अभिनय की समाप्ति होने तक मातृगुप्त ने उस के विषय में खरा खोटा कुछ भी नहीं कहा।

सुबन्धु † ।

सुबन्धु विक्रमादित्य के सभासद् वररुचि के भाञ्जे थे। यह उन ने स्वरचित वासवदत्ता नाम पुस्तक की समाप्ति में लिखा है। यथा—

" इति श्री वररुचि भागिनेय सुबन्धु विरचिता वासवदत्ताख्यायिका समाप्ता "

---

* इन्हें भर्तृमेण्ठ भी कहते हैं। बहुत लोग समझते हैं कि ये हर्ष राजा के समय में थे।

† कोई २ मानते हैं कि ये खीष्टीय सातवीं शताब्दी में थे। अनुमान होता है कि राजा भोज की सभा में जो एक और सुबन्धु नाम पण्डित थे उन्हीं के धोखे से लोग भूल में

जान पड़ता है कि विक्रमादित्य के देहान्त अनन्तर वासवदत्ता बनी है * क्योंकि उस में ग्रन्थकार ने विक्रमादित्य का परलोक हो जाने पर यों आह भरी है ।

सा रसवत्ता निहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः ।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥ †

अर्थात् पृथ्वी से विक्रमादित्य राजा के उठ जाने से अब रस कहीं नहीं रह गया । नये २ छैलचिकनिये बन रहे हैं । कौन किस पर अत्याचार नहीं कर रहा है । विक्रमादित्य के बिना संसार सूखता सरोवर सा हो रहा है । निर्मल जल न रह जाने से सारस बगुले और ककहड़ नहीं रहे । प्रबल जन्तु जिस दुर्बल जन्तु को पाता है वह उसी को खा के अपना पेट भरता है ।

वृद्धभोजराज ।

जान पड़ता है कि विक्रमादित्य, भारतवर्षीय सूर्य की नाईं चमक कर जब अस्ताचल को पहुंचे तब भोजराज चन्द्र की नाईं उदय हुए क्योंकि भोजप्रबन्धादि पुस्तकों के और कालिदास विरचित महापद्य के श्लोकों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य के सभा पण्डितों में से कई एक धीरे २ भोजराज की सभा में उपस्थित हुए थे । बल्लाल मिश्र विरचित भोजप्रबन्ध में भोज राजा के सभासद् इन पण्डितों के नाम मिलते हैं ; वररुचि, सुबन्धु, बाण, मयूर, रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, कलिङ्ग, कर्पूर, कविराज, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र अथवा नरेन्द्र § । सब के पीछे कालिदास के भी प्रवेश का वर्णन है । कालिदास

---

* वासवदत्ता के टीकाकार नरसिंह वैद्य ने लिखा है कि:—

" कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः । तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एतन्निबन्धं कृतवान् "

अर्थात् सुबन्धु कवि विक्रमादित्य के सभासद् थे उस राजा के देहान्त अनन्तर सुबन्धु ने वासवदत्ता बनाई ।

† देखो वासवदत्ता के प्रारम्भ में । शार्ङ्गधरपद्धति के श्लोक में और २ कवियों के भी नाम मिलते हैं ।

§ इन में से बाण, मयूर और कविराज जिन का वर्णन आगे चल के लिखा जावेगा इन भोजराज के सभासद् रहे हों सो सर्वथा असंभव है । हां इन नामों के और २ पण्डित रहे हों तो संभव है ।

कृत महापद्य नामक छोटी सी पुस्तक के उपोद्घात में उन ने अपने प्रवेश का वृत्तान्त यों लिखा है :—

" अस्थिवद्दधिवच्चैव शङ्खवद्धकवत्तथा ।
राजंस्तव यशो भाति पुनः संन्यासिदण्डवत् ॥
कालिदास इमं श्लोकं स्वकवित्वस्य गोपकम् ।
लिखित्वा प्रददौ पत्रं कवये शंकराय वै ॥
पठित्वा शङ्करः श्लोकं प्रहसन् कौतुकाय तत् ।
पत्रं करे समादाय सानन्दस्त्वरया तदा ॥
कालिदासेन सहितो भोजराज सभां ययौ ।
अथ दृष्ट्वा स राजानमाशिषं प्रजगाद ह ॥ "

अर्थात्—हाड़ दही बक शंख पुनि, जरठि दण्डि कर दण्ड ।
इन्ह सम तव अवदात यश, लसत भूप वरखण्ड ॥

निज कविताइहिं चहत दुरावा । कालिदास यह पद्य बनावा ॥
इहिं इक पाती महं लिख लीन्हा । जाकर कवि शङ्कर कर दीन्हा ॥
पढ़ि पाती शङ्कर मुसुक्याए । कालिदास सङ्ग हरषि सिधाए ॥
भोज सभा झट कौतुक हेतू । जानि रख्यो तहं नृपकुलकेतू ॥
कालिदास जो पद्य बनावा । पढ़ि तिहिं आशीर्वाद सुनावा ॥

ये वृद्ध भोजराज कर्णाट देश के भी राजा थे क्योंकि महापद्य के अन्तिम श्लोक में कालिदास ने लिखा है :—

मागाः प्रत्युपकारकातरधिया वैमुख्यमाकर्णय
श्रीकर्णाटवसुन्धराधिप सुधासिक्तानि सूक्तानि मे ।
वर्ण्यन्ते कति नाम नार्णवनदी भूगोल विन्ध्याटवी
झंझामारुत चन्द्रमः प्रभृतयस्तेभ्यः किमाप्तं मया ॥

अर्थात्—सिन्धुसरित भूगोल विन्ध्यवन । आधि पवन चन्द्रादिक वर्णन ।
कतिन कियों तिन सो कह पायउँ । कर्णाटकपति तोहि ढिग आयउँ ।
सुन्दर गिरा सुधारस सानी । सुनिय न गुनिय विदाइ गलानी ॥

भोजराज ने चम्पू रामायण बनाया है ।

इतिहासज्ञ पण्डित लोग कहते हैं कि विक्रमादित्य के पचास वर्ष पीछे दक्षिणदेश में अति प्रसिद्ध अन्ध्रवंशी राजाओं का राज्य कर्णाट और तैलङ्ग तलक लगता था । ये अन्ध्रवंशी राजा लोग पँवार (प्रमर) राजपूत थे, इस से सिद्ध होता है कि वे विक्रमादित्य के सगोत्री थे । उन दिनों कृष्णा नदी से ले के दक्षिण घाट पर्वत तक कर्णाटकाराज्य फैला हुआ

था। इतने प्रमाणों से जँचता है कि ये वृद्धभोजराज इस कर्णाट देश के प्रथम राजा रहे होंगे *।

शालिवाहन।

इसी राजा के जन्म दिन से शकाब्द आरम्भ हुआ है। यह बात अधिक लोग मानते हैं। कहते हैं कि राजा विक्रमादित्य से इस ने युद्ध किया और उस में विक्रमादित्य खेत रहा। 'विक्रमादित्य' चरित्र नामक पुस्तक में इस का ब्यौरा इस भांति लिखा है। 'विक्रमादित्य' ने कालिका पूजी। सो भगवती ने सन्तुष्ट हो कर यह बरदान दिया कि तू किसी का मारा न मरेगा पर अमर कोई होता नहीं अतः भूमण्डल में अद्भुत भांति से जन्मा एक मनुष्य तेरा घातक होगा। राजा के मन में उस अद्भुत रीति से जन्मे मनुष्य के खोज की चिन्ता उदय हुई। इस लिये उस ने बेताल को आज्ञा दी कि खोज करे। बेताल ने इस भेद का पता लगा राजा के निकट निवेदन किया कि प्रतिष्ठानपुर में एक कुम्हार की पुत्री के एक लड़का हुआ है। वह गर्भ में बारह मास तक रहा और लड़काई के खेल कौतुक में लड़ाई का खेल यों बड़े चाव से खेला करता है कि सामन्त सैनिक और हाथी घोड़े बना के उन्हीं का व्यूह विन्यास कर आप सेनापति बनता है। यह समाचार सुनते ही विक्रमादित्य ने दलबल सहित उस बालक शालिवाहन पर युद्ध के लिये चढ़ाई की। वह बालक इन्द्रजाल जानता था तुरन्त काँदो के बने सामन्त, सैनिक, हाथी और घोड़ों को जादू से जीवत कर दिया और विक्रमादित्य से युद्ध में भिड़ा। निदान उसे हराकर उस का शिर काट लिया †।

शालिवाहन विरचित एक कोष भी था। इन दिनों वह नहीं मिलता पर बाणभट्टकृत हर्षचरित में उस का नाम है। यथा—

---

* भोजदेव नाम एक मालवे के राजपूत अच्छा गुणग्राही राजा हो गया है। उस की राजधानी धारानगरी थी। उस ने ९९७ से १०५३ ख्रीष्टाब्द तक राज्य किया। उस का वर्णन् पीछे लिखा जायगा।

† आजकाल के इतिहासज्ञ लोग बतलाते हैं कि विक्रमादित्य और कालिदासइत्यादि महाशय ख्रीष्टीय छठवीं शताब्दी में हुए थे। यदि यह बात सत्य है तो मानना होगा कि विक्रमादित्य और शालिवाहन के जन्म के कई सौ वर्ष पूर्व ही से संवत् और शक चल निकले हैं।

" अविनाशिनमग्राम्यमकरोच्छालिवाहनः ।
विशुद्ध जातिभिः कोषंरत्नैरिवसुभाषितैः ॥"

शूद्रक * ।

स्कन्दपुराण के कुमारिकाखण्ड के अनुसार ये कलियुग के ३२९० वर्ष अर्थात् १११ शक में राजा थे † मार्शम्यान महाशय की अंगरेजी में रचे भारतवर्षीय इतिहास के जो श्रीरामपुर के यन्त्रालय में दूसरी बार छपा है ६२ पृष्ठ में लिखा है कि मगधराज्य के सिंहासन पर सिपुरुक्क नामक एक राजमन्त्री सन् १५१ ई० में बैठा और चालीस बरस तक राज्य करके भारतवर्ष के प्रसिद्ध शूद्रक राजा से मारा गया। यह कथा कुमारिकाखण्डवाली कथा से किसी ढंग मेल खाती है क्योंकि दोनों स्थलों में समय की गणना लगभग समान पड़ती है । इन्हीं को लोग प्रसिद्ध मृच्छकटिक नाम नाटक का रचयिता समझते हैं पर मृच्छकटिक की प्रस्तावना में जो सब बातें लिखी हैं तिन से मृच्छकटिक स्वयं शूद्रक राजा का बनाया हो यह बात मन में नहीं धंसती । प्रस्तावना में लिखा है । गजेन्द्रगामी, चकोरचक्षु, पूर्णचन्द्रानन, गम्भीर बुद्धि शूद्रक नाम प्रख्यात कवि था । शूद्रक ने अपने पुत्र को सिंहासन पर बिठला के महासमारम्भ से अश्वमेधयज्ञ किया और एक सौ बरस और दश दिन लों जीकर अन्त में अग्नि में प्रवेश किया § राजा शूद्रक गम्भीर बुद्धि कवि हो के अपने ग्रन्थ में निज मुख से अपना ही बखान गजेन्द्रगमन, चकोरचक्षु, पूर्णचन्द्रानन इत्यादि पदों से करें यह क्योंकर संभव है ? किंच एक सौ

---

* काव्यदीपिका की भूमिका में जो अङ्गरेजों ने है लिखा है कि ये खीष्ट से पहिली प्रथम शताब्दी में थे देखो विलसन महाशय के छापे विष्णुपुराण में ४ खंड के १०७ पृष्ठ। शूद्रक राजा की कथा [See also Indian Antiquary, P. 74.] स्कन्दपुराणानुसार ये विक्रमादित्य के पूर्वज ठहरते हैं। देखो विधवाविवाह द्वितीय खण्ड ८९ पृष्ठ ।

† शाके १७६८ के माघमास की तत्वबोधिनीपत्रिका का ४०१ पृष्ठ देखो।

§ एतत्कविः किल

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोर नेत्रः परि पूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्वः ॥
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परम समुदये नाश्वमेधेन चेष्ट्वा ।
लब्ध्वा चायुःशताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निंप्रविष्टः ॥

वर्ष और दश दिन जीकर अन्त में अग्नि प्रवेश किया यों अपने अन्तकाल का उल्लेख ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में करे भला यह कैसे घटित हो सकता है ! इस से सहज में बूझ सकते हैं कि मृच्छकटिक राजा शूद्रक का बनाया नहीं है । यदि मृच्छकटिक को तो शूद्रक ने बनाया और उस के मरणानन्तर प्रस्तावना किसी दूसरे ने रच के उस में डाली । ऐसी कल्पना करें तो प्रस्तावना तथा नाटक की रचना परस्पर इतना मेल खाती है कि वह दो न्यारे नरों की बनावट हो यह सिद्धान्त हृदयङ्गम नहीं होता है । और कहीं ऐसी परिपाटी भी नहीं है कि ग्रन्थ तो कोई रचे और प्रस्तावना दूसरा लिखे । संस्कृत नाटक की प्रस्तावना तो नाटक का अंग गिनी जाती है । उसे दूसरा कोई जोड़ देये यह बात किसी प्रकार से प्रतीति के योग्य नहीं है * ।

भारवि ।

श्रीयुत ईश्वरचन्द्रविद्यासागर महाशय ने लिखा है † कि किरातार्जुनीय के कवि भारवि, कालिदास के अनन्तर और माघ श्रीहर्ष आदि के बहुत

अर्थात्

पूर्णचन्द्र मुख सुन्दर काया । कवि गजेन्द्र गामी द्विजराया ॥
भयो चकोर नयन बल पीना । शूद्रक अश्वमेध मख कीना ॥
नाम कमाइ उछाह बधावा । करि सुत कहँ नृपपद बिठलावा ॥
दश दिन अधिक वर्ष शतजी के । जियतहिं पैठ कुण्डअगिनी के ॥

* देखो श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर रचित संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्यविषयक प्रस्ताव का ४६ पृष्ठ ।

† संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्तावका १७ पृ॰ देखो और इसी पुस्तक के १९पृष्ठ में लिखा है, यह बात उघड़ी जान पड़ती है कि किरातार्जुनीय के अनुकरण में शिशुपालवध रचा गया दोनों काव्यों की रचना शैली,की विवेचना करने से यह बात कभी मन मे नहीं समाती कि शिशुपाल बध की अनुकृति किरातार्जुनीय है । किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपालवध को प्राचीन कहने मे कोई आधार नहीं है, परन्तु

'काव्येषुमाघः कविकालिदासः'

और

'उदिते नैषधे काव्येक्वमाघः क्वचभारविः'

इन वचनों में माघ का नाम सब के पहिले मिलता है । उस से ईश्वरचन्द्र के मत के विपरीत ही सिद्ध होता है । इसी हेतु से हम ने अटकल की अपेक्षा पुराने ऐतिहासिक उपाख्यानों ही का अधिक टेक लिया है । क्योंकि

समय पहिले हुए हैं। श्रीहर्ष इत्यादि से भारवि को प्राचीन निःसन्देह मैं भी मानता हूं पर माघ की अपेक्षा भी उन्हें प्राचीन कहने में सहमत नहीं हूं। भारवि के जीवन समय का ठिकाना मेरा लगाया नहीं लगता। अतः उन के नाम को मैंने प्राचीनतम कवियों की नामावली में डाला। * इन का दूसरा नाम शतपुरुष्य था।

भट्टि अथवा भट्ट †।

इस महाकवि ने अपने ही नाम से प्रसिद्ध भट्टि एक महाकाव्य बनाया है। उस में श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र वर्णित हैं। यह काव्य बहुत प्रचलित है। संस्कृताभ्यासी विद्यार्थी लोग व्याकरण सीख के इस काव्य को इस लिये पढ़ते हैं जिस में कि व्याकरण के उदाहरणों को इस में वार२ पाके अच्छे व्युत्पन्न हो जावें।

कवि ने स्वरचित इस काव्य की समाप्ति में निज पहिचान के लिये कुछ सूचना तो दी है पर खोल के अपना नाम नहीं बतलाया। इसी से काव्यकर्ता के निरूपण में बड़ी अड़चन पड़ी है। इस काव्य के टीकाकारों में जयमङ्गल सब से पुराने और प्रामाणिक हैं। वे इस काव्यकर्त्ता का नाम भट्ट कहते हैं। काव्य का भट्टि नाम देखने से उन का कहना असङ्गत नहीं बोध होता है क्योंकि भट्ट के रचे को भट्टि कह सकते हैं। पर नवीन

'नह्यमूला प्रसिद्धिः'

इस न्याय के बल से बहुत दिनों से प्रसिद्धऐतिहासिक उपखानों को सहसा विसर्जन नहीं कर सकते हैं। आलङ्कारिक लोग कहते हैं कि काव्यारम्भ में माङ्गलिक शब्द प्रयोग करना चाहिये। घटकर्पर के वचनानुसार माघ महाकाव्य होने के कारण उस के आरम्भ में पहिले श्रीशब्द का प्रयोग मिलता है। भारवि ने किरात के आरम्भ में श्रीशब्द का अनुकरण किया है। यदि भारवि माघ से बढ़ के कवि होते तो उन्हीं के माहात्म्य का उपखान प्रसिद्ध होता।

* भोजप्रबन्ध में भारवि का नाम मिलता है। ५०६ शकाब्द का खुदा एक शिला लेख मिला है। उस में भारवि का नाम लिखा है। परंतु

'सहसा विदधीत'

इत्यादि प्रतीक वाला श्लोक जो किरातार्जुनीय में है, सो विष्णुशर्मरचित हितोपदेश के अन्त में भी उद्धृत है।

† राजपुताने में भट्टि नाम की एक जाति होती है। इस से इस बात का पता लगाना चाहिये कि भट्टि यह नाम ग्रन्थकर्त्ता का निज नाम था अथवा जातीय उपाधि किंवा उस के किसी पुरखे का नाम ही के उस तक चला आया था।

टीकाकार भरतमाल्लिक भट्टिकाव्य के रचयिता का नाम ' भर्तृहरि ' कहते हैं पर अचरज होता है कि वे अपने वचन के समर्थन में कुछ प्रमाणोपन्यास नहीं करते हैं। उन के कथन का खण्डन तो भट्टि काव्य की समाप्ति के श्लोक से ही हो जाताहै क्योंकि कवि ने कहा है कि मैंने वलभीपति नरेन्द्र राजा की राजधानी में रह कर यह काव्य बनाया है * । यह उक्ति भर्तृहरि के पक्ष में संलग्न नहीं हो सकती क्योंकि भर्तृहरि आप राजा थे। वे काहे को दूसरे की राजधानी में टिक के काव्य निर्माण करेंगे।

यों भरतमल्लिक की कहतूति ऊटपटांग ठहरी और भट्टि काव्य का कर्त्ता कौन किस देश और काल में था और कब कहां काव्य की रचना की इन बातों की खोज़ करना चाहिये। जयमङ्गल की टीका से यह तो विदित हो चुका कि काव्यकर्त्ता का नाम भट्ट था पर उस में कवि के समय की कुछ चर्चा नहीं है। बंगाली बोली की भक्तमाल में श्री श्रीधर स्वामी के वर्णन के प्रकरण में जो लिखा है। उस का उलथा यह है।

जय श्रीधरस्वामी जग पावन। लिखइ भागवत भवदुखदावन।
इनकी विरति कथा पहिले की। कहहुं सुनहु श्रुति सुखद विवेकी॥
श्रीयुत परमानन्दपुरी की। कृपा भई सुनृसिंह शशी की।
जागी विमल ज्योति जियमाहीं। भा विराग गृह मन लग नाहीं॥
पूर्णगर्भातिय सदन अकेली। ठानेउ विपिन गमन परिहेली।
महाभाग्य वर बुध गम्भीरा। तिहि अवसर प्रसूति कृतपीरा॥
पत्नी जनि शिशु स्वर्ग सिधारी। भयउ सचिन्त कुदाँव निहारी।
जाउं विपिन को शिशु संगराखे। घरमहं रहन हृदय नहिं भाखै॥

---

* काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां
श्रीधर सूनु नरेन्द्र पालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य
क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्॥
(भट्टि २२ सर्ग ३५ श्लोक)

अर्थात्

राजधानि वलभीपुर माहीं।
राज करत श्रीधरसुत आहीं॥
प्रजाहितोद्यत भूपति पायो।
तिहि यश लगि यह काव्य बनायो॥

इमीचितदुचितसाधु लखभुइयां। छानी ते अरडा बिसतुइयां।
गिरेउ फुटेउ निसरेउ इकबच्छा। खायउ वह संमुख धरि मच्छा॥
निरखि सुसाधु गुनेउ. मनमाहीं। जो इहि रख्यो सु गे कहुं नाहीं।
इहि शिशुह कहं वे रखवारे। इमि चित चेति विपिन पगुधारे॥
त्यजिशिशु लखिअनाथप्रतिपाला। पुरवासिन्ह वह बुद्धि विशाला।
समय पाइ बुध होइ बखाना। भट्टिकाव्व रघुबर गुणगाना॥

ऊपर उक्त वर्णन के सहारे से जाना जाता है कि ये कवि शङ्कराचार्य के पीछे हुए क्योंकि श्रीधरस्वामी ने जिन्हें इन कवि का पिता कह के निर्देश किया है वे भी शङ्कराचार्य के पीछे ही हुए हैं। इस से इन कवि का जन्म ७०० शकाब्द के पीछे हुआ। ऐसा समझ में आता है। पर कवि ने आप जो कुछ लिखा है, उस पर ध्यान देने से जाना जाता है कि वे शङ्कराचार्य से पहिले थे। उन ने लिखा है कि मैं ने वलभीपति नरेन्द्र राजा की राजधानी में बसकर यह ग्रन्थ रचा। इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि उदयपुर राज्य की पुरानी राजधानी वलभीपुर था। वहां के राजा लोग अपने को श्रीरामचन्द्रजी के ज्येष्ठ पुत्र लव के सन्तान बतलाते हैं। अतः असम्भव नहीं है कि इस काव्य का कवि ने उक्त राजधानी में रह के वहां के राजाओं के मूलपुरुष श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का वर्णन किया हो। इतिहास पढ़ने से और भी ज्ञात होता है कि इस वलभीपुर का ध्वंस ४४६ शकाब्द अर्थात् सन् ५२४ ईस्वी में नौशेरवां बादशाह के बेटे नमिजाद ने किया। इसलिये इस काव्य के कवि को ४०० शकाब्द से पूर्ववर्ती मानना पड़ता है। परन्तु उक्त राजधानी में पूर्व में नरेन्द्र नामक कोई राजा हुआ है कि नहीं जब तक यह निर्णय न हो ले तब तक इस विषय की कुछ भी मीमांसा (छान) नहीं हो सकती है। अब तक जो डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग २ पकी है; उन से यही निरूपित होता है कि ये कवि शंकराचार्य से भी पहिले हुए। इस के विपरीत जो भट्टि को भक्तमाल में श्रीधर का पुत्र लिखा है; उस का कारण अनुमान होता है कि भट्टिकाव्य की समाप्ति के श्लोक में 'श्रीधर सूनु' यह जो पद आया है; उस का अन्वय और तात्पर्य बिना बूझे बिचारे भक्तमाल ग्रन्थकर्त्ता ने केवल कान से सुनकर भट्टिकाव्य के रचयिता को श्रीधर का पुत्र मान लिया है।

विष्णुशर्मा ।

कितने एक लोग समझते हैं कि पञ्चतन्त्र और हितोपदेश इन्हीं का बनाया है। पर इस बात का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। ये दोनों ग्रन्थ किसी एक ही के बनाये हों। इस बात को बुद्धि नहीं मानती। किञ्च जब हितोपदेश के रचयिता ने आप लिखा है कि मैंने पंचतन्त्र तथा और २ ग्रन्थों का भी सारांश चुन कर इस पुस्तक के बनाने में हाथ लगाया * तब हितोपदेश और पचतंत्र इन दोनों पुस्तकों का एक ही ग्रन्थकार हो, इस बात को मन कभी नहीं पतियासकता। पंचतन्त्र और हितोपदेश दोनों पुस्तकों में विष्णु शर्मा वक्ता और राज कुवंर लोग श्रोता लिखे है। उसी से लोग धोखा खाते हैं कि विष्णुशर्मा ही दोनों पुस्तकों का बनानेहारा है। लल्लू लाल तो हितोपदेश को नारायण पण्डित ही का बनाया बतलाते हैं †।

पंचतन्त्र ग्रन्थकार बड़े प्राचीनों में हैं §। इन का रचित पचतन्त्र और २ देशों में भी बहुत काल से प्रचलित हैं। अबुलफज़ल मशहूर मुसन्निफ है। उस ने फ़ारसी ज़बान में पंचतन्त्र का तर्जुमा कर के दीवाचा में लिखा है कि विद्पाई नामे ब्राह्मण ने किसी राजा के दरस में यह किताब बयान की। बूझ पड़ता है कि विद्पाई यह शब्द ब्राह्मण की किसी पदवी के शब्द से बिगड़ा होगा। हो न हो वह वाजपेयी का अपभ्रंश है। अबुलमान नामे शख्स ने जो फारसी में मुसन्निफ़ था कलीना

---

* पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्था दाकृष्य लिख्यते।

अर्थात् पञ्चतन्त्र तथा अन्य ग्रन्थ से भी संकलन कर के यह पुस्तक बनाता हूं।

† "काहू समै श्रीनारायण पण्डित ने नीतिशास्त्रनि तें कथानि को संग्रह करि संस्कृत में एक ग्रन्थ बनाय वाको नाम हितोपदेश धरो॥ (राजनीति)

§ पञ्चतन्त्र में याज्ञवल्क्यस्मृति के बचन उद्धृत मिलते हैं अध्यापक विलसन महाशय बतलाते हैं कि याज्ञवल्क्य स्मृति में 'नाणक' यह एक प्रकार के सिक्के का नाम पाया जाता है। उस सिक्के का चलना ख्रीष्टीय द्वितीय शताब्दी से हुआ है। अतः याज्ञवल्क्य-स्मृति ख्रीष्टीय द्वितीय शताब्दी से पुरानी नहीं जान पड़ती। यदि यह अनुमान सत्य है तो पञ्चतन्त्र की रचना ख्रीष्टीय तृतीय शताब्दी से परे और चतुर्थ शताब्दीय से पूर्व हुई ऐसा प्रतीत होता है। हम ऐसे अनुमान का अनुमोदन नहीं करते हैं क्योंकि वैसे ढङ्गों से तो सभी पुराण शास्त्र आदि ग्रन्थों को नवीन बतला सकेंगे।

दमना * का तर्जुमा किया। उस के दीबाचे के मुताबिक अबुलफज़ल व हुसेन वाफ़िज ने लिखा है कि फारस के बादशाह नौशेरवां ने (जो कि शके ४'१२ में बादशाहत करता था) एक आलिम हकीम को कलीना दमना तलाश कर ले आने वास्ते हिन्दोस्तान में रवाना किया। वह हकीम हिन्दुस्तान से उस किताब को हासिल कर अपने मुल्क में वापिस आया। पेश्तर शाह के हुक्म से कदीम फारसी ज़बान पहल्वी में उस का तर्जुमा हुआ। बअ़द उस के अरब के शाहन्शाह मन्सूर की इजाज़त से अबुलजाफर ने पल्हवी से अरबी में उस का खुलासा लिखा। उसपर से शाहजादा नासिरुद्दीन अहमद के फ़र्माने से अबुलहुसेन ने फ़ारसी में इन्तिख़ाब किया। उसी को रुदकीनामे शायर ने नज़म में इन्शा किया। बअ़द हू अबुलमुजफ्फ़र बहरामशाह के हुक्म से अबुलमाल ने दूसरी दफ़अ़ अरबी ज़ुबान में इस की नसर तयार किया। उसी ज़माने से अबुलमाल की लिखी यह कलीना दमना किताब शुहरत पाने लगी। उस के चन्द रोज बअ़द वाफ़िज और अबुलफज़ल ने इस की फारसी ज़ुबान में कैफियत लिखी। इस के बअ़द मौलाना हुसेन ने फारसी में उसी की नकल से "अनुवारसुहेली" नामें किताब तसनीफ़ की।

हितोपदेश में राजा शूद्रक और उस के रचित मृच्छकटिक नामक नाटक के मुख्य पात्र चारुदत्त का नाम मिलता है और एक ठौर भारवि रचित "सहसा विदधीत न क्रियाम्" इत्यादि प्रतीकवाला श्लोक भी उठाया है। इन दोनों पकड़ से विष्णु शर्म्मा के समय निरूपण में बुद्धि दौड़ाई जा सकती है।

विशाखदेव।

ये एक राजकुमार थे। इन का दूसरा नाम विशाखदत्त है। बहुतेरे मानते हैं कि "मुद्राराक्षस" नामक संस्कृत नाटक इन्हीं का बनाया है।

---

* ये दोनों शब्द संस्कृत के करटक और दमनक शब्दों के फारसी में प्रतिरूप कल्पित कर लिये गये हैं। ये दो नाम पञ्चतन्त्र और हितोपदेश के भी पहिले वृत्तान्त में आते हैं।

बिचला समय (द्वितीय काल)।

चोरकवि [विल्हण] दूसरा।

रहस्यसन्दर्भ के प्रथम पर्व ग्यारहवें खण्ड में चोर कवि का जैसा वृत्तान्त लिखा है उसे हम इस स्थान में उठाते हैं।

कनकाचल (कनकाद्रि) के उत्तर महापंचाल देश में लक्ष्मीमन्दिर नाम एक नगर था। वहां का राजा मदनाभिराम और रानी मन्दार माला थी। उन दोनों की कन्या का नाम 'यामिनी पूर्णतिलका' था। वह परम रूपवती, विनीत, गुणागर और माता पिता की आज्ञाकारिणी थी। उस के देखने से मातापिता के नयन जुड़ाते थे। राजा की इच्छा थी कि अपनी बेटी को साहित्य विद्या में निपुण करे। उन दिनों उस के यहां विल्हण कवि परिडत के पद पर नियुक्त थे। वे साहित्य शिक्षा अच्छी दे सकते थे पर रूप में सुन्दर सलोना होने से राजा के मन में खटका कि मनोहर काव्य रचना में अति कुशल, छ भाषाओं का ज्ञाता, यह मदनमूर्ति अद्वितीय पुरुष है, इसे देख नारियों का धीरज सम्हलना कठिन (जान पड़ता) है। इतना खटकने पर भी कन्या को काव्यकला विना सिखाये राजा का मन नहीं मानता था। अतः उस ने अनुसन्धान कर के जान पाया कि विल्हण को कुष्ठ शरीरवाले से घिन हैं और राजकन्या जन्मान्ध जन का मुख देखना नहीं चाहती। सो इस सूत्र से राजा ने झूठीचतुराई रच के अपना इष्ट सिद्ध करनाचाहा कि दोनों के बीच पट डाल के पढ़ावें। कन्या को चिता दें विल्हण जन्म का अन्धा है और विल्हण को कह के सावधान कर दें कि कन्या कोढ़िनी है तो दोनों परस्पर के देखने से बरके रहेंगे। निदान वैसा ही किया। लड़की पढ़ने लगी। परिडत पढ़ाने लगा। राजकन्या बड़ी तीव्र बुद्धि थी। थोड़े ही दिनों में काव्य शास्त्र में व्युत्पन्न हो के नाना अलङ्कार गर्भित बहु उक्ति युक्ति मय रसीली कविता आदि में कुशल हो गई।

एक समय बसन्त की पौर्णमासी की सांझ में उगते चन्द्र को कविवर विल्हण ने अपने सोने के घर के गौंखे से देख उस के वर्णन में यह कविता की—

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नायं कलङ्कः शयितो मुरारिः॥

अर्थात्

यह नहिं गगन किन्तु निधि नीरा। नहिं उडु मण्डल फेन जखीरा*॥
नहिं यह चन्द कुण्डलित शेषा। नहिंकलङ्क लिम सोव रमेशा॥

और भी

इन्दुमिन्दु मुखि लोकय लोकम् भानु भानु भिरमुं परितप्तम्।
वीजितुं रजनि हस्त गृहीतन्तालवृन्त मिव नाल विहीनम्॥

अर्थात्

चन्दबदनि देखहु यह चन्दा। उदय होत मन भाव अमन्दा॥
जनु रवि ताप तप्त जग बीजन†। धृत निशिदासि दण्ड बिनु बीजन ‡॥

घर में बैठी राजकन्या, यामिनीपूर्णतिलका, कविवर की ऐसी अनोखी कविता सुन चमत्कृत हो अपने मन में कहने लगी कि यह क्या है पहिले तो जन्मान्ध जन का कवि होना दूसरे उस से कलङ्कयुक्त चन्द्र का देखा जाना; तीसरे चन्द्र का वर्णन; निपट दुर्घट है। अहो! पिता ने मुझे अवश्य और का और बतलाया। जन्मान्ध के न देखने की मेरी प्रतिज्ञा चाहे टले पर मैं अध्यापक को अवश्य अपनी आंखों से देखूंगी। इस के अनन्तर दोनों की देखा देखी हुई मन में नवीन अनुराग का अंकुर भी उदय हुआ। फलतः दोनों रहस्य में गान्धर्व बिवाह कर दाम्पत्य सुख में पगे। कुछकाल पीछे राजा को यह भेद खुलगया सो उसने क्रोधान्ध हो बिल्हण को बध के लिये कोतवाल के हाथों में दिया। कोतवाल चोर कवि को मरघट में ले गया और देखा कि वह निधड़क हंसमुख है। बाधिक ने वैसे निधड़कपन का हेतु पूछा तो कवीश्वर ने उत्तर दिया कि मेरे मन में जब प्रफुल्ल पद्मलोचना, सुमुखी देवी सर्वदा वास किये है; तब काहे को डरूं। इतना कह के बिल्हण ने बात की बात में पचास श्लोकों की एक कविता की लड़ी बना डाली। उस में अपनी प्रिया (देवी) के रूप और गुण आदि का वर्णन किया। परिणाम में राजा को जब उस की वैसी निर्भीकता और आशुकविता शक्ति विदित की गई तब वह मन में रीझ के मगन हुआ और बिल्हण का प्राण दान दे यामिनीपूर्ण तिलका को उस के हवाले किया।

---

* समूह।

† ढांकने को।

‡ पङ्खा।

रहस्य सन्दर्भ के सम्पादक महाशय ने इस कथा की समाप्ति में लिखा है कि यथार्थ में विल्हण ही 'चोर' कवि है। नवद्वीप के महाराज कृष्ण चन्द्र राय के सभासद् पण्डित भारतन्चद्र, काञ्चीपुर के निवासी राजकुमार सुन्दर को चोर कवि और विद्यानाम्नी राजकुमारी के साथ उस का गान्धर्व बिवाह हुआ यह जो कहते हैं सो बनावटी बात है। सम्पादक महाशय के इस कथन को हम सर्वथा नहीं मान सकते क्योंकि भारतचन्द्र ही ने विद्यासुन्दर की कहानी पहिले पहिल रची हो यह कोई बात नहीं है। बररुचि ने संस्कृत में यह कहानी पहिले रची थी; ऐसा सुनते हैं। बंग भाषा में भी यह कहानी भारतचन्द्र के पहिले दूसरों ने बनाई थी * फिर जब कि चोरपञ्चाशिका के अति प्रचलित श्लोकों में से एक श्लोक के अन्त में—

"विद्यां प्रमाद गुणितामिवचिन्तयामि" अर्थात् भूल से भुलवा दी गई विद्या की नाईं विद्या नाम्नी कामिनी के सोच में मैं पड़ा हूं॥

यों विद्या का नाम लिखा मिलता है तो और क्या सन्देह करें। चोरपंचाशिका के श्लोक श्लेष से एक पक्ष में महाविद्या की स्तुति में और अपर पक्ष में विद्या नाम राजकुमारी के रूपगुण आदिके वर्णन में स्पष्ट घटित होते हैं। इन श्लोकों पर दोनों अर्थ पर घटानेवाली टीका भी बन गई है। उस के पढ़ने से मन में बैठता है कि कविही ने श्लेषात्मक कविता रची है क्योंकि जैसा शृंगाररस के अमरुशतक का अर्थ खींच खांच के शान्तिरस पर घटाया है वैसी कष्ट कल्पना से योजना उसकी टीका में नहीं है।

रहने देते हैं क्योंकि इस विषय में और छान बीन वा उधेड़ बून करना हमारा काम नहीं है। चोर कवि किस समय में थे। हम इतनाही जतलाना चाहते हैं। सम्पादक महाशय ने लिखा है कि चोर कवि ८०० वर्ष पूर्व में भारतवर्ष के प्रधान २ कवियों में गिने जाते थे पर हम और भी अधिक धंस के देख पाते हैं कि १२५० वर्ष पूर्व भी उन का नाम प्रसिद्ध था क्योंकि बाणभट्ट रचित श्रीहर्ष चरित में भी चोरकवि का नाम मिलता है।

---

* देखो बररुचि की वर्णन में।

शिल्हण ।

उसी रहस्यसन्दर्भ नामक पत्र में लिखा है कि बिल्हण और शिल्हण ये दोनों कवि सम सामयिक हैं। इस से हम अनुमान करते हैं कि बिल्हण जैसे शृंगाररस के वर्णन में तत्पर थे शिल्हण को ठीक उस के विपरीत वैसाही शान्त रसमयी कविता की रचना में व्यासंग रहा होगा सम सामयिक गुणवन्तों में परस्पर लाग डांट की बहुत सम्भावना है। उसी से शिल्हणकृत शान्तिशतक नाम पुस्तक में बीच २ शृंगार रस का वर्णन करनेवालों के ऊपर कटाक्ष करने का आभास मिलता है।

यथा—

यदा प्रकृत्यैव जनस्य रागिणो भृशं प्रदीप्तो हृदि मन्मथानलः।
तदा तु भूयः किमनार्थ पण्डितैः कुकाव्य हव्या हुतयो निवेशिताः॥

अर्थात्

जीव सहज विषयी जगरागी। धधकत अधिक हृदय मदनागी॥
तिहि पर कुकवि कुकाव्य आहुती। देहि अहह यह महा अजुगुती॥

यह जो श्लोक नीचे लिखा जाता है; उसे मम्मट ने काव्य प्रकाश में उठाया है—

लब्धः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
सन्तर्पिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम्।
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं
कल्प स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥

अर्थात्

होत कहा मनसा परिपूरन सम्परिपूरन सम्पति पाये।
होत कहा धन धान निधान व्है दै मनमान सखान्ह रिझाये॥
होत कहा पुनि बैरिन्ह के शिर पै पग दै निज छत्र धराये।
होत कहा प्रलयावधि अक्षत गात टिके न विराग बढ़ाये॥

पर यह श्लोक शिल्हण का रचित है वा नहीं? तिसका निर्णय नहीं होता क्योंकि भर्तृहरि रचित वैराग्यशतक में भी इसी ढंग का एक श्लोक मिलता है।

यथा—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।

सम्पादिताः प्रणयिनो विभवास्ततः किं
कल्पस्थितास्तनुभृतस्तनवस्ततः किम् ॥

मानतुंग ।

यह जैन थे। ख्रीष्टीय छठीं शताब्दी उतर जाने पर जैन मत भारतवर्ष में बहुत फैल गया था। सुनने में आता है कि इन से कुछ अपराध बना। तिस के प्रतिफल में राजा ने इन्हें लोहे की सिक्कड़ में जकड़वा दिया। ये भक्तामर नाम स्तोत्र रचना कर चले और उस से निगड़ मुक्त हुए।

मयूरभट्ट ।

ये बाणभट्ट के श्वसुर * और उन के समय में जीते थे। अतः आगे बाणभट्ट का समय निरूपण करने से इन का भी समय निरूपित हो जायगा। कोई २ कहते हैं कि ये उज्जैन के वृद्ध भोजराज की सभा में उपस्थित थे। मयूरभट्ट ने अपनी कन्या के रात्रिविलास के वर्णन में यह श्लोक रचा।

उद्धूय बाहु युगमायतदेहवल्ली
प्रातः कुरङ्गनयनाविजहाति जृम्भाम्।
मन्ये द्वयो रतिरणात् पुरतो निवृत्तं
कामो † धनुः कुटिलतारहितं करोति ॥

अर्थात्

मृग दृग भोर जगी रंग राती। भुज पसारि अंगराति जम्हाती ॥
जनु दम्पति रति समर समापत। जानि मदन धनु पनच उतारत ॥

तिस से इन की बेटी नें खीझ कर शाप दिया ‡ कि कोढ़ी हो जा। उस से ये कोढ़ी हो गये। पीछे सूर्य की स्तुति में 'सूर्य शतक' बनाया सो सूर्य के प्रसाद से उन का कोढ़ मिटा § मयूरभट्ट की ऐसी सिद्धि

---

* कोई २ कहते हैं साले थे। (अनुवादक)

† बंगला में खोयम् पाठ है यहां कामो पाठ रक्खा है। अनुवादक

‡ कहनावत प्रसिद्ध है 'कि निरंकुशः कवयः' अर्थात् कवियों के मुख में लगाम नहीं होती।

§ आदित्यादेर्मयूरादीनामनर्थ निवारणम्" इति काव्यप्रकाशः

देख के उन के जमाई बाणभट्ट बहुत सिहाये और उन्हें भी अपनी सिद्धि देखाने की बहुत साध हुई। सो अपने हाथ से अपने हाथ पांव में कुल्हाड़ी मार अपनी इष्टदेवता दुर्गा की स्तुति में सौ श्लोक बना डाले। दुर्गा के प्रसाद से उन के भी फिर जैसे के तैसे हाथ पांव हो आये। हिन्दू लोगों की ऐसी सिद्धाई देख के बौद्धमतवाले आर्हत लोग बड़े चंपे झिपे। यह देख उन के आचार्य मानतुङ्गपुरी उन के धिरञ्जन के लिये सब के सामने राजा से आज्ञा मांग एक घर भीतर पैठे और अपने शिष्यों से बोले कि उस घर के किवाड़ों को बन्द कर के अड़तालीस सिकड़ी की जञ्जीर से कस दो। जब चेलों ने वैसा किया तब मानतुङ्ग ने भीतर बैठे २ बुद्धदेव की महिमा में 'भक्तमार' स्तोत्र नाम से अड़तालीस श्लोक रचे। इधर ज्यों २ एक २ श्लोक बनता गया उधर त्यों २ लोहे की एक २ सिकड़ी आप ही आप खुलती गई। यों अड़तालीस श्लोक पूरे होने पर अड़तालीसो सिकड़ियां खुल गईं। यह अद्भुत सिद्धि देख बौद्धों ने फिर बुद्धदेव के नाम पर जयजयकार किया।

जिस राजा के साम्हने लोगों को यह सिद्धि दिखलाई गई वह उज्जैन का महाराज वृद्ध भोजराज था। ऐसा लिखा देखने में आता है * न केवल इतना ही किन्तु उस की सभा में बाण, मयूर, कालिदास इत्यादि पांच सौ पण्डित और कवि विद्यमान थे। यह बात भी लिखी है पर यह क्योंकर हो सकता है कि वृद्ध भोजराज के समय में ये सब वर्त्तमान रहे हों क्यों कि इस बात के प्रतिकूल बहुत से प्रमाण दिखलाये जा सकते हैं। सब से प्रबल प्रमाण यह है कि भूपाल राज्य में आज कल एक ताम्रलेख मिला है;

अर्थात् मयूर आदि कवियों के दुःख सूर्यादि की स्तुति रूप कविता बनाने से दूर हुए।

मयूरनामाकविः शतश्लोकैरादित्यं स्तुत्वाकुष्ठान्निस्तीर्ण इति प्रसिद्धिः।

इति टीकाकारीजयरामः।

अर्थात् मयूर नाम कवि ने सूरशतक बना के सूर्य्य का स्तव किया उस के प्रभाव से उन का कोढ़ छूट गया। ऐसी किम्वदन्ती प्रसिद्ध है।

* सूर्य्यशतक की 'बालविनोदिनी' नाम टीका में यह कहानी लिखी है। सूर्य्यशतक की तीन टीका प्रसिद्ध है। उन में से एक का नाम 'बालविनोदिनी' है। यह नैपाल के ललितपुर ग्राम के रहवैये हरिवंश और दूसरी बालम (बल्लभ) भट्ट की और तीसरी गङ्गाधर पाठक की बनाई है।

उस में खुदा है। मानतुङ्गाचार्थ शक१०१७ में वर्त्तमान थे। उक्तताम्रफलक में मानंतुगाचार्य का जो समय लिखा है उसे विचारने से जान पड़ता है कि हां वे धारा नगरी के राजा भोज के सचमुच समसामयिक थे। पर बाण और मयूरभट्ट भी उन के समय में रहे हों; यह बात प्रतीति योग्य नहीं है क्योंकि उन कवियों की अर्वाचीनता के मण्डन में जो घनेरे प्रमाण दरसाए जाते हैं, उन का खण्डन केवल बालविनोदिनी टीका की अनर्गल कपोल कल्पना से नहीं हो सकता *।

बाणभट्ट।

ये प्रसिद्ध कवि हैं। हर्ष चरित्र के प्रथम उच्छ्वास में अपनी पहिचान यों देते हैं। शोणनद के पश्चिम में च्यवनमुनि के आश्रम † से चार कोस चल के प्रीतिकूटनाम ग्राम में बाण रहते थे। वे अपनी वंशावली ऐसी लिखते हैं। भृगु के वंश में च्यवन हुए। उन के पुत्र दधीचि उन ने सरस्वती नाम की एक स्त्री विवाही। उस के गर्भ से सारस्वत नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। भृगुवंशी अक्षमाला पुत्र वात्स्यायन के पिता वत्स मुनि जिस दिन जन्मे वही सारस्वत मुनि की भी जन्म तिथि थी। वात्स्यायन से कई पीढ़ी पीछे उन के वंश में कुवेर नाम एक विद्वान जन्मा उस के चार पुत्र थे अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत। पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था। उस के ग्यारह पुत्र भये। उन के नाम ये हैं–भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस, (जातवेदाः) चित्रभानु, त्र्यक्ष. अहिदत्त, (सकदत्त) और विश्वरूप। चित्रभानु का विवाह राज्य देवी से हुआ। येही बाण के मा बाप हैं। बाण जब चौदहवर्ष के हुए

* श्री चैत्र के मार्ग में मयूरभट्ट का जन्म हुआ और उन की रक्षा मयूर लोगों ने की। इस से उन का नाम मयूर पड़ा। इन के वंशज श्रीयुक्त रामधनतर्क पञ्चानन अभी कीकटो में वर्तमान हैं। ये वारेन्द्रियों में शुद्ध वैदिक हैं। मयूरभट्ट रचित चण्डीशतक नाम एक और ग्रन्थ भी सुनने में आता है।

† वायुपुराण में इस का प्रमाण यथा—

कीकटेषु गयापुण्यानदीपुण्यापुनःपुना।
च्यवनस्याश्रमःपुण्यःपुण्यंराज-गृहं वनम्॥

अर्थात्—

गया पुनपुना सरित अरु, बिपिन राज गृह ठाम।
च्यवनाश्रम ये जानिये, मगध महातम धाम॥

तभी उन के माता पिता परलोक सिधारे। बाण के साथियों में मुख्य ये तीन जन थे। भद्रनारायण, ईशान और मयूरक। बाण ने एक यूनानी जाननेवाले को अपने यहां रक्खा था। उस से यूनान की पौराणिक बातें सुना करते थे। *

कन्नौज का महाराज शीलादित्य प्रसिद्ध पुरुषों में है। वह ५७२ शक अर्थात् ६५० खीष्टाब्द में था। उस के पिता का नाम प्रताप शील और उपाधि प्रभाकर वर्द्धन थी। इस प्रभाकर वर्द्धन के तीन पुत्र थे। जेठा बेटा राज्यवर्द्धन और उस से छोटा शीलादित्य था शीलादित्य से छोटा हर्षवर्द्धन था। वह ५२२ से ५४७ शक अर्थात् खीष्टाब्द६०० से ६२५ तक राज्य करता रहा। बाणभट्ट इसी राजा की सभा में नियुक्त थे और उसके चरित्र के वर्णन में हर्ष चरित नाम एक काव्य बनाया। कादम्बरी नाम प्रसिद्ध गद्याख्यापिका भी इसी महाकवि की निर्मित है † ॥

बाण बिरचित हर्षचरित में कुछ कवियों के नाम काव्य का नाम श्लोकबद्ध मिलते हैं। उन से कौन २ कवि बाण से भूतपूर्व हैं तिस का ठीक ठिकाना लगता है। उन श्लोकों को नीचे लिखता हूं।

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया (क)।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥
पदबन्धोज्ज्वलोहार कृतवर्ण क्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य (ख) गद्यबन्धो नृपायते ॥
अविनाशिनमग्राम्य मकरोत् सातवाहनः (ख)।
विशुद्धजातिभिः कोषं (क) रत्नैरिव सुभाषितैः ॥
कीर्त्तिः प्रवरसेनस्य (ख) प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना (क)॥
सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकै र्बहुभूमिकैः।

---

* कर्नल विलफर्ड महाशय (Colonel Wilford) कहते हैं कि बाण यूनानका Illad वा Odessey सुनते रहे होंगे। एक्टोयन्(Action) कहते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग भी होमर का Illiad सुनते थे।

† कोई २ समझते हैं कि रत्नावली और नागानन्द भी बाणभट्ट के बनाये हैं। Dr. Hall कहते हैं कि इन दोनों नाटकों के पहिले श्लोक एक ही ढंग के हैं। जिस शिलादित्य राजा की सभा में बाणभट्ट नियुक्त थे, उस ने ६१० से ६५० खीष्टाब्द तक राज्य किया था। यह निश्चित हो चुका है।

(क) इस संकेत से काव्य का (ख) इस संकेत से कवि का नाम संकेतित है।

सपताकैर्यशो लेभे भासो (ख) देवकुलैरिव ॥
निर्गतासु नवाकस्य कालिदासस्य (ख) सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥
समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हर लीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा (ख) ॥
आढ्यराज (ख) कृतोत्साहै र्हृदस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव कवित्वेन प्रवर्तते * ॥
(हर्षचरित प्रथम उच्छास ११-१८)

अर्थात्—

वासवदत्ताग्रन्थ लखि, घस्यो कविन को मान ।
कर्ण समीप मनो पहुंचि, पाण्डव दल परिमान ॥ १ ॥
विमलहार सम वाक्य धरि, क्रम तें अक्षर साज ।
गद्यभट्ट हरिचन्द को, है कविता सिरताज ॥ २ ॥
कियो सात वाहन सुभग, काव्य अमर की भांति ।
शुद्ध सुभाषित रत्न की, मनहु बटोरी पांति ॥ ३ ॥
प्रवरसेन यश जगमगत, शशि अंजोर अनुहार ।
कापिदल सम जो सेतु चढ़ि, पहुंची सागर पार ॥ ४ ॥
सूत्रधार आरम्भ किय, प्रस्तावना समेतु ।
देववृन्द इव भास की, फहराने जस केतु ॥ ५ ॥
कालिदास मुख तें कढ़ी, कविता मधुर सुभाय ।
मनहु पुहुप की मञ्जरी, जन मन लेत लुभाय ॥ ६ ॥
पारवती परितोष कृत, काम जगावनहार ।
वृहत कथा शिवचरित सम, अद्भुत किय विस्तार ॥ ७ ॥
आढ्यराज के चरित सब, पैठे हृदय मझार ।
खिंचत जीभ तल ते मनहुं, रुचिर काव्य की धार ॥ ८ ॥

जिन कई कवियों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में नहीं लिखा है। उन में से प्रवरसेन नाम के दो कवि हैं। दोनों काश्मीर के राजा थे। पहिला (प्रवरसेन) दूसरे (प्रवरसेन) का आजा था।

---

* कथा सरित्सागर आदि किसी २ पुस्तक में सातवाहन नाम मिलता है। अन्यत्र इस को सन्ती शालिवाहन लिखा दीखता है। ये काश्मीरेश हर्षराज के पुत्र थे। आढ्यराज इस नाम के स्थल में कहीं २ आद्यराज ऐसा नाम लिखा मिलता है।

दूसरे प्रवरसेन ने विक्रमादित्य के पुत्र प्रतापशील को जिस का नामान्तर शिलादित्य था युद्ध में परास्त किया। देखो कल्हण कृत राजतरंगिणी के तीसरे तरंग के ३२२ से ३३३ श्लोक तक।

धर्मदास।

इन ने विदग्ध मुखमण्डन के मंगलाचरण में बुद्धदेव की स्तुति की है * उस से सिद्ध होता है कि ये बौद्ध थे क्योंकि यह बात सब को विदित है कि ग्रन्थकार लोग ग्रन्थारम्भ में निज अभीष्टदेव ही का स्मरण और वन्दन आदि करते हैं। इन के बौद्ध होने से अनुमान होता है कि ये शङ्कराचार्य से भी पूर्व मगध राज्य में कहीं रहे होंगे क्योंकि उन दिनों हिन्दुस्तान के अन्यत्र की अपेक्षा मगध में बौद्धों की अधिक धूमधाम थी। बाणभट्ट कृत हर्षचरित में जितने मत सम्बन्धी नाम लिखे मिलते हैं उन में बौद्ध अधिक हैं। यथा विन्ध्याचल के ऊपर बसे एक गाँव के निवासियों के मत सम्बन्धी नामों के निर्देश स्थल में हर्षचरित में लिखा मिलता है। आर्हत मस्करी, श्वेतव्रत, पाण्डुर, भिक्षु, भागवत, वर्णी (ब्रह्मचारी), लौकायतिक, जैन, कापिल, काणाद औपनिषद, ईश्वरकारणी, धर्मशास्त्री पौराणिक, सप्ततन्तु, शाब्द और पांचरात्र †।

राजा श्रीहर्ष।

बाणभट्ट इन्हीं के यहां थे और हर्षचरित में इन्हीं का चरित लिखा। रत्नावली और नागानन्द ये दो नाटक इन्हीं के बनाये हैं। श्रीयुक्त ईश्वर चन्द्रविद्यासागर आदि विद्वद्वरों ने लिखा है कि कश्मीर के राजा श्रीहर्ष ने इन दोनों नाटकों को बनाया और उस के पोषण में कल्हण कृतराजतरंगिणी के सातवें तरंग के ६११ श्लोक को उठा के प्रमाण देते हैं। यथा—

"सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः।
कृती विद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि॥"

---

* सिद्धौषधानि भवदुःखमहापदानां पुण्यात्मनं परमकर्ण रसायनानि।
प्रक्षालनैक सलिलानि मनोमलानां सिद्धोदनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति॥

अर्थात्

भवदुखगाढ़ हरण सिद्धौषधि। अमिय निचोरत सुकृति श्रवण मधि॥
जनमनमल क्षालन जलरुचिर। बुद्ध वचन जयभाजन सुचिर॥

† ये सब के सब बौद्ध नहीं पर अधिकांश बौद्ध हो थे।

अर्थात्—सकल देश भाषा सुजान। सकल सबनि कवितानिधान।
हर्ष चतुर विद्यानिधान। दूर देशहु भा बखान॥

कुशल है कि वे आप मान लेते हैं कि राजतरङ्गिणी में रत्नावली और नागानन्द का नाम कहीं नहीं है। यहां टुक सोचना चाहिये कि जिस समय जो कवि हुआ जो काव्य बनाया और जिस किसी पुस्तक का प्रचार था सो सब प्रसंग पड़े पर राजतरंगिणी में विशद कर के लिखने में कहीं नहीं छूटने पाया है तो क्या कारण है कि इन दोनों प्रसिद्ध नाटकों का नाम तक भी नहीं उस में लिखा मिलता ? इस से यही प्रतीति होती है कि काश्मीर राज श्रीहर्ष ने ये दोनों नाटक नहीं बनाये। देखो मम्मट भट्ट कृत काव्य प्रकाश और भोजराज कृत सरस्वती कण्ठाभरण में भी जिन की रचना मिति ९०० शकाब्द से थोड़े दिन पीछे है इन दोनों नाटकों के नाम मिलते हैं पर राजतरंगिणी के अनुसार समय का लेखा लगाते हैं तो काश्मीरी हर्ष १००० शकाब्द स भी पीछे आते हैं। फिर किस युक्ति से कह सकते हैं कि उक्त दोनों नाटकों को उन ने बनाया *। कोई २ कहते हैं बाणभट्ट ही ने श्रीहर्षदेव की आज्ञानुसार रत्नावली रची है। और इस के प्रमाण में बतलाते हैं कि बाणभट्ट रचित हर्ष चरित के पञ्चम उच्छ्वास का 'क्षिप्यति' इत्यादि श्लोक रत्नावली में भी मिलता है और यह भी सूचना देते हैं कि शार्ङ्गधर पद्धति में कई एक श्लोक बाणभट्ट के रचित कह के उठाये गये हैं परन्तु ये सब श्लोक कादम्बरी वा हर्षचरित में नहीं मिलते। इस से अनुमान होता है कि बाणभट्ट ने इन दो काव्यों के अतिरिक्त और भी कोई काव्य रचा होगा। सो जो कुछ हो। केवल इन्हीं बातों पर भरोसा कर के हम रत्नावली को बाणभट्ट की बनाई नहीं मान सकते क्योंकि देखने में आता है कि एक ही ढंग का प्रसंग आ पड़ने से एक कवि के रचित श्लोक दूसरे कवि के रचित ग्रन्थ में बहुधा धर दिये गये हैं। देखो भर्तृहरिकृत वैराग्य शतक का 'प्राप्ताः श्रियः' आदिक प्रतीक वाला ६६ श्लोक के शान्तिशतक के चतुर्थ परिच्छेद में दूसरा श्लोक कर के लिखा गया है। और महानाटक (हनुमन्नाटक) का ४६ वां 'चूडाचुम्बित कङ्क मण्डित' इत्यादि प्रतीक वाला परशुराम के वर्णन का श्लोक भवभूति कृत उत्तररामचरित के चतुर्थ अङ्क में लव के वर्णन में लिखा दीखता है। फिर बाण के रचित श्लोक जो शार्ङ्गधर पद्धति में उद्धृत हैं यदि वे रत्नावली में भी मिलते तो भी सन्देह न होता। अतः यही सम्भव है कि बाण

* यथा काव्य प्रकाश के टीकाकार शितिकण्ठ।

ने कुछ अलगरट श्लोक बनाए होंगे। निदान इन्हीं आपत्तियों से मैं रत्नावली को बाण भट्ट की बनाई नहीं मान सका।

ऊपर उक्त रत्नावली और नागानन्द को छोड़ एक कोष भी इस राजा का बनाया होगा क्योंकि क्षीरस्वामी ने 'अमरकोषोद्घाटन' नामक अमरकोष पर जो टीका लिखी है, उस में हर्ष यह एक कोषकार का नाम मिलता हैं।

शाके १७७१ के माघ मास की तत्वबोधिनी पत्रिका के १५८ पृष्ठ में जो बौद्धों की महावंश नाम पुस्तक के ५९ अध्याय से रत्नावली का वृत्तान्त उठाया है; उस में लिखा हैं कि रत्नावली का पिता सिंहलद्वीप का शक ६९३ में राजा था इस लेख से तो कश्मीर के राजा श्रीहर्षही रत्नावली के बनानेवाले जान पड़ते हैं।

धावक।

ऊपरउक्त राजा श्रीहर्ष ने इन के द्वारा रत्नावली और नागानन्द नामक ग्रन्थ बनवाये; यह बात काव्यप्रकाश से जानी जाती है। और उस काव्य प्रकाश के वैद्यनाथ, जयरामन्यायपञ्चानन और नागेशभट्ट ये तीनों टीकाकार भी इसी को पुष्ट करते हैं। श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्रविद्यासागर ने संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य विषयक प्रस्ताव के ४५ पृष्ठ में लिखा है कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में धावक कवि का नाम मिलता है। अतः वे राजा श्रीहर्ष के तुल्य कालिक नहीं हो सकते। परन्तु विद्यासागर महाशय की इस लिखावट को हम ठीक नहीं मान सकते क्योंकि पण्डित लोगों को हाथ की लिखी मालविकाग्निमित्र की कई प्रतियों में धावक यह नाम नहीं मिलता किन्तु उस की सन्ती भासक का नाम मिलता है। * विद्यासागर और डाक्टर टलवर्ग ने मालविकाग्निमित्र की किसी प्रति में धावक का नाम बांचा निरे इतनेही से मम्मटभट्ट आदि बड़े पुराने पण्डितों की लिखी बात पर हरताल नहीं पोता जा सकता।

भगवत्पाद शङ्कराचार्य।

यद्यपि अध्यात्म शास्त्र ही में इन के ज्ञान की अधिक प्रतिष्ठा हैं; काव्य साहित्य के व्यासङ्ग में इन की तादृश ख्याति नहीं है पर आनन्दलहरी आदि काव्य जो इन के बनाये प्रसिद्ध हैं; उन को पढ़ने से इन्हें महा कवि

---

* देखो वासवदत्ता पर Dr Hall की प्रकाशित इंग्रेजी भूमिका १४ पृष्ठ।

कहे विना नहीं रहा जाता। इसी लक्ष्य से मैंने इन की कवियों के बीच गिनती की है।

शङ्कराचार्य मलावार देश के वाप्युरिनामक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। इन के पिता का नाम विश्वजित् और माता का नाम विशिष्टा था। आठ वर्ष की अवस्था में जनेऊ हो जाने पर ये वेदाभ्यास में लगे और थोड़े ही समय में इन की विद्या की अकथ्य उन्नति देख सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु हो जाने पर भी ये यथापूर्व ज्ञान वार्त्ता ही में तत्पर रहे। बहुत थोड़ी ही वय में इन ने संन्यासी होना चाहा पर इन की माता अनुमति नहीं देती थी। इस कारण कुछ काल तक रुके रहे। इस विषय में एक प्रचलित कथा (इतिहास) सुनने में आती है कि किसी दिन ये अपनी माता के साथ थोड़ी दूर पर किसी अपनैत के घर गये थे। लौटते समय मार्ग में देखा कि जाती वेला जिस नदी को विना प्रयास पार कर गये थे अब वह वर्षा के जल से भरपूर हो गई है। वर्षा थंभने और पानी का तोड़ कुछ घटने पर जल में माता के संग हले और गले तक जल में जब पहुंचे, तब माता से कहा कि यदि तुम मुझे संन्यासी होने की अनुमति नहीं देती हो तो यहीं हम तुम दोनों बूड़ मरेंगे और यदि संन्यास लेने की अनुमति देती हो तो ईश्वर से प्रार्थना कर के मैं अपना और तुम्हारा दोनों का प्राण बचाऊंगा। ऐसे घोर सङ्कट में शङ्कराचार्य की माता ने विवशतावश अनुमति देना स्वीकार किया। तब माता को पीठ पर बिठला के शङ्कराचार्य पैर कर पार पहुंचे और तीर पर उसे उतार विधिपूर्वक दण्डवत प्रदक्षिणा कर वहां से चल दिये। कलियुग में दण्ड ग्रहण के निषेध का खण्डन इन्हीं महात्मा ने किया।

शङ्करजय, शङ्करदिग्विजय और शङ्करविजयविलास आदि कतिपय ग्रन्थों में शङ्कराचार्य के दिग्दिगन्तर परिभ्रमण का और जब जहां उस समय के जिस मत के आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त किया तिस का विस्तार से वर्णन मिलता है। 'शङ्करजय' शङ्कराचार्य के शिष्य आनन्द गिरि का और 'शङ्करदिग्विजय' सायणाचार्य के भाई माधवाचार्य का बनाया है। इन दोनों ने व्यौरेवार शंकराचार्य का जीवनचरित वर्णन किया। सायणाचार्य विजयनगर के राजमन्त्री थे। तैलंगी भाषा में केरल उत्पत्ति नाम एक पोथी है। उस में उन के बालचरित्र वर्णित हैं। कावेलीवेंकट रामस्वामी ने दक्षिण देश के कवियों का जीवनचरित संकलित किया है। उस में भी शंकराचार्य का कुछ वर्णन दिया है। शंकरा-

चार्य का समय निरूपण अब लों साग नहीं हुआ है *। तौभी पक्के पौढ़े प्रमाणों से कुछ अनुमान मन में समाता है। माधवाचार्य के भाई सायणाचार्य अपने बनाये ग्रन्थों में संगम राजा का नाम देते हैं। आज लगभग छत्तीस वर्ष बीते होंगे चित्रदुर्ग में एक पीतल का पत्र हाथ लगा है † उस में देवनागराक्षर में राजा संगम, उस के पुत्र हरिहर और बुक्कराय इत्यादि के नाम तथा उन के राज्यकाल की मिति भी खुदी है। यथा—

अभूदस्य कुले श्रीमान् भूमौ गुरुगुणोदयः।
अप्राप्त दुरितासङ्गः सङ्गमो नाम भूपतिः॥ ६॥
आसन् हरिहरः कल्पो बुक्करायो महीपतिः।
मारपो मुद्दः पञ्चेति कुमारास्तस्य भूपतेः॥ ७॥

अर्थात्—इस के वंश में अनघ और उत्तमोत्तम गुणवन्त श्रीमन्त सङ्गम राजा हुए। उन के पांच बेटे थे। उन के नाम यथा—हरिहर, कल्प, बुक्कराय, मारप, और मुद्दे।

---

* तथाच भविष्ये

"ब्रह्मा विष्णुर्वशिष्ठश्च शक्तिश्चैव पराशरः।
व्यासः शुको गौड़ पादो गोविन्दस्वामि शङ्करौः॥

अर्थात्—ब्रह्मा विष्णु वसिष्ठ पुनि, शक्ति पराशर व्यास।
शुकरु गौड़ गोविन्द यति, शङ्कर गुरुक्रम खास॥

आदौ वेदान्ताचार्यो ब्रह्मा. द्वितीयाचार्यो विष्णुः, तृतीयाचार्यो रुद्रः, चतुर्थाचार्यो वशिष्ठः, पञ्चमाचार्यः शक्तिः, षष्ठाचार्यः पराशरः, सप्तमाचार्यो व्यासः, अष्टमाचार्यः शुकः, नवमाचार्यो गौडः, दशमाचार्यो गोविन्दः, एकादशः शङ्कराचार्यः।"

इसवचन के अनुसार कोई २ लोग कहते हैं कि शङ्कराचार्य कलियुग के पूर्व ही में हुए थे पर यह सत्य नहीं जंचता। गौड़पादाचार्य साक्षात् शुकदेव के शिष्य थे वा नहीं इस में दुविधा है। वे शुकदेव के शिष्यों के सम्प्रदाय में पीछे हुए हों तो असम्भव नहीं है। जैसे गोत्र की परम्परा के व्यवहार में मुख्य २ पुरुषोंकी प्रवर कह के उन्हों के नाम से सन्तानों के नाम बोलने की परिपाटी है, प्रत्येक सन्तान का भिन्न २ व्यक्ति नाम नहीं बोलते; अनुमान होता है गुरुकुल के नाते में भी सम्प्रदायवालों के नाम के व्यवहार में वैसी रीति रही होगी।

† Asiatic Researches Vol. IX. P. 419.

हरिहर राजा ने जो भूमिदान की उस की मिति उस पीतल के पत्र में खुदी है। यथा —

" ऋषिभूवन्हिचन्द्रे तु गणिते धातृवत्सरे ।
माघमासे शुक्लपक्षे पौर्णमास्यां महातिथौ ॥
नक्षत्रे पितृदैवत्ये भानुवारेण संयुते ॥"

(२० वां श्लोक और २१ वें का आधा)

अर्थात् शक १३१७ धाता (धातृवर्ष ?) नाम संवत्सर में माघ मास शुक्ल पक्ष मघा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा रविवार को।

वेलगोल नाम पहाड़ में एक पत्थर पर लेख मिला है। उस में खुदा है कि शक १२९० में बुक्कराजा ने जैन और वैष्णव के बीच का विवाद मिटा के उन में परस्पर मेल करा दिया। इस से सिद्ध होता है कि हरिहर राजा शक १३१७ में जीवन्त थे। इस सूत्र से अटकल में आता है कि बुक्क के पिता सङ्गम राजा के राजमन्त्री सायणाचार्य के भाई और अधिक नहीं तो भला पचासवर्ष पहिले तो जीवते रहे होंगे। वेही माधवाचार्य * स्वरचितशङ्कर दिग्विजय के आरम्भ में स्पष्ट कहते हैं कि " प्राचीन शङ्करजयसारः संगृह्यते स्फुटम् " अर्थात् प्राचीन शङ्करजय नाम ग्रन्थ का सारांश मैंने इस में सङ्कलित किया है। और भी वे लिखते है कि "स्तुतोऽपिसम्यक्कविभिः पुराणैः" अर्थात् और २ भी पुराने कवियों ने शंकराचार्य का जीवनचरित वर्णन किया है। जो ग्रन्थकार न्यूनाधिक तीन सौ वर्ष से इधर उधर होते हैं बहुधा उन्हें पुराने नहीं कहते हैं। इस युक्ति से शंकराचार्य आठ सौ वर्ष से इधर के नहीं जान पड़ते। इस बात के और भी पक्के प्रमाण दुर्मिल नहीं हैं। शंकराचार्य की जन्मभूमि मलयवार देश के लोगों का दृढ़ निश्चय है कि ये महात्मा सहस्र वर्ष पूर्व में जीते थे और तैलंगी बोली की केरल उत्पत्ति नाम पुस्तक के लेख से विदित होता है कि न्यूनाधिक सहस्रवर्ष पूर्व जिन दिनों कृष्णराव युद्ध में शिवराव से हारा उन दिनों शंकराचार्य मलयवार देश में विद्यमान थे। यों केरलोत्पत्ति तथा शंकराचार्य की जन्मभूमि के निवासी लोगों के बीच जो प्रचलित वार्ता है इत्यादि सूत्रों से जहां तक पता लगता है उस से यही बोध होता है कि शंकराचार्य सहस्रवर्ष से कुछ इधर वा उधर रहे

---

* माधवाचार्य खीष्टीय १४०० शतक में विद्यमान थे। (सांख्यप्रवचनभाष्य की भूमिका का ३७ पृ० देखो) सर्वदर्शन संग्रह इसी समय में बना।

होंगे* शंकरदिग्विजय में लिखा है कि शंकराचार्य कश्मीर में गये और वहां अपने विपरीत मतवालों को परास्त कर के सरस्वती की पीठभूमि नाम मठ में बसे। राजतरंगिणी के एक वृत्तान्त लेख में ऊपर उक्त घटना झलकती सी है। वह वृत्तान्त यह है कि ललितादित्य के राज्य के पिछले समय में कुछ तीर्थयात्री लोग कश्मीरवालों से मिलने और वहां के सरस्वती मन्दिर के दर्शन के लिये आये थे। उस समागम में धर्म विषय का कोई प्रसंग छिड़ जाने से वाद विवाद में तुमुलसंग्राम हुआ।

"गौडोपजीविनामासीत्सत्यमत्यद्भुतन्तदा।
जहुर्येजीवितंधीराः परोक्षस्य प्रभोःकृते ॥ ३२५ ॥
शारदादर्शनामिषात् काश्मीरान्सम्प्रविश्यते।
मध्यस्थदेवावसथं संहताः समवेष्टयन् ॥ ३२६ ॥"

(कल्हण राजत० ४ तरंग)

अर्थात्—ललितादित्य के राजकाल में गौड़राज्य के आश्रित कुछ धैर्य में पक्के लोगों ने अतिविलक्षणकरतूति की थी इन्द्रियातीत देवता के नाम पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। सरस्वती दर्शन के बहाने से काश्मीर देश में पैठे और इकट्ठे हो वहां के देवमन्दिर की चारो ओर घिर आये।

भुवनमनोहर काश्मीर देश में जो परम रमणीय सरस्वती पीठ है वहां दोनों दल में धर्मविषयक मतभेद की वार्त्ता छिड़ जाने से बड़ा वाद विवाद हुआ इत्यादि। राजतरंगिणी लिखित यह विवाद अधिकांश

---

* कावेलीवेंकट राम की मति इस बात को मानती है कि शंकराचार्य ७८८ खीष्टाब्द में भूमिष्ठ हुए थे। अध्यापक विल्सन् महाशय विष्णुपुराण के छापे में लिख गये हैं कि खीष्टीय ८वीं किंवा ९वीं शताब्दी में शंकराचार्य जीवन्त थे। बुक्कराय १३४१ शक में दक्षिण के राजा थे। उन का बनाया 'भुवनसागर' नामक एक भूगोल विषयक ग्रन्थ है। देखो Asiatic Researches. १७८९ शक की माघमासवाली तत्वबोधिनी पत्रिका का १९५ पृष्ठ। सन् ११४३ में गुजरात के राजा कुमारपाल के सभापण्डित हेमचन्द्र से शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ। देखो प्राचीन शंकर दिग्विजय १५७ पृष्ठ। ये खीष्टीय आठ किंवा नौ शतक में थे। देखो The Indian Antiquary. कोलब्रुक महाशय की समझ में शंकराचार्य खीष्टीय अष्टम किंवा नवम शताब्दी में वर्त्तमान थे। देखो Miscellaneous Essays, Vol. I. P. 223 Hodgson महाशय कहते हैं कि ये खीष्टीय आठवें शतक से भी पूर्व हुए हैं।

में शंकर दिग्विजय लिखित काश्मीर की घटना से पूरा मेल खाता है। हो न हो राजतरंगिणी के उक्त विवाद में एक दल के लोग शंकराचार्य और उन के अनुगामी शिष्यगण रहे हों। राजतरङ्गिणी में उन सब लोगों को गौड़ राज के आश्रित कहा है। इस का कारण जान पड़ता है कि शंकराचार्य के बहुत से गौड़ देशीय शिष्य रहे होंगे अथवा ग्रन्थकार के प्रति वे गौड़ के आश्रित हो कर के परिचित हुए हों पर किस कारण से यह नाम उन्हें मिला तिस का पता नहीं लगता। राजतरङ्गिणी से जाना जाता है कि आज से ११७५ वर्ष पहिले ललितादित्य का राज्य व्यतीत हुआ। राजतरंगिणी में वर्णित घटना के समय से शंकराचार्य के समय निरूपण के विषय में पूर्वप्रदर्शित युक्तियों से निर्गलित समय में अधिक हेर फेर नहीं दीखता है। अतः बहुत सम्भव है कि शक ७०० से कुछ पहिले शंकराचार्य जगत् में प्रादुर्भूत भये हों।

शंकराचार्य के रचित ग्रन्थों में से कुछ एक के नाम ये हैं। ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद, भारतक पंचरत्न इन सब ग्रन्थों पर * भाष्य। आनन्दलहरी, मोहमुद्गर, साधनपंचक, यतिपंचक, आत्मबोध, अपराधभंजन, वेदसार शिवस्तव, गोविन्दाष्टक, यमकषटपदी स्तुति।

भृंगगिरि के निकट तुंगभद्रा नदी के तीर पर एक मन्दिर बनाके सरस्वती की मूर्तिस्थापन कर जो प्रार्थना शंकराचार्य ने की है उस में से कुछ श्लोक उठा के यहां नीचे लिखते हैं—

साकारश्रुतिमुल्लङ्घ्य निराकार प्रवादतः।
यदघं मे कृतं देवि तद्दोषं क्षन्तुमर्हसि॥
त्वमेव जगतां धात्री शारदेऽक्षर रूपिणि।
तव प्रसादाद्देवेशि ! मूको वाचालतां व्रजेत्॥
विचारार्थं कृतं यच्च वेदार्थन्तु विपर्ययम्।
देवानां जप यज्ञादि खण्डितं देवतार्चनम्॥
स्वमत स्थापनार्थाय कृतं मे भूरि दुष्कृतम्।
तत्क्षमस्व महामाये परमात्मस्वरूपिणि॥

---

* "गीता सहस्रनामैव स्तोत्रराज मनुस्मृतिः।
गजेन्द्र मोचणञ्चैव पञ्च रत्नानि भारते॥"
अर्थात्—गीता नाम सहस्रमनु सम्रति भीष्म स्तवराज।
और मोच गजराज पँच-रत्ननि भारत भ्राज॥

कृताघ परिहाराय तवार्चा स्थापिता मया।
अत्र तिष्ठ महेशानि यावदाभूतसंप्लवम्॥
(ब्रह्माण्ड गिरि कृत शंकरविलास)

अर्थात्—सगुण निरूपण श्रुति अप्रधाना।
थापि अगुण प्रति पादन ठाना॥
चूक परयों जगदम्ब सुरेशी।
क्षमा करहु शारद सुमहेशी॥
अक्षर ब्रह्म सरूपिणि देवी।
होत सुकवि सूकहु तव सेवी॥
देवन्ह के जप मख पूजादी।
खण्डन करि स्वमतार्थ विवादी॥
श्रुति प्रतिकूल विचार प्रचारी।
महामाय भयों पातकि भारी।
क्षमहु सुअघ इहि अघ शोधन हित।
यहां करहुं मूरति तव थापित॥
जब लगि जगत प्रलय नहिं ह्वै है।
सिद्धपीठ यह तेरो कहैहै॥

लोग कहते हैं कि शंकराचार्य बत्तीस वर्ष की अवस्था में अपने संकल्पित समस्त कार्यों को सम्पादित कर केदारनाथपर्वत के पास तिरोधान को प्राप्त हुए।

अमरु।

इन प्रसिद्ध महा कवि के जीवन के समय का ठीक पता नहीं मिलता कोई २ कहते हैं कि किसी मनुष्य ने कालिदास से कहा कि व्याकरणानुसार कवि शब्द की रूपावली तो बोलो तो उन ने उस के मनोरञ्जनार्थ यह श्लोक रचा—

कविरमरः कविरमरुः कवी चोर मयूरकौ।
अन्ये कवयः कपयः कपिजातित्वाच्चञ्चलमतयः॥

अर्थात्—कवि इक अमर अमरु कवि दूजे। चोर मयूरहु कवि जग पूजे॥
न्यारे कवि नहिं कवित बनावहिं। चंचलमति कपि जाति जनावहिं॥

पर इस कहानी पर किसी भांति प्रतीति नहीं होती क्योंकि जिन मयूर कवि का नाम इस श्लोक में लिखा है वे कालिदास के पूर्व अथवा समान समय में कभी नहीं हो सकते; यही पुष्ट प्रमाणों से पूर्व में

में शंकर दिग्विजय लिखित काश्मीर की घटना से पूरा मेल खाता है। हो न हो राजतरंगिणी के उक्त विवाद में एक दल के लोग शंकराचार्य और उन के अनुगामी शिष्यगण रहे हों। राजतरङ्गिणी में उन सब लोगों को गौड़ राज के आश्रित कहा है। इस का कारण जान पड़ता है कि शंकराचार्य के बहुत से गौड़ देशीय शिष्य रहे होंगे अथवा ग्रन्थकार के प्रति वे गौड़ के आश्रित हो कर के परिचित हुए हों पर किस कारण से यह नाम उन्हें मिला तिस का पता नहीं लगता। राजतरङ्गिणी से जाना जाता है कि आज से ११७५ वर्ष पहिले ललितादित्य का राज्य व्यतीत हुआ। राजतरंगिणी में वर्णित घटना के समय से शंकराचार्य के समय निरूपण के विषय में पूर्वप्रदर्शित युक्तियों से निर्गलित समय में अधिक हेर फेर नहीं दीखता है। अतः बहुत सम्भव है कि शक ७०० से कुछ पहिले शंकराचार्य जगत् में प्रादुर्भूत भये हों।

शंकराचार्य के रचित ग्रन्थों में से कुछ एक के नाम ये हैं। ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद, श्वेताश्वतरोपानिषद, भारतक पंचरत्न इन सब ग्रन्थों पर * भाष्य। आनन्दलहरी, मोहमुद्गर, साधनपंचक, यतिपंचक, आत्मबोध, अपराधभंजन, वेदसार शिवस्तव, गोविन्दाष्टक, यमकषटपदी स्तुति।

भृंगगिरि के निकट तुंगभद्रा नदी के तीर पर एक मन्दिर बनाके सरस्वती की मूर्तिस्थापन कर जो प्रार्थना शंकराचार्य ने की है उस में से कुछ श्लोक उठा के यहां नीचे लिखते हैं—

साकारश्रतिमुल्लङ्घ्य निराकार प्रवादतः।
यदघं मे कृतं देवि तद्दोषं क्षन्तुमर्हसि॥
त्वमेव जगतां धात्री शारदेऽक्षर रूपिणि।
तव प्रसादाद्देवेशि ! मूको वाचालतां व्रजेत्॥
विचारार्थं कृतं यच्च वेदार्थन्तु विपर्ययम्।
देवानां जप यज्ञादि खण्डितं देवतार्चनम्॥
स्वमत स्थापनार्थाय कृतं मे भूरि दुष्कृतम्।
तत्क्षमस्व महामाये परमात्मस्वरूपिणि॥

---

* "गीता सहस्रनामैव स्तोत्रराज मनुस्मृतिः।
गजेन्द्र मोक्षणञ्चैव पञ्च रत्नानि भारते॥"
अर्थात्—गीता नाम सहस्रमनु स्मृति भीष्म स्तवराज।
और मोक्ष गजराज पँच-रत्ननि भारत भ्राज॥

कृताघ परिहाराय तवार्चा स्थापिता मया।
अत्र तिष्ठ महेशानि यावदाभूतसंप्लवम्॥
(ब्रह्माण्ड गिरि कृत शंकरविलास)

अर्थात्—सगुण निरूपण श्रुति अप्रधाना।
थापि अगुण प्रति पादन ठाना॥
चूक परयों जगदम्ब सुरेशी।
क्षमा करहु शारद सुमहेशी॥
अक्षर ब्रह्म सरूपिणि देवी।
होत सुकवि मूकहु तव सेवी॥
देवन्ह के जप मख पूजादी।
खण्डन करि स्वमतार्थ बिवादी॥
श्रुति प्रतिकूल विचार प्रचारी।
महामाय भयों पातकि भारी।
क्षमहु सुअघ इहि अघ शोधन हित।
यहां करहुं मूरति तव थापित॥
जब लगि जगत प्रलय नहिं ह्वै है।
सिद्धपीठ यह तेरो कहैहै॥

लोग कहते हैं कि शंकराचार्य बत्तीस वर्ष की अवस्था में अपने संकल्पित समस्त कार्यों को सम्पादित कर केदारनाथपर्वत के पास तिरोधान को प्राप्त हुए।

अमरु।

इन प्रसिद्ध महा कवि के जीवन के समय का ठीक पता नहीं मिलता कोई २ कहते हैं कि किसी मनुष्य ने कालिदास से कहा कि व्याकरणानुसार कवि शब्द की रूपावली तो बोलो तो उन ने उस के मनोरञ्जनार्थ यह श्लोक रचा—

कविरमरः कविरमरुः कवी चोर मयूरकौ।
अन्ये कवयः कपयः कपिजातित्वाच्चञ्चलमतयः॥

अर्थात्—कवि इक अमर अमरु कवि दूजे। चोर मयूरहु कवि जग पूजे॥
न्यारे कवि नहिं कवित बनावहिं। चंचलमति कपि जाति जनावहिं॥

पर इस कहानी पर किसी भांति प्रतीति नहीं होती क्योंकि जिन मयूर कवि का नाम इस श्लोक में लिखा है वे कालिदास के पूर्व अथवा समान समय में कभी नहीं हो सकते; यही पुष्ट प्रमाणों से पूर्व में

दर्शाया जा चुका है। बहुधा ऐसी कुचाल चली आती है कि जब किसी विषय में कोई नाम का काम जांच के लिये आगे आ पड़ता है और जिज्ञासा होती है कि यह किस की कृति है; तब लोग विना विवेचना किये ही उस विषय में दत्त किसी प्रसिद्ध पुरुष के नाम का भर्रा मचा देते हैं कि उस को छोड़ दूसरे क़िसी से यह ऐसा नहीं बन सकता है। लोक-हितजनक वा उपदेश स्वरूप वाक्य सुनकर लोग कहते हैं कि डाक का कहा है पर डाक कौन थे यह कोई नहीं बताता। अनुमान होता है कि इसी धारानुसार संस्कृत की उद्भट स्फुट कविता कान में पड़तेही मात्र लोग अनाय सनाय बक देते हैं कि यह कालिदास का कहा है। मुझे न चाहिये कि जानते बूझते ऐसी बिनशिर पांव के गपोड़ियेपन की वार्ता का आधार लेऊं। अतः अमरु शतक के टीकाकार की लेखनी से लिखित बात का तनिक सहारा लेता हूं।

इस टीकाकार का नाम कलाधर है। उस ने तिलक के आरम्भ में लिखा है। दन्त कथा सुनने में आती है कि काश्मीर के सभ्य लोग काव्य रचना में कुशल होते हैं। जब उन्हों ने दिग्विजयी भगवत्पाद शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में अपने को हारते देखा तो प्रतिष्ठा बचा रखने के लिये चतुराई रची। वे जानते थे कि शंकराचार्य ने छुटपन ही से विरक्त हो संन्यास ले लिया है। शृंगार रस की कविता इन से बनाते न बनेगी। आओ उसी विषय में उपतके छेड़ें और जब उस में इन की दौड़ न लगे तब इन के हार की थपोड़ी पीटें। निदान उन्हों ने कहा कि काव्य के नवो रसों में शृंगार रस मुख्य है। इसी से उसे आदिरस कहते हैं। सो जो कोई तद्विषयक कविता रच सके जानना चाहिये कि उस से कोई रस नहीं छूटा। इस के प्रमाण के लिये उन्हों ने—

"शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।"

अर्थात्—यदि कवि वर्णि सके शृंगारा।
गुनिप भयो रसमय संसारा॥

यह आधा श्लोक पढ़ा और प्रेरणा की कि आप आदिरस की कविता बनाइये। उन्हों के इस बचन को सुन शंकराचार्य सद्यः शृंगार-गर्भित कविता न बना सके क्योंकि वे जन्म से ब्रह्मचारी थे। शृंगार रस के प्रसंग में भी नहीं पड़े थे; तौभी उन सबों को परास्त करने के लिये परकाय प्रवेश नाम योगशक्ति से अमरु नाम किसी राजा के लोथ

में अपने सूक्ष्म शरीर से पैठ गये और रात में उस की रानी के साथ विलास कर सबेरे उठ उसी राजा के शरीर से विपत्तों को झपाने के लिये अमरुशतक नाम ऐसा एक काव्य निर्माण किया जिस का अर्थ श्लेष से शृंगार और शान्त दोनों रस पर घटति होवे।

इस की चर्चा बंगाली भक्तमाल में भी मिलती है। उस अंश का उल्था यह है—

श्रीविष्णुभक्तिरसमग्न, मुकुन्दगाढ़
प्रेमप्रसन्न, पर वैष्णव, आप चाख्यो।
एकान्त भक्ति रस, शंकर वैष्णवें के
आगे बखान करि औरनहु चखायो॥
आबाल्य थे विरतिमन्तयती हरी की
शृङ्गारकेलिरस को अनुभौ न पायो।
तामाधुरी अनुभवेच्छु रह्यो इते में
शास्त्रार्थ दिग्विजय बीच प्रसंग आयो॥
शृंगारकाव्य रचना कर; ये कभूना
स्त्री संग कीन्ह किमि वर्णहिं सो कह्योयों।
शिष्यांसनि; क्षितिप एकमर्यो तिसी की
हौं लोथ में स्वतनु त्यागि घुसौं कला के॥
मेरो शरीर जुगओ नृप की स्त्रियों से
जानौं विलास रस राइकन्हाइहु के।
शृंगार भेद अनुभौ करि जो विलस्यौं
तो मोह मुद्गर रच्यों यह जा सुनैयो॥
यों सावधान करि शिष्यन्ह को परिव्राट्
वैसोहि कीन्ह परकाय प्रविष्ट होके॥

ऊपर उक्त वृत्तान्त का सब भाग सर्वांश चाहे सत्य न हो पर उस से इतना अटकल अवश्य मिलता है कि अमरु कवि शंकराचार्य के सम कालिक किंवा कुछ पहिले हुए हों। अमरु पुराने कवियों में नहीं हैं। यह भेद इस से खुलता है कि प्राचीनतम कवियों में से किसी की बनाई श्री कृष्णचन्द्र जी की वृन्दावन लीला विषयक कोई कविता नहीं सुनने में आती पर उक्त विषय में अमरु के बनाये कतिपय श्लोक मिलते हैं प्रमाण देखो पद्यावली ग्रन्थ में यह पद्य उन का निर्मित मिलता है।

* कस्त्वं तासु यदृच्छया कितव यास्तिष्ठन्ति गोपाङ्गनाः
प्रेमाणं न विदन्ति यास्तव हरे किं तासु ते कैतवम्।
एषाहन्त हताशया यदभवं त्वय्येकतानापरं
तेनास्याः प्रणयोऽधुना खलुममप्राणैः समं यास्यति ॥

अर्थात्—ग्वारि गँवारि कितव तव प्रीती। जानहिं नहिं तिन्ह सँग छलरीती
कियै कहा हहा लगन जु मेरी। गिरे मनहु अब प्राण सहेरी॥

वाक्पति श्रीराजदेव।

ये कन्नौज के राजा यशोवर्मा की सभा के सभासद् थे। राजतरंगिणी में लिखा है कि राजा यशोवर्मा कश्मीर के महाराज ललितादित्य के राज्य काल में विद्यमान था। यथा—

कवि वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

(कल्हण राजतरंगिणी के ४ र्थ तरंग का १४५ श्लोक)

अर्थात्— सेवत जिहिं कवि वाकपति राजश्रीभवभूति।
जित यशवर्मा वन्दि बनि जासु करी गुण नूति॥

इस श्लोक से वाकपति और राजश्री ये दो भिन्न जन जान पड़ते हैं परन्तु दशरूपक के चौथे परिच्छेद के ५३ श्लोक की टीका में 'श्री वाक्पति राजदेवस्य' ऐसा लिखा मिलता है; उस से विदित होता है कि वाक्पति श्रीराजदेव इतना एकही का नाम था। अनुमान होता है कि संज्ञा (नाम) तो राजदेव और वाक्पति उपाधि रही होगी।

इस कवि का निर्मित कोई काव्य प्रसिद्ध है कि नहीं सो मैं नहीं जान सका। हां दशरूपक की टीका में उन का बनाया जो श्लोक उठाया गया है, उस के पढ़ने से छिपा नहीं रहता कि इन में कविताशक्ति अच्छी थी। यथा—

---

* बंगला में ऐसा पाठ है—

कस्त्वं स्त्रीषु यदृच्छया कितरया स्तिष्ठन्ति गोपाङ्गनाः
प्रेमाणं न विदन्ति यास्तव हरिः किन्त्वाद्दते कैतवं।
एषा हन्त हताश्लिषा यदभवं तम्येकतानापरं
ते नास्याः प्रणयोऽधुनाप्यनुसृतः प्राणैः समं यास्यति॥

" प्रणयकुपितां देवीं दृष्ट्वा ससम्भ्रमविस्मितं
त्रिभुवनगुरुर्भीत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत्।
नमितशिरसो गङ्गालोके तयाचरणाहता
ववतुभवतस्त्र्यक्षस्यैतद्विलक्षमवस्थितम् ॥"

(दशरूपक ४ परिच्छेद ५३ श्लोक की टीका) अर्थात्—

शिवलखि प्रेम मानवति वामा। सस्मित सादर कियउ प्रणामा ॥
शिर सुरसरि तकि तिय पगुमारे। जयति सदाशिव थित झखमारे ॥

शब्दकल्पद्रुम नाम कोष की भूमिका में लिखा है कि राजदेव नाम किसी विद्वान ने अमर कोष की टीका बनाई। हो न हो वे येही हों।

भवभूति।

भवभूति विदर्भ देश (बरार) के पद्मनगर में काश्यपवंशी नीलकण्ठ नामक वैदिक (श्रोत्रिय) ब्राह्मण के औरस पुत्र थे इन्हें भूगर्भ भी कहेत हैं और श्रीकण्ठ यह पदवी मिली थी ये ६७० शक में वर्तमान थे। भवभूति कन्नौज के महाराज यशोवर्मा के यहां सभासद थे। पहले वाकपति श्री राजदेव कवि के वर्णन में कह आये हैं। राजतरङ्गिणी से व्यक्त है कि कश्मीर के महाराज ललितादित्य के राज्यकाल में भवभूति जीवन्त थे और शङ्कराचार्य भी उसी समयमें हुए हैं। यह भी तर्क करके ऊपर दरसाया जा चुका है पर भवभूति कृत उत्तर रामचरित में एक श्लोक ऐसा मिलता है, जिस के अर्थ पर ध्यान दौड़ाने से मन बोलता है कि शङ्कराचार्य भवभूति से प्राचीन थे। यथा—

"विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि
ब्रह्मणीव विवर्त्तानां क्वाथि विप्रलयः कृतः ॥"

अर्थात्—नहिं जानिय कहं उड़िगये, घनघमण्ड पड़िबात।
ब्रह्मज्ञान तें ब्रह्म पर, जिमि जग भ्रम मिटि जात ॥

इस श्लोक के 'विवर्त्त' इस पद से जाना जाता है कि भवभूति शंकराचार्य के चलाये 'विवर्त्त वाद' (अद्वैत वाद) के बहुत फैल जाने पर हुए हैं। शंकराचार्य से पहिले जो वेदान्ती लोग हो गये हैं वे परिणामवाद के आश्रय लिये थे क्योंकि वे द्वैतवादी थे अर्थात् ब्रह्म को जगत् से भिन्न मान कर कहते थे कि सच्ची शक्ति द्वारा ब्रह्म सचमुच जगत् के रूप में परिणाम को प्राप्त हुआ है। शङ्कराचार्य ने इस मत का खण्डन कर के अद्वैत ब्रह्मवाद (विवर्तवाद) चलाया। उन का

यह कहना है कि ब्रह्म से जगत् भिन्न नहीं है किन्तु रज्जु पर सर्प की नाईं ब्रह्मरूपी अधिष्ठान पर मिथ्या जगत् की प्रतीत होती है * बहुतों ने विवर्त्तवाद को नया चलाया मत कहा है। छओ दर्शनों षडदर्शन) के सूत्रों की व्याख्याकर्त्ता विज्ञानभिक्षु ने सांख्यसूत्र की व्याख्या में लिखा है कि विवर्त्तवाद की मूलभित्ति जो मायावाद की वेदान्त सूत्र भर में कहीं भी चर्चा नहीं है †।

बौद्धों में जो विज्ञानवाद है; माया वाद उसी की छाया है। इसी से पद्मपुराण में शांकरवेदान्त को प्रच्छन्न बौद्धमत कहा है। यथा शिवपार्वती के सम्बाद में शिव का वचन है—

"मायावाद मसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेवच।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मण रूपिणा॥" इत्यादि।

अर्थात—मायावाद न शास्त्र शुभ, गुप्त बौद्ध मत रूप।
सुनहु देवि कलिमहं हमहिं, धरि द्विज रूप निनूप॥

इसी बचन के आधार से बहुतेरों ने इस मत की निन्दा की है और श्री श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में भी विवर्त्तवाद को आधुनिक काल्पनिक कह के दरसाया है। यथा—

ईश्वर निज अचिन्त्य शक्ती से। जगतरूप में परिणत दीसे॥ ‡
जिमिसुवर्ण स्रवणी मणि सेती। स्रवत स्वर्ण तिमि हरितें गेती॥ §

---

* ऐसी ही भ्रान्त प्रतीति के कारण मिथ्या रूपान्तर प्राप्ति को विवर्त्त कहते हैं। (अनुवादक)

† ब्रह्ममीमांसायां केनापि सूत्रेणाविद्यामात्रतो बन्धस्यानुक्तत्वात्। ···यत्तु वेदान्तिब्रुवाणामाधुनिकस्य मायावादस्यात्रलिङ्गं दृश्यतेतत्तेषामपि विज्ञानवाद्येकदेशितया युक्तमेव। न तु तद्वेदान्तमतम्॥···अनयैवरीत्या नवीनानामपि प्रच्छन्नबौद्धानां मायावादिनामविद्यामात्रस्य तुच्छस्यबन्धहेतुत्वं-निराकृतं वेदितव्यम्। " साङ्ख्य सूत्र १ अध्याय २२ भाष्ये।

ये वाक्य अस्तव्यस्त कुट फुट उठाये हैं। अर्थानन्वित देख मैंने सांख्य प्रवचन भाष्य देखा तब यह रहस्य खुला। अतः इस अंश का उल्था करना वृथा है क्योंकि विना पूर्वा पर उठाये तात्पर्य बोधगम्य न होगा। (अनुवादक)

‡ क्योंकि वेदान्त के १ अध्याय ४ पाद का २६ वां सूत्र 'आत्मकृते परिणामात्' ऐसा है। अर्थात् पूर्व सिद्ध ब्रह्मपरिणाम भाव से आप अपने को जीवादि दशापन्न कर बैठा है यह उपनिषद् में कहा गया है।

§ गेती = संसार।

तदपि मणी इव हरि अविकारा। व्यास सूत्र संमत निर्धारा॥
व्यास देवही को कहि भूले। व्यास सूत्र दूषहिं प्रतिकूले॥
परिणतिवाद अयुक्त अलापैं। कल्पित मायावादहिं थापैं॥

इसी अनुसन्धान से मैंने भवभूति को शंकराचार्य से पश्चाद्वर्ती ठहराया है।

इनके रचित काव्यों के नाम ये हैं—वीरचरित, उत्तरचरित, मालतीमाधव और गुणरत्न नामक एक छोटा सा काव्य जिस का प्रथम श्लोक यह है—

" सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हि-
त्रासान्नासाग्ररन्ध्रं विशतिफणिपतौ भोगसङ्कोचभाजि।
गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणे-
र्वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः॥"

अर्थात—

नन्दि अनन्दि मृदङ्ग बजावा। धुनि सुनि शिखि बाहन शिखि धावा॥
नागनाथ डरि सिड़पिड़ि भागा। नाग बदन थूथुन बिल वागा॥
चीत्करिकरिमुखफटकेउ शुंडा। उड़िकल घुमड़ गण्ड अलि झुण्डा॥
इमि शिवनृति गजमुखमुखकंपा। करैं सदा तुम पर अनुकम्पा॥

भट, दामोदर गुप्त, मनोरथ, शंखदत्त, चटक, अथवा चातक, सन्धिमान् और वामन।

ये सब कश्मीर के महाराज जयापीड़ के सभारत्न थे *। इस राजा का राज्यकाल शक ६९४ से ७२५ अर्थात् ७७२ से ८०३ खीष्टाब्द तक

---

* विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः॥ ४९४॥
स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टिनीमतकारिणम्।
कविंकविं बलिरिव धूर्य्यन्धी सचिरं व्यधात्॥ ४९५॥
मनोरथः शंखदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।
बाभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः॥४९६॥
(कल्हणराज त० ४ तरंग)

अर्थात्—

भूप सभापति उद्भटभट्टा। बुध नितलाख मुहरकृतसट्टा॥
कुट्टिनि मत कवि गुप्त दमोदर। बलि के कवि इव तासु सचिववर॥
चटक मनोहर अरु सँधिमान। वामन शंख दत्तादि दिवान॥

बतलाते हैं। नाना शास्त्रों की टीकाओं में कहीं २ व्याकरण अथवा अलंकारशास्त्र के विषय में प्रमाण उपन्यास करने के लिये लोग जिस वामन के वचन की कोटि करते हैं वह वामन इन्हीं विद्वान् कवियों के बीच निज नाम वालाही है किंवा दूसरा कोई है; इस का ठीक ठिकाना ढूंढ़ना चाहिये। वामन व्यतिरिक्त भट्ट आदिकों के निर्मित कोई ग्रन्थ वा काव्य हैं वा नहीं यह मैं नहीं जानता।

शंकुक।

काव्यप्रकाश में इन का नाम मिलता है। ये कश्मीर के राजा उत्पल पीड़ के समय अर्थात् ७७० शकाब्द में विद्यमान थे। इन ने मम्मक के साथ उत्पलपीड़ के रण के वर्णन में भुवनाभ्युदय नाम काव्य निर्माण किया है। यह बात कल्हणकृत राजतरंगिणी के चौथे तरंग के ७०४ और ७०५ श्लोक से ज्ञात होती है। यथा—

अथ मम्मोत्पलकयोरुदभूद्दारुणोरणः ।
रुद्ध प्रवाहायत्रासी द्वितस्तासुभटैर्हतैः ॥ ७०४ ॥
कविर्बुधमनःसिन्धुशशाङ्कः शङ्कुकाभिधः ।
यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ॥ ७०५ ॥

अर्थात्—

मम्म साथ उत्पल रण घोरा। ठानेउ रुधिर बहेउ चहुंओरा ॥
भट लोथनि झेलम पट गई। भुवनाभ्युदय नाम कवितई ॥
तिहिवर्णन महं कहि शंकुककवि। लहबुधमनवारिधिविधुसुपदवि॥

क्षीरस्वामी।

भट्टादि के वर्णन में नामांकित कश्मीरराज जयापीड़ के समय में अर्थात् ७०० शक के तनिक पूर्व निरूपित होता है; ये विद्यमान थे। इन ने अमरकोष पर एक तिलक लिखा है। उस में भोजराज के वचनों का प्रमाण दिया है। इस से अनुमान होता है कि धारापुरी के महाराज भोजराज से न्यारा कोई भोजराज नाम विद्वान् हो चुका था। क्योंकि धारेश भोजक्षीरस्वामी से बहुत पीछे हुए हैं; यह निर्णय हो चुका है।

मुक्ताफल अथवा मुक्तफाल, शिवस्वामी, आनन्दवर्द्धन, रत्नाकर और रामज।

ये सब विद्वज्जन कश्मीर के राजा अवन्तिवर्म्माके राज्य के समय में हुए हैं। इस राजा का राज्यकाल शक ७८५ से ८१२ तक माना जाता है।

यथा :—

" रामजाख्यमुपाध्यायं ख्यातव्याकरणश्रमम् ।
व्याख्यातृपदकं चक्रे स तस्मिन्सुरमन्दिरे ॥ "
(कल्हणराजतरङ्गिणी ५ तरङ्ग २९ श्लोक)

अर्थात्

वैयाकरण धुरन्धर रामज । उपाध्याय कहं व्याख्या कारज ॥
वा सुर मन्दिर महं यह भूपा । पद पर नियत कियेउ अनुरूपा ॥

और " मुक्ताफलः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ "
(राजत० ५ तरंग ३९ श्लोक)

अर्थात्—नृपति अवन्ती वर्म के, मुक्ताफल शिवस्वामि ।
कवि आनँदवर्द्धनरतन, आकर ये बड़ नामि ॥

माहेश्वर ।

इनने साहसांकचरित नाम एक काव्य रचा । उस में कन्नौज के महाराज साहसांक का जीवनचरित वर्णित है। वह राजा शक ८२२ अर्थात् ९०० खीष्टाब्द में वर्त्तमान था। इस से ऊहित होता है कि उस के वृत्तान्त लेखक ये कवि भी उसी समय में रहे होंगे। कोई २ कहते हैं कि ये शक १०३३ अर्थात् खीष्टाब्द १११११ में वर्त्तमान थे * परन्तु उनके इस कथन को हम निर्मूल नहीं मान सकते क्योंकि श्रीहर्ष निर्मित भी एक साहसांकचरित है। माहेश्वर कृत प्राचीन साहसांक चरित से विभेद द्योतित करने के लिये इस साहसांकचरित के नाम के आगे नव (नवीन) शब्द लगाया गया है † जिस से स्पष्ट प्रकट होता है कि नव साहसांकचरित के रचयिता श्रीहर्ष की अपेक्षा आदि साहसांकचरित के रचयिता कवि प्राचीन हैं। प्रमाणों से निर्णय हो चुका है कि श्रीहर्ष खीष्टीय नवींशताब्दी में जीवन्त थे। फिर उन की अपेक्षा प्राचीन कवि सन् ११११ खीष्टाब्द में आवें यह बात कैसे बुद्धि में समा सकती है? अंग-

---

* देखो वासवदत्ता पर फिट्ज एडवर्ड हाल महाशय की लिखी अंगरेजी भूमिका।

† इस नव शब्द का अर्थ नव संख्या नहीं है क्योंकि जैसे मगध के राजवंश में नन्द नाम के नवराजा हुये हैं, तैसे साहसांक इस नाम के नव राजा हुये हों ऐसा कहीं लिखा देखने में नहीं आता है और न कहीं साहसांक यह पद पीढ़ी से पीढ़ी लों चला आया उल्लिखित मिलता है। अतः यह नव शब्द नवीनही अर्थका वाचक बूझपड़ता है। संख्यावाचकनहीं है।

रेज महाशयों के लेखों में भूल चूक नहीं होती यह कोई शपथ नहीं है क्योंकि विद्वद्वर विलसन् महाशय की मति के अनुगामी फिट्ज एडवर्ड हाल एम० ए० (Fitz Edward Hall M. A.) महाशय ने वासवदत्ता की अंगरेजी में जो भूमिका लिखी है, उस में वे आप कहते हैं कि कथा सरित्सागर के ग्रन्थकर्त्ता सोमदेवभट्ट शक ११२२ अर्थात् खीष्टाब्द १२०० में जीते थे *। परन्तु राजतरंगिणी से जाना जाता है कि सोमदेवभट्ट कश्मीर नरेश अनन्तदेव के पास रहते थे । राजतरंगिणी के ग्रन्थकर्त्ता कल्हण परिडत जिस ने कश्मीर के महाराज अनन्तदेव का भी चरित्र वर्णन किया है शक १०७० में विद्यमान थे । उन की राजतरंगिणी के अनुसार जब लेखा लगाते हैं तो अनन्तदेव का समय ९५५ से १००७ तक ठहरता है। तिस से उक्त महाशय के लेखा लगाने में ११५ वर्ष की बढ़ती की भूल उघड़ पड़ती है। ऐसी भूल चूक लोगों से होतीही रहती है। कहनावत है

" मुनीनाञ्चमतिभ्रमः "

अर्थात्—मुनिन्हहु की मति धोखा खाय ॥

भट्टनारायण।

सेन राजाओं की वंशावली का वर्णन देखो रहस्यसन्दर्भ ३ पर्व २८ खं० ५८ पृष्ट से। उस में डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र महाशय ने बहुतेरे प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि आदिशूर शक ९१६ अर्थात् खीष्टाब्द ९९४ में गौड़देश के महाराज थे † इन राजा ने यज्ञ के अनुष्ठान के

---

* यह श्रीवासवदत्ता की अंगरेजी भूमिका में उसी भूमिका के बनानेवाले ने लिखा है।

† डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने पाल और सेनवंशी राजाओं का विवरण लिखा है। अब वह विवरण उन के बनाये Indo Aryan इंडिया एरियन नाम पुस्तक के दूसरे खण्ड में छपा है। उस में उन ने कहा है कि आदिशूर का दूसरा नाम वीरसेन था। उन ने ९८६ से १००६ खीष्टाब्द तक राज्य किया। जेनरल कनिङ्हम महाशय बताते हैं कि वीरसेन खीष्टीयसातवीं शताब्दी में वर्त्तमान थे। वेणीसंहारनाटक की भूमिका में श्रीयुक्तबाबू प्रसन्नकुमारठाकुर ने निर्देश किया है कि आदिशूर १०६३ खीष्टाब्द में वर्तमान थे। श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्रविद्यासागरमहाशय ने निज रचित 'बहु विवाह' नाम पुस्तकमें बतलाया है कि आदिशूर ने ९९९ शकमें पांच ब्राह्मणों को बुलानेके लिये कन्नौज के राजा के पास दूत भेजा था और उसके प्रमाणमें 'क्षणचन्द्रचरित' नाम संस्कृतपुस्तकके निम्नलिखित बचनको उठाया है।

" आदिशूरो नवनवत्यधिक नवशतोशताब्दे पञ्चब्राह्मणानानयामास "

अर्थात् आदिशूरने ९९९ शक में पांच ब्राह्मण बुलवाये।

प्रयोजन से कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलवाया। उन पांचों में भट्ट-नारायण एक मुख्य थे * गौड़देश में आने से पहिले उन ने वेणीसंहार-नाम नाटकरचा था। उसे वे बहुत आदर का धन मानते और जुगाते थे। राजाआदिशूर की भेंट के आशीर्वादात्मक पद्य में उन ने तिस का उल्लेख किया है। यथा :—

वेणी-संहारनामा परमरसयुतो ग्रन्थ एकः प्रसिद्धो
भो राजन्! मत्कृतोऽसौ रसिक गुणवतायत्नतो गृह्यते सः।
नाम्नाहं भट्टनारायण इति विदितश्चारुशाण्डिल्य गोत्रो
वेदे शास्त्रे पुराणे धनुषिच निपुणः स्वस्ति ते स्यात् † किमन्यत्॥

अर्थ।

वेणीसंहार नामा अति सरस इक ग्रन्थ विख्यात है सो
हे राजन् मैं बनायों तिंहि रसिक गुणी चाहते चित्त से हैं।
मेरी है भट्टनारायण यह अभिधा गोत्र शाण्डिल्य नीको
जानौं शास्त्रौ पुराणौ श्रुतिधनुपटुहों स्वस्तिते औ कहूं क्या॥

श्री युक्त बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर महाशय ने यत्न कर के वेणीसंहार नाम नाटक छपाया और उस के आरम्भ में एक वंशावली की तालिका जोड़ दी है। उस के पढ़ने से विदित होता है कि आप (प्रसन्न कुमार ठाकुर) भट्टनारायण के वंश में ३२ वीं पीढ़ी में पड़ते हैं।

भट्टनारायण की दूसरी कृति धर्मशास्त्र विषयकप्रयोगरत्न नाम ग्रन्थ है§।

---

* "भट्टमाहेश्वरसुतो भट्टनारायणः सुधीः"

अर्थात् भट्टनारायण पण्डित भट्टमाहेश्वर का पुत्र है। समार्तानुष्ठान पद्धति का प्रथम श्लोक इस पुस्तक की मूलप्रति तत्त्वबोधिनी सभा में है।

† कोई २ कहते हैं कि विप्र न होने के कारण भट्टनारायण ने इस श्लोक में प्रार्थना अर्थ में 'स्यात्' यह विधिलिङ् का प्रयोग किया। इस का और भी उदाहरण मिलता है यथा शारङ्गधर ने अपने नाम से प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ में 'श्रियं सदद्यात्' अर्थात् वह श्री को देवे यों विधिलिङ् का प्रयोग किया है। (अनुवादक)

§ शब्द कल्पद्रुम ७ खण्ड ७११७ पृष्ठ में भोजदेवकृत "नष्टचन्द्र" वचन के ऊपर भट्टनारायण की लिखी व्याख्या उठाई है। उस के पढ़ने से सूचित होता है कि इन का लिखा कोई कोष भी था। कोई २ कहते हैं कि नवद्वीप के राजा लोग भट्टनारायण के वंशज हैं। और उन्हीं के समय से यह राज्य चला आता है। भट्टनारायण के वंश में गगन भट्ट होगये हैं उन ने भट्ट चिन्तामणि बनाई॥

मम्मटभट्ट ।

लोग कहते हैं कि नैषध के कवि श्रीहर्ष के ये मामा थे और अब बहुतेरे मान बैठे हैं कि जो भट्टनारायण के साथ राजा आदिशूर के यज्ञ में बुलाये आये थे वेही श्रीहर्ष नैषध के कवि हैं। मम्मटभट्ट ने काव्यप्रकाश नाम एक अच्छा साहित्य का ग्रन्थ बनाया है। उस का विशेष पठन पाठन है। उस में इन ने भट्टनारायण विरचित वेणीसंहार के बहुत से बचन उदाहरण के लिये उठाये हैं पर नैषध की कहीं कुछ चर्चा भी नहीं की है। उस से ध्यान में आता है कि नैषध काव्य काव्यप्रकाश के बनने के पीछे बना होगा। अतः यद्यपि तीनों ग्रन्थकार सम सामयिक थे तौ भी मैंने यथा स्थान ग्रन्थ की रचना के क्रम से उन का नामोल्लेख कर वर्णन किया है।

कितने कवियों और पण्डितों के नाम काव्यप्रकाश में मिलते हैं। यथा :—

ध्वनिकार *, भट्टलोल्लट, श्रीशङ्कक †, भट्टनायक, अभिनवगुप्तपाद, नागोजीभट्ट §, भट्टारक और भैरवानन्द ¶, मैं प्रस्तुत पुस्तक में इन के विषयों में कुछ नहीं लिखसका।

श्रीहर्ष ।

लोग अनुमान करते हैं कि श्रीहर्ष बहुत करके ११६८ से ११६४ खीष्टाब्द तक वर्तमान थे। डाक्तरबुलर महाशय लेखा लगा के बतलाते हैं कि नैषध काव्य खीष्टीय बारहवीं शताब्दी के बीच किसी समय में बना है। रहस्यसन्दर्भ प्रथम पर्व तृतीय खण्ड के ४२ पृष्ठ में इन महाकवि के विषय में जो कुछ बातें जानने योग्य बताई गई हैं वे अभी प्रामाणिक जँचती हैं। सब का निचोड़ यह है।

---

* ये एक अच्छे अलंकार शास्त्रवेत्ता थे।

† पूर्व में कुछ वर्णन हो चुका है। (अनुवादक)

§ ये व्यवहार स्वीकार आदि धर्मशास्त्रों के कर्त्ता हैं।

¶ इन ने कर्पूरमञ्जरी बनाई है। (ग्रन्थकर्ता) मैं समझता हूं राजसेखर ने बनाई (अनुवादक)

श्रीहर्ष कन्नौज के रहवैये थे क्योंकि नैषध काव्य की समाप्ति में वे आप लिखते हैं कि मैं धन्य हूं, जिसे कन्नौज के महाराज अपने हाथ से मान के दो बीड़े पान देते हैं । आदिशूर राजा के बुलाये कन्नौज से जो पांच ब्राह्मण आये थे, उन में जिन श्रीहर्ष का नाम मिलता है, उन की भी कवियों की मण्डली में प्रामाणिक प्रसिद्धि है । श्रीहर्ष के बनाये ग्रन्थों में अर्णववर्णन और गौड़ोर्वीश कुलप्रशस्ति दो काव्यों के ग्रन्थ भी हैं । गौड़देश देखे बिना कोई कश्मीरी मनुष्य गौड़ के राजा और उस की सीमा समुद्र के वर्णन में कविता बना सके, यह कठिन बोध होता है । श्रीहर्ष ने कन्नौज के राजा साहसाङ्क का जीवनचरित भी वर्णन किया है । उस से भी यह निकलता है कि ये कवि उक्त राजा के समान समय में किंवा कुछ पीछे रहे होंगे । उधर साहसाङ्क का राज्य शक के ८२२ अर्थात् ६०० खीष्टाब्द में और इधर आदि शूर का राज्य-समय शक ६१६ अर्थात् ६६४ खीष्टाब्द में था । इस से निष्पन्न होता है कि साहसाङ्क के अभ्युदय के कुछ काल पीछे श्रीहर्ष हुए और उन का गुण गान किया ।

परन्तु मुझे यह समय निरूपण खटकता है । इस का कारण दरसाता हूं । आदिशूर ने जिन दिनों कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलाने का नेवता भेजा; उन दिनों वहां वीर सिंह नाम राजा राज्य करता था । श्रीहर्ष ने कहीं कुछ उस की चर्चा नहीं की है । आदिशूर से भेंट के श्लोक में भट्टनारायण ने अपनी चिन्हानी वेणीसंहार से दी है । पर श्रीहर्ष ने भेंट के श्लोक में वैसी कोई चिन्हानी नहीं उल्लेख की है । यदि नैषधादि पुस्तकें उन श्रीहर्ष की बनाई होतीं तो उन में से वे किसी न किसी का नाम निर्देश अपने रचित श्लोक में * करते । नैषध के कवि श्रीहर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य में उदयनाचार्य के वचन की कोटि की है । इन उदयनाचार्य को लोग बतलाते हैं कि भादुड़ी अर्थात् भरद्वाज गोत्र थे । यदि यह सत्य है तो उक्त आचार्य बल्लाल सेन के समय से पीछे हुए ठहरते हैं । फिर खण्डनखण्डखाद्य में उन का नाम कैसे आ सकता है ।

श्रीहर्ष रचित ग्रन्थों के नाम यथा । १ स्थैर्यविवरण, २ विजय

---

* " नाम्नाहं श्रीलहर्षः क्षितिपवर भरद्वाज गोत्रः पवित्रो
नित्यं गोविन्द पादाम्बुज युग हृदयः सर्वतीर्थावगाही "

इस का अर्थ आगे आनेवाली टिप्पणी में देखो ।

प्रशस्ति, ३ खण्डनखण्ड खाद्य, ४ गौड़ोर्वीशकुलप्रशस्ति ५ अर्णव वर्णन, ६ शिवशक्तिसिद्धि, वा शिवभक्तिसिद्धि ७ नवसाहसाङ्क चरित, ८ नैषधचरित, ९ छन्दःप्रशस्ति * ।

कलकत्ते के शांखारि टोला के निवासी श्रीयुक्त रघुनाथ वेदान्त वागीश महाशय ने श्रीकृष्ण जी के ककारादि सहस्रनाम की व्याख्या की है। उस में उन ने अपने वंश की पहिचान देने के अवसर पर श्रीहर्ष की वंशावली लिखी है। उस का संक्षेप ब्योरा यहां पर उठाता हूं। उस के पढ़ने से लोगों के मन को समाधान होगा। ब्रह्मा के पुत्र अङ्गिरा, उन के वृहस्पति, उन के भरद्वाज हुए। इन्हीं भरद्वाज ऋषि से इन के गोत्र का नाम चला है। भरद्वाज के पुत्र कल्याण मित्र हुए। जिन मुनियों के नाम के स्मरण से बिजली से बचाव होता है, उन मुनियों के नाम मन्त्रात्मक श्लोक में इन का भी नाम है † कल्याण मित्र के भद्रसेन, उन के महा मुनि मदोत्कर, तिन के हरिसहाय, उन के हरिविश्व हुए। हरिविश्व के पुत्र श्रीहर्ष हुए × । यही आदि शूर के यज्ञ में नेवते गौड़ देश में आये थे। ये सब शास्त्रपारङ्गत परम वैष्णव भरद्वाज गोत्रीय थे यह बात नीचे टिप्पणी में लिखित श्लोकों से प्रकट होती है § ।

---

* "ईश्वराभिसन्धि" ग्रन्थ भी इन्ही का बनाया है"। (अनुवादक।)

† मुनेः कल्याण मित्रस्य जैमिने श्चापिकीर्त्तनात्।
विद्युदग्निभयं नास्ति पठिते च तपात्यये॥

अर्थात्—मित्र मित्र कल्याण मुनि, जैमिनि नाम ज़रूर।
ग्रीषम बिते सम्हारिये, विज्जु वन्हि भय दूर॥

× इस स्थन में पुत्र पद को सन्तो वंशीय पद विन्यस्त होना चाहिये था क्योंकि श्रीहर्ष ने अपने पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्ल देवी लिखा है। यथा देखो नैषध चरितप्रत्येक सर्ग की समाप्ति में -

"श्रीहर्षं कविराज राजिमुकुटालङ्कार हीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रिय चयं मामल्ल देवी चयम्" इत्यादि।

अर्थात्—कविवरपङ्गति मुकुटमणि, पिता जासु श्रीहीर।
मामलदेवी मातु श्री, हर्षसुकविमतिधीर॥

§ वेदान्तसिद्धान्त सुनिश्चयार्थी दीक्षाक्षमादानदयार्द्रचित्तः।
परात्मविद्यार्णवकर्णधारः श्रीहर्षनामभुवनं तुतोष॥

श्रीहर्ष के वंश में जलाशय हुए। उन के भी वंश में कोलाहल संन्यासी हुए। कोलाहल के पुत्र उत्साहाचार्य थे। ब्रम्हनीती के लक्षण में जो नवगुण गृहीत हैं, उन नवों से पूरे होने के कारण इन को कुलीन पदवी मिली थी * इन के दो बेटे हुये। एक का नाम आयित दूसरे का महादेव था। यही महादेव खड़दह ग्राम में बस कर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे तभी से इन के सन्तानों से खड़दह का मेल भया। महादेव के पुत्र विश्वेश्वराचार्य थे। श्री श्रीराधाकान्तदेव मूर्ति इन्हीं का स्थापित है और गोपालतापनी पर तिलक भी इनने किया है। इन के वंश में माधवाचार्य थे तत्पश्चात हरिआचार्य हुए। इन्हीं को लोग हरिगुरु कह के टेरते थे। इन के तीन पुत्र थे उन में से सब से छोटे का नाम नहीं मिला। दो के नाम योगेश्वर पण्डित और कामदेव हैं † योगेश्वर पण्डित का बेटा शङ्कर पण्डित

नाम्नाहंश्रीलहर्ष: क्षितिपवरभरद्वाजगोत्र: पवित्रो
नित्यं गोविन्दपादाम्बुजयुगहृदय: सर्वतीर्थावगाही।
चत्वार: साङ्गवेदाममुखपुरत: पश्चपाणौधनुर्मे
सर्वं कर्त्तुं क्षमोऽस्मि प्रकटयनृपतेत्वन्मोऽभीष्टमाशु॥"

अर्थात्—वेदान्तसिद्धान्तनितान्तवेत्ता दोषोक्षमीदानिदयालुचेता।
परात्मविद्याम्बुधिपारनेता श्रीहर्षआयोंजगहर्षदेता॥
हौं श्रीहर्षसदागुविन्द चरणाम्भोजहृयोध्यावहूं
सारितीर्थ अन्हाशुचौनृपभयींगोत्रोभरद्वाज हौं।
चारोसाङ्गश्रुतीमुखाग्रममहैं धन्वाधरौंपाणि में
जो चाहौं सुकरौं प्रकाशियअभो स्वेच्छामहाराजहै॥

* इस से बूझ पड़ता है कि ये कुलीन मर्यादाके प्रवर्त्तक बल्लालसेनके सम सामयिक थे।

† माहेश ग्रामस्थ जगन्नाथ के चरित्र के वर्णन में एक संस्कृत काव्य है। उस में इन दोनों भाइयों के बिवाह का प्रसङ्ग आया है। उस का संक्षेप यह है कि माहेश ग्राम में कमलाकर नाम एक ब्राह्मण रहता था। उस की रमा नाम एक पुत्री और उस के भाई निधिपति की राधा नाम्नी एक बेटी थी। पण्डित कमलाकर को भगवान ने कला कर के आदेश दिया कि योगेश्वर पण्डित को अपनी बेटी और कामदेव को भतीजी ब्याह दे। सो उसने वैसा ही किया।

हुआ। उस ने अपने बाप ही से पढ़ा। शङ्कर के नयनानन्द, पूर्णानन्द, सूरदास, कुमुदानन्द, और राघवानन्द ये पांच बेटे हुए। उन में से नयनानन्द के शिवराम और रामभद्र नाम दो पुत्र हुए। रामभद्र के भी दो पुत्र हुए। एक का नाम कृष्णजनवल्लभ और दूसरे का गोपीजनवल्लभ था। कृष्णजनवल्लभ के रामनारायण, रघुनन्दन और मधुसूदन ये तीन पुत्र थे। तिन में से रामनारायण के जो कई पुत्र थे; उन के बीच एक का नाम रामनाथ था। रामनाथ के बेटे रामगोपाल, उस के सप्तशति मुखोपाध्याय, * उन के श्री रघुनाथ वेदान्त वागीश † रामतनुभागवत भूषण, नीलकमल और नीलमाधव ये चार पुत्र हुए।

श्रीमुञ्ज।

श्रीमुञ्ज धारानगर के राजा थे ‡। ये राजा सिन्धुल के भाई और भोजराज के ताऊ (चाचा) थे। राघव पाण्डवीय काव्य के उपक्रम में इन का नाम देखने में आता है। यथा —

" श्रीविद्या शोभिनायस्य श्रीमुञ्जादियती भिदा।
धारापति रसावासीदयं तावद्धरापतिः॥"

अर्थात्— इहि तें रखत विभेद इत, मुंजज्ञान धन पुंज।
निखिल धरापति नृपति यह, धारापति श्रीमुंज॥

९५० शक के कुछ इधर वा उधर ये हुए;ऐसा अनुमान होता है। इस का विशेष विवरण भोजराज के समय के निरूपण के प्रकरण में किया जावेगा। इन का किया कोई काव्य प्रसिद्ध है वा नहीं सो मुझे विदित नहीं है। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने इन की रचित जिस कविता को उदाहरण कर के लिखा है वह नीचे लिखी जाती है।

उस के पढ़ने से इन की कविताशक्ति की अच्छी परख हो सकती है। यथा—

प्रणय कुपितां दृष्ट्वा देवीं ससम्भ्रम विस्मितं
त्रिभुवनं गुरु भीत्या यस्याः प्रणामपरोऽभवत्।
नमित शिरसो गंगा लोके तया चरणाहता-

---

* ये मुखोपाध्याय हुए।

† ये एक प्रसिद्ध पण्डित हैं। अद्वयतत्त्व प्रकाशिका नाम ग्रन्थ इन का बनाया है।

‡ धाराराज्य मालवे में है। वहां महाराष्ट्र लोग बसते हैं।

ववतु भवतस्त्र्यन्तस्यै तद्विलत्तमवस्थितम् ॥" *

(दशरूपक ४ र्थ परिच्छेद के ५४ श्लो० की टीका)

इन का रचित "मुञ्ज प्रतिदेश व्यवस्था" नाम एक प्राकृत भूगोल विषयक पुस्तक है। यह खीष्टीय नवीं शताब्दी में निर्मित हुआ † ॥

धनञ्जय।

धनञ्जय ऊपर उक्त राजा श्रीमुञ्ज के सभासद् थे। यह बात धनञ्जय ने आप स्वरचित दशरूपक की समाप्ति में लिखी है। यथा—

"विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबद्धहेतुः।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् "

अर्थात्—मुञ्ज महीप सभा गुणमण्डित।
विष्णु तनूज धनञ्जय पण्डित॥
विरचि कीन्ह दशरूप प्रकाशा।
इहिं पढ़ि बुध मन होउ हुलासा॥

इस से जाना जाता है कि ये ८५० शक के थोड़ा इधर वा उधर भये होंगे। इन का बनाया दशरूपक है। धनञ्जय निर्मित, 'नाममाला' नाम एक कोष भी सुन पड़ता है पर यह विवेक नहीं होता है कि ये दो भिन्न२ जन के किंवा किसी एक ही के नाम हैं। हलायुध के पोते के परपोते का नाम भी धनञ्जय था और उसी ने नाममाला बनाई; ऐसा कहीं २ लिखा देखने में आता है। बाबू श्यामाचरण सर्कार कोलब्रुक महाशय की सम्मति के सूत्र से लिख गये हैं कि हलायुध कोषकार धनञ्जय के पुत्र हैं। देखो; व्यवस्थादर्पण प्रथम खण्ड की भूमिका का ॥/) पृ.। परन्तु श्याम बाबू उस का कोई प्रमाण नहीं पहुंचाते हैं।

भोजराज।

इस नाम से प्रसिद्ध कई जन होगये हैं पर उन में से प्रत्येक का समय निरूपण दुर्घट दीखता है ×।

---

* यह श्लोक पहिले दशरूपक के ५२ श्लो० की टीका में वाक्पति श्रीराजदेव का रचित कह के उठाया जा चुका है। वहीं इस का उलथा भी हो चुका है।

† Asiatic Researches. vol. XIV.

× विलसन महाशय विष्णुपुराण के छापे में लिखते हैं कि ११०० खीष्टाब्दमें भोज नाम के तीन जन धारानगर में थे। Wilson's Vishnu Puran Vol. IV. P. 59.

भोजप्रबन्ध में भोजराज की कहानी है। धाराधीश भोजराज की निज कहानी से उस में कुछ विभेद नहीं है परन्तु उस में उन के सभा पण्डितों की नामावली अनन्वित है क्योंकि वररुचि, सुबन्धु, बाण, मयूर और कालिदास इत्यादि जिन के नाम लिखे हैं ; उन में से एक भी भोजराज का समसामयिक न था। कालिदास कृत महापद्य के श्लोकों में कर्णाट के महाराज भोजराज की केवल विरुदावली मात्र है। उन श्लोकों के पढ़ने से विदित होता है कि राजा विक्रमादित्य के ठीक अनन्तर ही कोई भोजराज उजागर हुआ था और उस की सभा में कालिदास इत्यादि विद्वान लोग क्रम से उपस्थित हुए। इसी लक्ष्य से मैं विक्रमादित्य के वर्णन के उपरान्त ही वृद्ध भोजराज का वर्णन पूर्व में कर आया। भाव मिश्र ने भी स्वरचित भावप्रकाश में वृद्ध भोजराज को अन्यान्य भोजराजों से विलग कर के अलग निर्देश किया है। कोलब्रुक महाशय कहते हैं कि जब कभी एक ही ग्रन्थकार एक ही विषय के कई एक छोटे मोटे ग्रन्थ लिख डालता है तब ग्रन्थों में परस्पर विभेद बोधित करने के लिये लघु, वृद्ध, वृहत् इत्यादि विशेषण ग्रन्थ की संज्ञा के आगे जोड़ देता है। यथा लघुहारीत, वृद्धहारीत, वृद्धमनु, वृद्धशातातप, वृद्ध याज्ञवल्क्य, वृद्ध आपस्तम्ब, वृद्धपितामह, वृहत्पराशर इत्यादि । इस नाम से न जानना कि लघु और वृद्ध इन विशेषणों से हारीत नाम व्यक्ति ही में भेद है। कोलब्रुक महाशय की इस ऊहना में लघु और वृद्ध इत्यादिक विशेषण एक ही जन के जान पड़ते हैं परन्तु उन के ऊहित के विरुद्ध भी एक यह उदाहरण मिलता है। यथा-सुश्रुत के प्रसिद्ध जो दो ग्रन्थ हैं, उन दोनों की अपेक्षा वृद्ध सुश्रुत नामक ग्रन्थ बहुत ही पुराना है। यों गड़बड़ पड़ जाने से भोजराज के समय निरूपण में बड़ी अड़चन है।

एक ताम्रपत्र में खुदा है कि भोजराज के पुत्र उदयादित्य थे। उन के पुत्र लक्ष्मीधर के राजकाल में अर्थात् शक १०२६ वा ११०४ खीष्टाब्द में राजा के छोटे भाई नरधर्मदेव ने इस प्रशस्ति के अक्षरों को खुदवाया था।

उज्जैन के ज्योतिषी लोग बतलाते हैं कि शक ९६४ अर्थात् १०४२ खीष्टाब्द में राजा भोज धारापुरी के अधीश्वर थे और कोलब्रुक् महाशय इस बात पर पतियाते भी हैं क्योंकि 'शुभाषितरत्नसन्दोह' नाम ग्रन्थ में जो भोजराज का समय निरूपित है, उस से यह मिलता है।

फिट्जएडवर्ड महाशम वासवदत्ता की अंग्रेजी भाषा में लिखी भूमिका में लिखते हैं कि जिन भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण बनाया है *

* लिखा है कि मालव देश के अधीश भोजराज इस ग्रन्थ के निर्माता हैं।

वे उदयादित्य के पिता की अपेक्षा बहुत प्राचीन हैं। उन ने यह भी कहा है कि विद्वान् विलसन् महाशय ने दोनों नाम में अन्तर न पाके दो जनों को एक ही जन जानकर धारेश भोजराज की विद्यमानता खीष्टीय ११ वीं शताब्दी में अर्थात् शक १०२२ में स्वीकार कर ली है; पर इस बात का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं देते हैं।

मार्शम्यन् महाशय कहते हैं कि धारा के अधिपति भोजराज १११३ शक अर्थात् ११९१ खीष्टाब्द में वर्त्तमान थे। इसी समय में कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ ठानने का बखेड़ा खड़ा किया था।

वासवदत्ता पर अंग्रजी भाषा में लिखी भूमिका के ५० पृष्ठ में लिखा है कि मुञ्जराज और भोजराज खीष्टीय नवीं शताब्दी में किसी समय हुए और दशवीं शताब्दी का भी कुछ अंश भोगा।

सिंहासनबत्तीसी का जो माड़वारी भाषा में उल्था हुआ है; उस में लिखा है कि संवत् १०६६ अर्थात् शक ९३१ वा १००६ खीष्टाब्द में राजा भोज जीवन्त थे।

उर्दू ज़बान में तसनीफ़ की गई 'आराएशमहफेल' नामे किताब में मुन्दर्ज है कि विक्रमादित्य के इन्तकाल बअ़द ५४२ साल गुजश्ता होने पर यअ़ने संवत् १३८१ वा शक १२६४ में (?) एक भोजनामे राजा था। उस के दरबार में वररुचि नामे एक दाना (पण्डित) शख्स था। उस ने संस्कृत जुबान में सिंहासनबत्तीसीतसनीफ़ की।

कल्हण की राजतरङ्गिणी के पांचवें तरङ्ग में लिखा है कि राजाशङ्कर वर्मा ने भारतखण्ड में विख्यात भोजराज को युद्ध में जीता था। यथा--

"हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत्।
प्रतीहारतया भृत्यौ भूते थक्कियकान्वये॥"

अर्थात्—थक्किय * कुलकर राज्य भोज हर।
थक्किय कुल मम ज्यौंढ़ि दारि कर॥
सुनि शङ्करवर्मा चढ़ि गयऊ।
जीति भोज थक्किय छिति दयऊ॥

यह १५९ वां श्लोक है। शङ्करवर्मा शक ८१२ से ८२९ तक कश्मीर का राजा था। फिर भी राजतरङ्गिणी के ७ वें तरङ्ग में एक भोजराज का नाम आया है; जो राजा अनन्त देव का समसामयिक ठहरता है। यथा—

---

* थक्किय – ठोकिया।

"मालवाधिपतिर्भोजः प्रहितैः स्वर्णसञ्चयैः ।
अकारयच्येनकुण्डयोजनं कपटेश्वरे ॥"

अर्थात्—कपटेश्वरमहं एहि ढिग, हाटक राशि पठाय ।
कुण्ड करायउ भोज नृप, मालव मेदिनिराय ॥

यह १६० वां श्लोक है। राजा अनन्तदेव शक ६५५ से १००८ तक कश्मीर का राजा था। इन से व्यतिरिक्त और भी 'भोज' यह नाम देखो ; राजतरङ्गिणी ७ वें तरङ्ग के १४६५, आठवें तरङ्ग के ३४७, ३५५ और ३९५ इन श्लोकों में आया है।

उज्जैन के ज्योतिषियों ने हण्टर साहब को वहां के प्राचीन ज्योतिषियों के समय का जो निघण्ट पत्र दिया है, उस की तालिका उठा के यहां लिखी जाती है। इस में भी भोजराज के जीवन के समय का निर्देश है।

बराहमिहिर	१२२ शक में हुए
द्वितीय बराह मिहिर	४२७ "
ब्रह्म गुप्त	५५० "
मुञ्जाल	८५४ "
भट्टोत्पल	८६० "
श्वेतोत्पल	९३९ "
वरुणभट्ट	९६२ "
भोजराज	९६४ " *
भास्कर	१०७२ "
कल्याणचन्द्र	११०१ "

ऊपर जितनी युक्ति और प्रमाण दरसाये गये उन के अधिकांश से यही प्रकट होता है कि उज्जैन राज्यवर्त्ती धारापुरी के अधीश भोजराज शक ६०० के अनन्तर और १००० शक के बीच में वर्तमान थे।

न केवल भोजराज के समय निरूपण में वरन उन की निवासभूमि के निर्णय में भी गोलमाल है प्राचीन इतिहास जाननेवालों ने राजा भोज को कहीं कर्णाटक का, कहीं मालवे का, कहीं उज्जैन का और कहीं धारापुरी का राजा कह के निर्देश किया है। उन बसतियों में से उज्जैनी और धारा ये दोनों मालव देश की मुख्य नगरी ठहरती हैं। अतः मालव आदि तीन के नामों से तो तादृश भ्रम नहीं होता है परन्तु कर्णाट देश का अन्तर्भाव

* इस लिखावट से भोजराज का समय ९६४ शक ठहरता है।

कदापि मालव में नहीं हो सकता। इसलिये झख मार कई भोज मानने पड़ते हैं। किञ्च हिन्दुस्तान में नाना नगरों के भोजपुर और भोजकट इत्यादि प्रसिद्ध नामों के सुनतेही अदबदा के उन के शब्दार्थ पर अर्थात् भोज के रहने का पुर भोजपुर, भोज के रहने का कटरा भोजकट इत्यादि अर्थ पर ध्यान जाता और प्रतीति होती है कि अवश्य ये नाम भोज ही को उपलक्षित कराते हैं। इस से भी द्योतित होता है कि सच मुच भोज कई हुए हैं।

भोज की कहानी से जाना जाता है कि भोजराज के चाचा राजा मुंज ने दैवज्ञों के मुख से सुना कि यह बड़ा सौभाग्यशाली होनहार है। तिस की टीस और जलन से उस ने चाहा कि इसे गुप्त में मरवाडालें। यह दुष्ट अभिसन्धि अपने मित्र वत्सराज को जो कि बङ्गाल का राजा था बुला के सुनाया और बध सिद्ध्यर्थ उस के हाथ में भोज को दे दिया। भोज को इस कपट का भेद खुल गया सो इन ने वत्सराज से यह श्लोक कहा—

" एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यच्च गच्छति॥ "

अर्थात्—सुहृद धर्म इक मुएहु सहाय। और सकल तनुसङ्ग बिलाय॥

धर्म ही एक मात्र मित्र है। यह परलोक में भी साथ देता है। न्यारी सब वस्तु देह के छूटने के सङ्गही छूट जाती हैं।

इस श्लोक के सुनने और उस का अर्थ गुनने से वत्सराज ने धर्म चेता और भोज के बध से निवृत्त हो के उस से क्षमा माँगी। तदुपरान्त राजा मुञ्ज की समझौती के लिये भोज के शिर सरीखा एक कृत्रिम मुण्ड उसे लेजा के दिखलाया। उस के देखने से मुञ्ज को भोज का चेत आया। तब उस ने वत्सराज से पूछा कि शिर काटे जाने के पूर्व कुमार भोज ने तुम से कुछ कहा सुना तो नहीं? वत्सराज ने उत्तर दिया कि नहीं; कुछ नहीं कहा। केवल एक चीठी लिख के आप के पास पहुंचाने के लिये मेरे हाथ में दी। इतना कह के वत्सराज ने चीठी निकाल के मुञ्ज के हाथ में थम्हाई। राजा मुञ्ज ने उसे खोल के बांचा तो उस में यह श्लोक लिखा देखा—

"मान्धातेति महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतोगतः
सेतुर्येनमहोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्येचापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यातादिवंभूपते!
नैकेनापि समंगता वसुमती मन्ये त्वयायास्यति"॥

अर्थात्

मान्धातान्टपरत्न सत्ययुग में जन्में मरे; सिन्धु में
त्रेता में रचि सेतु रावणहन्यो हैं वे कहां राम हू ? ।
औरो द्वापर में युधिष्ठिर तथा राजा कई स्वर्ग गे ।
काहू संग न गै गुनौं यह मही तो संग जैहै सही ॥

मुंजराज इस श्लोक को पढ़ शोकाभिभूत हो रोने लगे और पुत्र बधात्मक पाप के प्रायश्चित्त निमित्त आग में गिरकर जलमरने को उतारू हुए। तब तो वत्सराज ने एक चतुराई रची कि किसी कापालिक (हाथ में खप्पर लेके घूमनेवाले बौद्ध भिक्षुक) को बुला ल्याके मुंजराज से कहा कि इन बाबाजी के पास ऐसी अद्भुत योगविद्याकरामात है कि मरे को फिर जिला देते हैं। ये भोज को फिर जिला देंगे आप अपने प्राण को धारण कीजिये। मुंज इस बात को पतियाया और जलमरने से रुकरहा। वत्सराज ने भोज को बुलवा मुंज के समीप खड़ा कर दिया। मुंज ने लाज से मुख नीचे कर भोज को अङ्क में भर लिया और इन्हें ले जाकर सिंहासन पर बिठला दिया। पश्चात् आप गेरुए कपड़े पहिन बावाजी बन बन को चला गया।

भोजराज के रचित ग्रन्थों के नाम ये हैं। † सरस्वतीकण्ठाभरण, अमरकोष की टीका, युक्ति कल्पतरु, चम्पूरामायण और एक ज्योतिष का ग्रन्थ। उन ने रसकौमुदी नाम एक और भी ग्रन्थ रचा था। उस का एक श्लोक यहां पर उठा के लिखा जाता है। यथा—

"चित्तद्रवः स्थायिभावः प्रेमा श्यामकलेवरः।
श्रीकृष्णदैवतः शुद्धस्वभावप्रकृतिर्मतः॥"

अर्थात्—चित्तद्रव युत श्यामतन, सहज बिशुद्ध स्वभाव।
कृष्णदेव सेवक गुनहु, रति अस्थायी भाव॥

भोजप्रबन्ध इत्यादि पुस्तकों में लिखा है कि इस भोजराज की सभा में इतने कवि उपस्थित थे।

*बररुचि, *सुबन्धु, *बाण, *अमर, रामदेव, हरिवंश, शंकर, कलिंग, कर्पूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल और तारेन्द्र। इन के अतिरिक्त किसी २ पुस्तक में कविराज का भी नाम देखने में आता है; पर बररुचि इत्यादि प्रसिद्ध कविलोग जिन के नामके आगे यहां *यह पुष्पिका

---

† मुञ्जराज कृत भूगोल के ग्रन्थ को सुधार के भोजराज ने "भोज-प्रतिदेश व्यवस्था" नाम भूगोल ग्रन्थ निर्माण किया। Asiatic Researches, Vol. XIV.

लगादी है, भोजराज के सम सामयिक न थे। इस बात की विवेचना उन के निज २ वर्णन में मैं कर चुका हूं। बूझ पड़ता है कि ये लोग वृद्ध भोजराज की सभा में थे। भोजप्रबन्धकार ने नाम की समानता से धोखा खा इन्हें अर्वाचीन भोजराज के सभासद् कह के लिख दिया होगा। कालिदास के महापद्य के श्लोक के आरम्भ में लिखा मिलता है कि शंकर नाम कवि ने उन्हें कर्णाट के राजा भोज की सभा में पहुंचाया। किसी २ ग्रन्थ में तारेन्द्र की सन्ती नरेन्द्र है और दूसरे ग्रन्थ में कविराज शब्द के पलटे वाचिराज ऐसा लिखा मिलता है। परन्तु कविराजकृत 'राघव पाण्डवीय' काव्य से ही प्रकट होता है कि कविराज भोज के सभासद् न थे। जिन जनों के नाम के साथ पुष्पिका नहीं दी गई है, वे नवीन भोजराज के किंवा वृद्ध भोजराज के सभासद् थे इस की स्थिरता नहीं करते बनती है। सच पूछो तो वररुचि आदि नामांकित अपरापर विद्वान् लोग धराधीश भोजराज की सभा में सब उपस्थित रहे हों, यह बात संभावना से सर्वथा बाहिर है।

शंकर, कर्पूर, विद्याविनोद और विनायक इन विद्वानों का नाम भोजप्रबन्ध को छोड़ दूसरी किसी पुस्तक में नहीं मिलता है। विद्याविनोद का नाम अमरकोषके टीकाकारों के बीच मिलता है और पद्यावली पुस्तक में भी कतिपय श्लोक उन के बनाये उठाये गये हैं। उन के रचयिता के परिचयार्थ उठाये श्लोक के नीचे "सर्वविद्याविनोदानाम्" अर्थात् सब विद्याओं के सुख चखनेवाले महाशय का बनाया यह श्लोक है, ऐसा लिखा दीखता है। उन श्लोकों में का एक श्लोक यह भी है—

"चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद्भीति भाजो रजन्यां
किंवाब्रूमस्तदभिसरणे साहसं माधवास्याः।
ध्वान्ते यान्त्यायदति निभृतं राधयात्मप्रकाश
त्रासात्पाणिः पथिफणिफणारत्नरोधी व्यधायि॥"

अर्थात्—

चित्र लिखित अहि देखि डराती। कहा कहिय वह तव रंगराती॥
राधा छिपि निसरी अधराती। लखि फनिमनि मग सु जगमगाती॥
पकरि हिया हरिन डगमगाती। तिहि पर कर धर निजहि दुराती॥

पद्यावली में शंकर के निर्मित भी कितने एक श्लोक उदाहृत हैं उन में का एक नीचे लिखा जाता है। यथा—

" यमुनापुलिने समुत्क्षिपतेन्नटवेशः कुसुमस्य कन्दुकम् ।
न पुनः सखि ! लोकयिष्यते कपटाभीर किशोरचन्द्रमाः ॥"

अर्थात्—यमुनातट नटवेश अट, कपट अहीर किशोर ।
कुसुम गेंद खेलत न पुनि, सखि लखि हौं चितचोर ॥

किसी २ को कहते सुनता हूं कि ऊपर उक्त सभा पण्डितों और आश्रित कवियों के संग दामोदर मिश्र भी राजा भोज के आश्रित सभासद् थे और उन ने भोज की आज्ञानुसार हनुमन्नाटक जिसे महानाटक भी कहते हैं बनाया अथवा संकलित किया ।

द्वितीय शिल्हण ।

भावप्रकाश नाम वैद्यक ग्रन्थ के रचयिता भावमिश्र अपने को शिल्हण मिश्र का पुत्र बतलाते हैं और लिखते हैं कि वृद्ध भोज और नवीन भोज दोनों भिन्न २ न्यारे जन हैं। इस से व्यक्त होता है कि भावमिश्र के पिता शिल्हण ही ने चाहे शान्तिशतक बनाया हो पर वे दोनों भोज के होने उपरान्त हुए हैं क्योंकि यदि वे भोज के पूर्ववर्त्ती होते तो भावप्रकाश में भोज का नाम न होता ।

कविराज ।

कविराज ने निज निर्मित 'राघवपाण्डवीय' नामक काव्य में लिखा है कि मैं राजा कामदेव का सभासद हूं और उन्हीं के उभाड़ने से मैं ने यह काव्य रचा है । कामदेव जयन्तीपुर के राजा थे और उन ने मध्यदेश से वैदिक ब्राह्मणों को जिन्हों ने सोमयाग कर के सोमरस पान किया था बुलाया * । इसी पकड़ान की पकड़ से लोग कल्पना कर लेते हैं कि

---

* आनेतामध्यदेशात्प्रवचनविदुषां सोमपां ब्राह्मणाना-
मारोढामर्त्यमूर्त्या सुरपतिसदसो मण्डनं मालवत्याः ।
जेताभूमिर्जयन्तीपुर पुरमथन श्रीपदाम्भोजभृङ्गः ।
सोऽपिच्मापालनेतुः स्वकुलकुलगिरिं योऽनुलेभेतयोभिः ॥"
(राघवपाण्डवीय १ सर्ग २५ स्लोक)

अर्थात् राजा कामदेव पूर्व में बड़े भारी २ तप किये रहे होंगे तभी तो तादृश राजाधिनायक के कुलांचलतुल्य अत्युन्नतकुल में जन्मे और सब पृथ्वी जीत कर मालवती के मण्डन बन जयन्तीपुर में स्थापित शिवमूर्त्ति के श्रीयुत चरणारविन्द के भ्रमर समान अनुरागी हुए तथा वेदों के पठन पाठन में सुपटु, सोमपायी ब्राह्मणों को मध्यदेश (आर्यावर्त्त) से बुलवाया । नरतन से स्वर्ग में जाके ये इन्द्र के सभासीन होंगे

कामदेव यह आदिशूर ही का दूसरा नाम रहा होगा क्योंकि उसी ने मध्य देश से वैदिक ब्राह्मणों को बुलवाया था * ऐसी गाथा है। मेरी समझ में यह कल्पना असङ्गत है क्योंकि ऊपर कह आये कि कामदेव की राजधानी जयन्तीपुर था। बंगाल के पूर्व में जो खसिया पहाड़ है; उस के पूर्वांचल में 'जयन्तीपुर' नाम नगर बसा है। उसे छोड़ भारतवर्षभर में अन्यत्र कहीं जयन्तीपुर नाम से प्रसिद्ध राजधानी का पता नहीं लगता है। आदिशूर के राज्यधाम से जयन्तीपुर बहुत दूर पर बसा है। अतः आदिशूर को जयन्तीपुर का राजा कहना वृथा है। किंच कविराज ने स्वरचित ग्रन्थ के प्रारम्भ में धारापुरी के राजा मुंज का नाम निर्देश करके सूचित किया है ‡ कि मुंज नाम का कोई राजा हो गया है। अनुसन्धान से निर्णय हो चुका है कि मुंज राजा आदिशूर से बहुत पीछे हुआ है। निदान इन युक्तियों से मैं दरसा सका कि कविराज आदिशूर से पीछे हुए हैं पर वे किस समय में हुए हैं तिस का ठीक ठिकाना अब तक नहीं लगा सका।

कोई २ कहते हैं कि कविराज यह कवि का नाम नहीं है किन्तु उपाधि है † । यह बात भी एका एक मन में नहीं भिदती है क्योंकि कवि का नाम यदि कविराज छोड़ के और कुछ होता तो कहीं न कहीं अवश्य लिखा मिलता। पद्यावली में कविराजकृत यह एक श्लोक उठाया गया है—

"नन्दनन्दन पदारविन्दयोः स्यन्दमानमकरन्दाविन्दवः।
सिन्धवःपरमसौम्यसम्पदां नन्दयन्तु हृदयं ममानिशम्॥"

अर्थात्—

नँदनन्दन पद पंकज युगभर। अतिशय सुख सम्पद रत्नाकर॥
निशिबासर कणिका मकरन्दा। उपराजहु मम हृदय अनन्दा॥

इस के रचयिता के परिचय के लिये नीचे लिखा है 'कविराजमिश्रस्य' अर्थात् यह श्लोक कविराज का बनाया है। इस से भी जंचता है कि कवि का नाम कविराज ही था।

सोमदेवभट्ट।

ये कश्मीर के महाराज अनन्तदेव के समय में हुए हैं। इसी राजा की

---

* आनेता इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक की टीका देखो।

‡ "श्रीविद्याशोभिनो यस्य श्रीमुञ्जादियतीभिदा।
धारापति रसावासोदयं तावद्धरापतिः ॥"
इस का अर्थ हो चुका है।

† देखो विद्यासागर महाशय रचित संस्कृतभाषा इत्यादि पुस्तक का २४ पृष्ठ।

पटरानी सूर्यवती के मनस्तोष के लिये सोमदेव ने कथा सरित्सागर बनाया। कल्हणकृत राजतरंगिणी के सप्तमतरंग में अनन्तदेव और सूर्य-वती का वृत्तान्त वर्णित है *। राजतरंगिणी के अनुसार लेखा लगाने से अनन्तदेव का समय निरूपित होता है कि वह ९५५ शक के अनन्तर राजसिंहासन पर बैठा। कोई २ तो कहते हैं कि १२०० खीष्टाब्द में कथासरित्सागर बना पर यह उन की निरी भूल है सो मैं पूर्व में 'माह-श्वर' कवि के वर्णन के प्रकरण में दरसा चुका हूँ।

राजशेखर।

इन की बनाई 'विद्धशालभंजिका' है। वासवदत्ता में लिखा मिलता है "अस्तिवृहत्कथालम्बैरिव शालभञ्जिकोपेतैर्वेश्मभिरुपशोभितं कुसुमपुरं नाम नगरम्" अर्थात् वृहत्कथा की कहानियों की नाईं बड़ी २ कहानियां जहां होती रहती हैं; जिन में पुतलियां लगी हैं; ऐसे गृहों से उपशोभित कुसुमपुर (पटना) नाम एक नगर है।

इस वाक्य में "शालभञ्जिकोपेतैः" यह पद श्लेष द्व्यर्थ से वृहत्कथा की कहानियों और कुसुमपुर के घरों पर भी घटित होता है। 'शालभ-ञ्जिका' शब्द का अर्थ पुतली है। वृहत्कथा में भी 'शालभञ्जिका' नाम किसी नायिका का वर्णन है और कुसुमपुर के घरों में भी शोभा के लिये पुतलियां लगी हैं। यों वृहत्कथा की कहानियां और कुसुमपुर के घर भी शालभंजिका युक्त होने से 'शालभञ्जिकोपेत' कहे गये। कोई २ इस द्व्यर्थक कविता का मर्मभेद तो न कर सके प्रत्युत केवल शालभञ्जिका पद देखने से डींगमारते हैं कि 'वृहत्कथा की नाईं 'विद्धशालभञ्जिका' भी वासव-दत्ता से पहिले बनी। शार्ङ्गधरपद्धति में राजशेखरकृत कुछ श्लोक उठाये हैं। मैं उन्हें नीचे लिखता हूं। उन में कुछ एक कवियों के नाम मिलते हैं। उन के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि ये राजशेखरदण्डी आदि कवियों की अपेक्षा नवीन हैं।

भासो * रामिल * सौमिलौ * वररुचिः * श्रीसाहसङ्कः * कविर्माघो *

---

* देखो कल्हणकृत राजतरङ्गिणी ७ तरङ्ग के १५२ श्लोक संख्या।

भारवि*कालिदास * तरलाः* (१) स्कन्दः * सुबन्धु श्च*यः ।
दण्डी * बाण * दिवाकरौ * गणपतिः काण्डश्च * रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेऽपि ते ॥
अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः * ।
श्रीहर्षस्या भवत्सभ्यः समोबाणमयूरयोः * (२) ॥
सरस्वतीपवित्राणां ज्योतिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्द्धी कुलालो (३) ऽभूद्यद्द्रोणो भारते कविः ॥

अर्थात्—रामिल सोमिल वररुचि भास । साहसांक माघ कालिदास ।
भारवि तरल सुवन्धु दिवाकर । दण्डि काण्ड गणपति रत्नाकर ॥
बाण स्कन्द कौन तिहि आगे । जे भगवति सरसुति सिधि पागे ॥
नाम दिवाकर ज्ञाति घिनोनी । भई कृपा शारद की नोनी ॥
बाण मयूर सरिस कविता में । भयो सभ्य श्रीहर्षसभा में ॥
किय पुनीत जग शारद जाही । तासु कुजाति विचारिय नाहीं ॥
भारत में द्रोणाख्य कुलाला । व्यास सदृश कवि भयउ विशाला ॥

दण्डी ।

विद्वद्वर्य विलसन् महाशय अनुमान कर के कहते हैं कि दण्डी ने कथा सरित्सागर ही को देख के दशकुमारचरित्र बनाया होगा ; पर दूसरे लोग † कहते हैं कि दण्डी, सोमदेव भट्ट के पश्चात् हुए हैं । तीसरे लोग बतलाते हैं कि धाराधीश भोजराज के समय में दण्डी वर्तमान थे । यों आपस में मतभेद है । अतः मैं दण्डी का ठीक समय नहीं निरूपण कर सकता हूं । विलसन् महाशय ने और ठौर में अनुमान कर के कहा है कि दशकुमारचरित्र को दण्डी ने खीष्टीय ११ वीं शताब्दी के उतरते वा बारहवीं शताब्दी के चढ़ते रचा होगा । विलसन् महाशय की यह कल्पना भूल से भरी है । उन की इस भूल का यही मूल तर्कित होता है

---

(१) किसी व्यक्ति का नाम है वा नहीं ?

(२) पुष्पिकाङ्कित कवियों का नाम है ।

(३) यह घटकर्पर कवि का नाम है वा नहीं ?

† वासवदत्ता पर अङ्गरेजी बोली में लिखी भूमिका लिखनेवाले महाशय आदि और भी कोई २ कहते हैं कि दण्डी काव्य प्रकाशकर्त्ता मम्मट के भी पहिले हो गये हैं । इस के प्रमाण में वे उपन्यास करते हैं कि काव्यप्रकाश में उत्प्रेचालंकार के प्रकरण में 'लिम्पतीव-तमोऽङ्गानि ' इत्यादि प्रतीकवाला जो श्लोक उदाहृत है वह दण्डिरचित है ।

कि सोमदेव भट्ट का समय उन की समझ में १२ वीं शताब्दी जंची है। वास्तव में सोमदेव भट्ट उस से भी बहुत पहिले अर्थात् खीष्टीय ११ वीं शताब्दी से भी पहिले हुए हैं। सोमदेव और भोजदेव सम सामयिक हैं; यह बात भोजदेव के वर्णन में लिखी जा चुकी है।

बहुतेरे कहते हैं कि 'जातेजगतिवाल्मीके कविरित्यभिधीयते। कवी इतिततो व्यासे कवयस्त्वयि दाण्डिनि' अर्थात् वाल्मीकि जब भये थे तब तक एकही कवि के होने से कवि शब्द का प्रयोग एकही वचन में किया जाता था। व्यास के होने पर दो कवि होने से द्विवचन में भी होने लगा पर अब जब से तुम दण्डी नाम कवि भये हो तब से तीन कवि हो चुकने के कारण उस का बहुवचन में भी प्रयोग होने लगा।

यह श्लोक कालिदास का कहा है* पर इस मत के विपरीत अनेक प्रमाण पाये जाते हैं जिनसे मुझे प्रतीति नहीं होती है कि यह श्लोक कालिदासकृत होगा। पक्षान्तर में यह श्लोक यदि कालिदासही का निर्मित स्वीकार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि कालिदास से थोड़े दिन पहिले दण्डी भये होंगे क्योंकि इन ने निजकृत काव्यादर्श में मृच्छकटिक के 'लिम्पतीवतमोऽङ्गानि' इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक को उठाया हैं। शूद्रक के समय निरूपण के प्रकरण में मैं विस्तार से दर्सा चुका हूं कि मृच्छकटिक का रचयिता शूद्रकराजा विक्रमादित्य के तनिक पहिले हुआ।

दण्डी यह व्यक्ति नाम नहीं है किन्तु संन्यासाश्रम में दण्ड धारण के उपलक्ष से दण्डी यह उपाधि है।

दाण्डिकृत ग्रन्थों के नाम, यथा-काव्यादर्श, दशकुमारचरित, छन्दोविचिति † और कलापरिच्छेद।

---

* देखो शब्दकल्पद्रुम प्रथम खण्ड दण्डी शब्द पर।

† "शिक्षाकल्पोव्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः।
छन्दोविचितिरित्येतैः षडङ्गो वेदउच्यते ॥"

(इत्यमरभरती)

अर्थात्—शिक्षा कल्प रु व्यकरण, ज्योतिष छन्दनिरुक्त।
अहैं छओ ये वेद के, अङ्गमहा मति उक्त ॥

देखो शब्द कल्पद्रुम वेदाङ्ग शब्द पर। वैदिक छन्दोग्रन्थ में मालिनी छन्द है कि नहीं इस में सन्देह है : देखो १७८४ शक की तत्वबोधिनी पत्रिका का २६४ पृष्ठ। हां पुराणआदि ग्रन्थों में मालिनी छन्द मिलता है।

आर्य क्षेमीश्वर ।

इन ने चण्ड कौशिक नाम प्रसिद्ध नाटक रचा है। यह नाटक श्रीयुत जगन्मोहन तर्कालङ्कारकृत तिलक सहित कलकत्ते के काव्यप्रकाश नाम छापे के यन्त्र में संवत् १९२४ में छपा। भूमिका में तर्कालङ्कार महाशय ने अनुमान कर के लिखा है कि यह नाटक संवत् ५२४ से संवत् १५२४ तक के भीतर किसी न किसी समय बना होगा क्योंकि साहित्य दर्पण को छोड़ और किसी पुराने अलंकार ग्रन्थ में इस का नाम नहीं मिलता है। तर्कालंकार महाशय का अनुमान असंभाव्य नहीं है पर उन ने मिति निर्द्धारित कर के निर्देश नहीं की अतः इस कवि के समयनिरूपण में मैं अपनी मोटी बुद्धि की पहुंच भर दौड़ मारता हूं।

इस नाटक में मङ्गलपद्य पाठ के अनन्तर सूत्रधार बोलता है कि मैं महीपाल देव की आज्ञानुसार इस नाटक का फाटक खोलता हूं। इस स्थल पर विवेचना करना चाहिये कि महीपाल देव कौन थे? और कहां उन की राजधानी थी? इस प्रश्न का सुसंगत उत्तर देने में बंगाल के पुराने इतिहास की सहायता लेनी चाहिये। उक्त इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि सेनवंशी राजाओं के पहिले पालवंशी राजा लोग बंगाल के प्रभु थे। उन्हीं पालवंशियों में महीपाल नामक एक विख्यात राजा हो गया है। आजतक उस के नाम की एक दीघी दीनाज़पुर के प्रान्त में प्रसिद्ध है। उस से अनुमान होता है कि इसी महीपाल राजा के समय में अथवा उस के कुछ पीछे चल के इस नाटक की रचना भई होगी। ये स्वतन्त्र राजा थे और इन ने कर्णाट आदि देश जीते थे; यह बात नीचे लिखे श्लोक से प्रकट होती है। यथा—

> " यः संश्रित्य प्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं
> जित्वा नन्दान् कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
> कर्णाटत्वं ध्रुवमुपगतानद्यतानषे हर्तुं
> दार्देर्पार्ढ्यः स पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः ॥ "

अर्थात्—प्रकृति गूढ़ चाणक बुधनीती। पकरिनन्द बधि मगधहिं जीती ॥
चन्द्रगुप्त नृप राज्य जु कियऊ। वहि महिपाल देव अब भयऊ ॥
नन्दउधौं कर्णाटक जनमे। भुजबल तिर्यट हन पुनि छन में ॥

कवि ने नाटक की समाप्ति में अपने को कार्तिकेय नाम किसी राजा

का सभासद् बतलाया है * संभव है कि राजा कार्तिकेय महीपालदेव का वंशज हो। इस विवेचना से यह बात फलित होती है कि जिस क्रम से मैं प्रस्तुत पुस्तक में कवियों का समय दर्साता आता हूं उस के अनुसार ये चण्डकौसिक के कवि काव्यप्रकाश के कर्त्ता मम्मटभट्ट और दशरूपक के रचयिता धनञ्जय से पीछे उत्पन्न हुए हैं। अतः साहित्य शास्त्र के उक्त दोनों ग्रन्थों में इन के नाटक का नाम नहीं मिल सकता है।

बल्लालसेन।

आदिशूर का वंश निर्वंश होजाने पीछे सेनवंशी राजाओं ने गौड़ देश का राजसिंहासन अधिकार कर लिया। उन्हीं की वंशावली में † विष्वक सेन का पुत्र बल्लालसेन हुआ; जिस ने ब्राह्मणों और कायस्थों के बीच कुलीनता का विचार चलाया।

इन के जन्म के संवत् के निरूपण के विषय में नाना मत हैं। घटकों के बनाये पुराने पद्यों के अनुसार बल्लालसेन का जन्म शक ११२४ में आता है। यथा—

---

* "येनादित्यप्रयोगं घनपुलकभृता नाटकस्याप्यदृष्टाद्
वस्त्रालङ्कार हेम्नां प्रतिदिनमकृशा राशयः संप्रदत्ताः।
तस्य क्षत्रप्रसूते र्भ्रमतु जगदिदं कार्तिकेयस्य कीर्त्तिः
पारेक्षीराख्यसिन्धोरपि कवियशसासार्द्धमग्रेसरेण॥"

प्रथम चरण में कुछ अशुद्धि है इस कारण उतने अंश का अर्थ नहीं किया। शेष तीनों चरणों का अर्थ यह है—जिस ने नित्य २ बहुत से वस्त्र, भूषण और सुवर्णों की ढेरें दान कीं उस क्षत्रिय कार्त्तिकेय की कीर्त्ति कवि के यश को आगे किये हुए उस के साथ क्षीरसागर के भी पार इस संसार में भ्रमण करे।

इस से व्यक्त होता है कि ये कार्त्तिकेय क्षत्रिय थे। पालवंशी होने से क्षत्रियता का व्याघात नहीं समझना चाहिये क्योंकि पहले क्षत्रियों में भी सेन और पाल इत्यादि उपाधि होती थी।

† बंगाली बोली की कहतूत का उल्था—

आदिशूरकरमूलमिटेपर सेनवंस डट टटका।
विस्वक्सेनकछेलज सुतन्टपबल्लालसेनचटका॥

उमापतिधर ने अपनी एक कविता में कहा है कि विजयसेन चन्द्रवंशी क्षत्रिय था। संभव है कि बल्लालसेन उसी विजय सेन के पुत्र रहे हों।

" वेद युग्मधराक्षौणी शाके सिंहस्थ भास्करे।
मित्रसेनस्यपुत्रोऽभूत् श्रीलबल्लालभूपतिः ॥"

अर्थात्—सिंहराशिगतसूर्य शक, ग्यारह सौ चौबीस।
मित्रसेन के सुवन भे, श्रीवल्लाल महीश॥

परन्तु मैं इस बात पर विश्वास नहीं ल्या सकता। तिस का पहिला हेतु यह है कि घटकों*ही के न्यारे पुराने पद्य में लिखा है कि गौड़देश में १२१४ शक में कन्नौज से ब्राह्मण लोग आये थे। यथा—

"वेदचन्द्रार्क शाके च गौड़े विप्राः समागताः"

अर्थात्— बारह सौ पर चौदह शाके। गौड़ माहिं द्विज पहुंचे आके॥

निःसन्देह बल्लाल सेन के जन्म के बहुत दिन पहिले ब्राह्मण लोग बंगाल में आये थे। बंगभाषा में जो घटकों के पद्य प्रचलित हैं; उन में लिखा है कि शक ९९४ में ब्राह्मण लोग आये। बंगला पद्य का अनुवाद—

सुनहु ध्यान दे के सब लोग। जब नवशत शक संवत भोग।
बीत चुक्यो नब्बे पर चार। कन्नौज से ब्राह्मण पगुधार॥
कार सौर सप्तमि गुरुवार। आके पहुंचे गौड़ मझार॥

क्षितिशवंशावली चरित नाम पुस्तक में ब्राह्मणों के आगमन का समय शक १००० बतलाया है। अविश्वास का दूसरा हेतु यह है कि 'समयप्रकाश' नाम पुस्तक में लिखा है कि बल्लालसेन ने शक १०१९में † दानसागर नामक ग्रन्थ बनाया। यथा—

" निखिलनृपचक्रतिलक श्रीबल्लालसेनदेवेन।
पूर्णे शशिनवदशमिते शकाब्दे दानसागरो रचितः॥"

अर्थात्—नव बाकी ग्यारह सौ शाके। सकलनृपति शिरशेखर बांके॥
श्रीबल्लालसेन नरराया। दानसागर ग्रन्थ बनाया॥

यों अलग २ लोगों ने बल्लाल के समय के विषय में बिलग २ तर्कणा की है। रहस्यसन्दर्भ पत्र के सम्पादक महाशय ने रहस्यसन्दर्भ के तृतीय

---

* घटक यह बंगाल में एक जाति होती है, जो कि वर के लिये योग्य दुलहिन और दुलहिन के लिये योग्यवर खोज के मिलाती जुलाती और उस में जो कुछ पाती उस से अपनी जीविका चलाती है। (अनुवादक)

† ऐसी अंकसंख्या 'रहस्यसन्दर्भ' पत्र के सम्पादक महाशय निकालते हैं। पर समय प्रकाश के श्लोक में जो संकेतात्मक संख्यावाचक शब्द हैं उन का 'अङ्कानां वामतोगतिः' इस लिखावट के नियमानुसार विन्यास करें तो १०९१ संख्या निकलती है।

पर्व के २८ खण्ड में 'सेन राजाओं की वंशावली' शीर्षक जो प्रस्ताव लिखा है; उस में देशी और विदेशी ग्रन्थकारों के नाना ग्रन्थों की सहायता से जो समय निरूपण किया है, यहां मैं उसी का सहारा लेता हूं। उस में लिखा है, कि शक ६८८ अर्थात् १०६६ खीष्टाब्द में राजाबल्लाल राज्यपद पर आरूढ़ हुए।

बल्लालसेन कृत कोई अलग काव्य नहीं मिलता पर इन की बनाई जो प्रस्फुट कविता मिलती है उन के पढ़ने से जाना जाता है कि ये एक अच्छे कवि थे। बल्लाल सेन ने अपने बेटे लक्ष्मणसेन के पास पत्र में जो श्लोक लिखा था वह कविभट्ट कृत पद्यसंग्रह में संगृहीत है। यथा—

"सुधांशोर्जातेयं कथमपि कलंकस्य कणिका
विधातुर्दोषोयं न च गुणनिधेस्तस्य किमपि।
स किं नात्रेः पुत्रो न किमु हरचूड़ार्चनमणि
र्न वा हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति॥"

अर्थात्—

केहु विधि विधुहि लाग लिमलीका। विधिलिम सुकिछुन सुगुण निधी का॥
अत्रिसुवन त्रिभुवन शिर नीका। अजहु तिमिर हर हरशिरटीका॥

दानसागर बल्लालसेन का रचित है सो पूर्व में बतला चुके।

लक्ष्मणसेन।

पूर्वोक्त रहस्यसन्दर्भ के मत से लक्ष्मणसेन शक १०२३ वा ११०१ खीष्टाब्द में सिंहासनासीन हुए। ये बल्लालसेन के बेटे थे। उन ने अपने पिता के पास कोई चीठी पठाई थी। उस में कुछ संस्कृत श्लोक रचना करके लिखे थे। उन के पढ़ने से इन की कविता शक्ति की परख मिलती है। यथा—

शैत्यं नामगुणस्तवैव तदनुस्वाभाविकी स्वच्छता।
किं ब्रूमः शुचितां भवन्त्यशुचयः स्पर्शेन यस्यापरे॥
किं चातः परमं तवस्तुतिपदं त्वं जीवनं देहिनां
त्वञ्चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः*॥

---

* दन्तकथा है कि बल्लालसेन किसी नीच जाति की कन्या पर आसक्त हुए थे; तिस के छुड़ाने में बेटे ने बाप को यह श्लोक लिख पठाया था।

अर्थात्

शीतलता गुण तेरोइ है अरु स्वच्छस्वभावता भावती तेरी।
होत शुची अशुचीउ छुए जिहि क्या कहिये शुचिता तिहिकेरी॥
है जगजीवन तू इहितें बढ़ि आन सराहनि कौन निवेरी।
तू पकरै पथ नीच अहो पय तो कहु कौन सकै तोहि फेरी॥

पद्यावली ग्रन्थ में भी लक्ष्मणसेन के बनाये कई श्लोक संगृहीत हैं। उन के पढ़ने से इन के वैष्णवत्व का प्रत्यय मिलता है। यथा—

"अंसासक्तकपोलवंशवदनव्यासक्त बिम्बाधर-
द्वन्दोदीरितमन्दमन्दपवन प्रारब्धमुग्धध्वनिः।
ईषद्विक्रमलोलहारनिकरः प्रत्येकरोकानन-
न्यञ्चच्चञ्चदुदञ्चदङ्गुलिचय स्त्वां पातु राधाधवः॥"

अर्थात्

काँधे दिशि शिर निहुराये। तहँ कल कपोल हिरकाये॥
मुरली मुहमेलि धिरंजन। बिम्बाधर युगज प्रभंजन॥
प्रेरत मधुरध्वनि टेरत। बंसुरी बिल अंगुरी फेरत॥
मूंदत इकबिल इकाबिलखोलत। वेड़े अंगुरी सब डोलत॥
मन्थरगति चललड़िहारा। राधाबर शरण तिहारा॥

हलायुध।

ये राजालक्ष्मणसेन के सभापण्डित थे *। राजा आदिशूर के यज्ञ में न्योते आये भट्टनारायण से ये सोलहवीं पीढ़ी में होते हैं और लक्ष्मणसेन राजा आदिशूर की छठीं पीढ़ी में आते हैं। अब इतिहास के खोजी महाशय लोग देखें कि केवल पीढ़ियों की गिनती से काल निर्णय नहीं हो सकता।

इन का रचित 'धर्मविवेक' नाम एक छोटा सा काव्य है। उस का प्रथम श्लोक यह है—

"श्रद्धावीजो विप्रवेदाम्बुसिक्तः शाखा विद्यास्ताश्चतस्रो दशापि।
पुण्यान्यर्थौ द्वे फले स्थूलसूक्ष्मे मोक्षः कामोधर्म वृक्षोऽयमीड्यः॥"

अर्थात्

श्रद्धा बीज विप्र श्रुति सेका। चौदह शाख धर्मतरु फेंका॥
यह धनि धन दल दै फलजोटा। भुक्ति मुक्ति इक अणु इक मोटा॥

---

* व्यवस्थादर्पण प्रथम खण्ड की भूमिका के ॥/ पृष्ठ में लिखा है कि ये धनञ्जय कोषकार के पुत्र थे; परन्तु बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर प्रकाशित वेणीसंहार नाटक की भूमिका से जाना जाता है कि हलायुध रामरूप के पुत्र थे।

इन के अतिरिक्त 'अभिधानरत्नमाला' और 'कविरहस्य' (जिस में प्रत्येक धातुओं के अलग २ अर्थ और उदाहरण लिखे हैं) इत्यादि और भी कई एक ग्रन्थ इन के बनाये हैं। धर्मशास्त्र विषयक ब्राह्मणसर्वस्व न्यायसर्वस्व और पण्डितसर्वस्व आदि ग्रन्थ भी इन के रचित हैं।

मल्लिनाथ।

महाकाव्यों की टीका लिखने से ये प्रख्यात पुरुष हुए हैं। इन ने अपनी बनाई टीकाओं में हलायुध के और मेदिनीकोष के बहुत से प्रमाण दिये हैं।

उमापतिधर।

ये महाराज लक्ष्मणसेन के प्रधान मन्त्री थे। यह बात श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के ३२ वें अध्याय के ८ वें श्लोक की भावार्थदीपिका पर वैष्णवतोषिणी टीका से विदित होती है। "श्रीजयदेव सहचरेण महाराजलक्ष्मणसेन मन्त्रिवरेणोमापतिधरेण" इत्यादि अर्थात्—उमापतिधर श्रीजयदेवजी के सखा और महाराज लक्ष्मणसेन के प्रधानामात्य थे इत्यादि।

जयदेवकृत गीतगोविन्द के एक श्लोक में इन का नाम मिलने से भी जाना जाता है कि ये जयदेव के समसामयिक थे। यथा—

"वाचः पल्लवत्युमापतिधरः" इत्यादि अर्थात् 'विबुध उमापतिधर निपुण, वचनरचन विस्तार ॥'

और गीतगोविन्द पर जो 'सर्वाङ्गसुन्दरी' टीका बनी है, वह 'वाचः पल्लवयत्युमापति धरः' इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक की व्याख्या में बतलाती है कि उमापतिधर ये "सान्धिविग्रहिक" अर्थात् लड़ाई झगड़े और मेल मिलाप की मन्त्रणा के अधिकारी राजमन्त्री थे। इस लेख की सूचना से जान ले सकते हैं कि ये किस राजा के प्रधान मन्त्री थे।

इन कवि का बनाया कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ हम लोगों को मिला नहीं परन्तु वैष्णव तोषिणी और पद्यावली में इन के बनाये कुछ श्लोक उठाये हैं। उन के पढ़ने से बूझ पड़ता है कि ये उत्तम कवि थे।

निम्न लिखित श्लोक वैष्णवतोषिणी में उठाया है—

"भ्रूवल्लीवलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापिस्मित
ज्योत्स्नाविस्फुरितैःकयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि।
गर्वोद्भेदकृतावहेल ललितश्रीभाजि राधानने
सातङ्कानुनयं जयन्ति पतिताः कंसद्विषो दृष्टयः॥"

अर्थात्—

भौंह भ्रमा कोउ नैन की सैननि कोउ कोऊ मुसुक्यानि जुन्हाइ सों ।
मारग में सदुराव समादर भाव जनावत आलि कन्हाइ सों ॥
राधिकाचार्चि कुहांइ परी भिझकार करै मुख ओप अन्हाइ सो ।
मेचक ताकनि कान्ह की मान मनावनि पैनी पै नाहि पिन्हाइ सो ॥

और पद्यावली में उठाया श्लोक यथा—

"तिर्यक्कन्धर कीलदेशमिलित श्रोत्रावतंसस्फुर-
द्बर्होत्तम्भितकेशपाशमनृजुभ्रूवल्लरी विभ्रमम् ।
गुञ्जद्वेणु निवेशिताधरपुटं साकूत राधानन
न्यस्तामीलितदृष्टि गोपवपुषो विष्णोर्मुखं पातु वः ॥"

अर्थात्—

तिरछि ग्रीव तट कुण्डल कीला । अंटकियई गुँथि कच चटकीला ॥
मिचकि पलक भृकुटिहिं मटकाई । राधामुखताकि मुरलि बजाई ॥
ऐसो गोपवेशमाधव को । वदन करै पालनतुम सब को ॥

कलाप व्याकरण की पञ्जिका में प्रमाण के लिये उमापति कृत जिन कारिकाओं का उपन्यास किया है, वे कारिका इन्हीं उपमापति की बनाई हैं वा दूसरे किसी की तिस का निश्चय नहीं होता ।

रामपुरबौलिया के समीपवर्त्ती विजयनगर की पोखरी के पक्के बंधे घाट से निकले पत्थर आज एसियाटिकसोसाइटी में धरे हैं । उन में से एक शिला में 'उमापतिधर' के बनाये ३६ श्लोक खुदे हैं । उन में राजा विजय सेन की वंशावली का वर्णन है । आईन अकबरी से जाहिर होता है कि विजयसेन ही का इसम शतकसेन है । यह राजा जाति का कायस्थ था ।

शरण ।

ये भी जयदेव के समसामायिक वा कुछ पूर्ववर्त्ती रहे होंगे क्योंकि जयदेव कृत गीतगोविन्द के प्रारम्भ में इन का भी नाम मिलता है । यथा—

"शरणःश्लाघ्यो दुरूहद्रुते"

अर्थात्—धनि धनि प्रतिभा शरण की, जाकी बुद्धि कुशाग्र ।

इन ने काव्यादि कोई बनाये वा नहीं सो हम नहीं जानते । हां पद्यावली में इन के रचित कुछ श्लोक संगृहीत हैं । उन में से एक श्लोक मैं उद्धृत करता हूं ।

" कामं कामयते न केलिनलिनी मामोदते कौमुदी
निस्पन्दैर्नसमीहते मृगदृशामालापलीलामपि ।
सीदन्नेष निशासु निःसहतनुर्भोगाभिलाषा लसै
रङ्गैस्ताम्यति चेतसि व्रजवधूमाधाय मुग्धो हरिः "

अर्थात्—व्रजबनिता चित में धस जब तें । मुग्ध भयो मनमोहन तव तें ॥
चाहत मिलन निशा सब जागत । बेसम्हार कुम्हिलात न बागत ॥
ललना ललित बयन न सुहाई । मानत चैन न जोइ जुन्हाई ॥
केलिकमलिनी करनहिं लावै । पीर शरीर पस्यो अरसावै ॥

गोवर्द्धनाचार्य ।

ये भी उमापतिधर आदि की नाईं श्रीजयदेव के समसामयिक थे क्योंकि गीतगोविन्द में इन का भी नाम आया है । यथा—

"शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेय रचनैराचार्य गोवर्द्धनस्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः" इत्यादि ।

अर्थात्—अर्थ आदि रसघटित अति, उत्तम कविता मांहि ।
गोबर्द्धन आचार्य की, उपमा दीजे काहि ॥

इन ने एक कवितापुस्तक बनाई है । उस में सात सौ आर्याछन्द निबद्ध होने से उस पुस्तक का नाम आर्यासप्तशती है । उस में भवभूति आदि कवियों की बड़ाई में बहुत से श्लोक कहे हैं । पद्यावली में भी इन के रचित बहुत से श्लोक संगृहीत हैं । यथा—

सौजन्येन वशीकृता वयमतस्त्वां किञ्चिदाचक्ष्महे
कालिन्दीं यदियासि सुन्दरिपुनर्मागाः कदम्बाटवीम् ।
कश्चित्तत्रनितान्त निर्मलतमस्तोमोऽस्तियस्मिन्मनाग्
लग्नेलोचनसीम्निनोत्पलदृशः पश्यन्ति पत्युर्गृहम् ॥"

अर्थात्

किछु कहौं तव ज्वै सुघराइ जायमुन नोनि ननीपवनीहि ह्वां ।
तमघनो चिकनो कोउ छ्वै टुको तियदृगन्त न, कन्त कुटी सुझै ॥

गोबर्द्धनाचार्य भी सेनवंशीय किसी राजा की सभा के पण्डित थे क्योंकि इन ने आर्या सप्तशती में कहा है ।

" सकलकलाः कल्पयितुं प्रभुः प्रबन्धस्य कुमुद बन्धोश्च ।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राका प्रदोषश्च ॥ "

अर्थात—बिना सेन कुल तिलक नृप, काव्यकला भरपूर ।
कौन कौन बिनु पूनि मो, सांझ कला कर पूर ॥

आर्यासप्तशती में इन ने अपने पिता का 'नीलाम्बर' यह नाम निर्देश किया है। यथा—

"यं गणयान्तिगुरोरनु यस्यास्तेऽधर्मकर्म सङ्कुचितम्।
कविमहमुशनसमिव तं तातं नीलाम्बरं वन्दे ॥"

अर्थात्—जो नित्य दूर रहते अद्यते गुरू के
नीचे कवित्व गिनती जिनकी सराही।
नीलाम्बराख्य कवि, भार्गव के सरीखे
मेरे पिता अहहिं तत्पदपद्म वन्दे।

इन के शिष्यों में से एक का नाम उदयनाचार्य था। अनुमान करना चाहिये कि येही उदयनाचार्य कुसुमाञ्जलि के रचयिता हैं वा दूसरे कोई।

"उदयन वलभद्राभ्यां सप्तशती शिष्यमोदराभ्यां नः।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्यां प्रकाशिता निर्मलीकृत्य"

अर्थ यह है—

उदयन नामक शिष्य हमारे। हैं बलभद्र सहोदर प्यारे॥
शोधिउभय सपतशति उदोती। करत यथा रवि शशि दिन ज्योती॥

शब्दकल्पद्रुम के द्वितीय खण्ड में न्याय शब्द पर उदयनाचार्य को वाचस्पति मिश्र का शिष्य कह के लिखा है।

धोयी।

जयदेव गीतगोविन्द के प्रारम्भ में "श्रुतिधरोधोयी कविक्ष्मापतिः" अर्थात्—धोयीकविपति सुनतही, बातें करत मुखाग्र॥' ऐसा कहके इन कवि की विशेष प्रशंसा करते हैं। उस से सूचित होता है कि ये जयदेव के समसामयिक अथवा उन से कुछ पूर्व रहे होंगे।

इन ने 'पवनदूत' काव्य बनाया है। मैं उस के आरम्भ के कुछ श्लोक यहां पर उठाता हूं। उन के पढ़ने से बूझ पड़ेगा कि काव्य का वर्णनीय विषय क्या है।

"अस्ति श्रीमत्याखिलवसुधासुन्दरेचन्दनाद्रौ
गन्धर्वाणां कनकनगरीनाम रम्यो निवासः।
हेमैर्लीलाभवनशिखरै रव्ययं व्यालिखद्भि
र्धत्ते शाखा नगरगणनां यः सुराणां पुरस्य ॥ १ ॥
तेत्रास्त्येका कुवलयवती नाम गन्धर्वकन्या

मन्ये जैत्रं मृदुकुसुमतेऽप्यायुधं या स्मरस्य ।
दृष्ट्वा देवं भुवनविजये लक्ष्मणं क्षोणिपालं
बालासद्यः कुसुमधनुषः संविधेयी बभूव ॥ २ ॥
बाल्यादालिष्वपि मनसिजं सानभिव्यञ्जयन्ती
पाण्डुक्षामा कतिचिदनयत्कातरा वासराणि ।
गन्तुं देशान्तरमथ मधावन्यथैव प्रवृत्तं
गाढ़ोत्कण्ठा मलयपवनं सप्रणामं ययाचे ॥ ३ ॥"

अर्थात्—

अर्थात्—चन्दन गिरिपर कनकपुरि, शोभाधामललाम ।
गन्धर्वेन्द्र की वसति है, महिमण्डल अभिराम ॥
जिहि के केलि निकेत मुरेरे । पुरट घटित दिवदेहि देरे ॥
देखि लजत जनु शाखानगरी । अमरावति की छितिपर बगरी ॥
तहां राजकन्या कुवलयवति । कुसुमहु चहि सुकुमार अंगि अति ॥
मनहु मदन सायक जयदायक । दिग्जय लखेसि लखन नरनायक * ॥
सपदि कामवश बाम, भई सखिहु से लाज बस ।
किछु न कहेसि तनु छाम, कातर नित पीरी परी ।
सुखद लगत थी जो दखिनाई । पवन लगन लगि अब दुखदाई ॥
कुवलयवति जानेसि मधु पवना । चाहत कीन्ह दिगन्तर गवना ॥
अति उत्कण्ठित तिहि सप्रणामा । लागी करन निवेदन बामा ॥

श्रीजयदेव ।

ये महाराज लक्ष्मण सेन के तुल्य कालिक थे । इस का पक्का प्रमाण पहिले ही उमापतिधर के प्रसंग में लिख आये हैं । चैतन्य चन्द्रोदय नाटक पर जो अंगरेजी में भूमिका लिखी गई है; उस में इन का समय अटकल से खीष्टीय आठवीं शताब्दी में निर्द्धारित किया है; पर यह पक्ष प्रामाणिक नहीं है ।

जयदेव का निवास 'केन्दुविल्व' ग्राम में था । आज काल अजय नद के उत्तर तीर पर जो 'केंदुली' नाम ग्राम है; उसी को जयदेव

---

* लक्ष्मण सेन ।

ने केन्दुविल्व कहा है * । 'केंदुली' गांव में आज लौं जयदेव के नाम से प्रतिवर्ष पूस मास में वैष्णवों का मेला लगता है।

जयदेव विरचित गीतगोविन्द की कविता की माधुरी के आस्वादन से मोहित हो सभी इन्हें अनुपम कवि गुनावन करते हैं। जयदेव के ऊपर बङ्गालवालों की प्रीति और प्रतीति जगत् भर में उजागर है और महाराष्ट्री बोली में 'भक्त विजय' नाम एक पुस्तक में जयदेव जी को व्यास देव का अवतार कहा है।

जयदेव निजमुख से अपनी सुन्दरकविता की प्रशंसा में जो कहते हैं

"शृणुतसुधामधुरं विबुधाविबुधालयतोऽपि दुरापम्"

अर्थात्—हे विज्ञजनो मेरी अमृत के तुल्य कविता सुनो यह स्वर्ग में भी दुर्लभ है। वह उन का सीटना नहीं है किन्तु सत्य कथन है।

एक और भी जयदेव हुए हैं, जिन का उपमान 'पक्षधरमिश्र' और पदवी 'पीयूष वर्ष †' थी। चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव के पिता का नाम 'महादेव' और माता के नाम 'सुमित्रा' था। ये कौण्डिन्य गोत्र में उत्पन्न थे × । इन से रघुनाथशिरोमणि ने शास्त्रार्थ किया था। यथा—

"अभाग्यं गौड़देशस्य काणभट्टः शिरोमणिः"

अर्थात्—गौड़देश कर भाग निदाना (अन्त)।
भट्ट शिरोमणि जहवां काना॥

---

* वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
केन्दुविल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन॥
(गीतगोविन्द तृतीय सर्ग)

अर्थात्—केंदुलि सागर शशि जयदेव। यह बरनेउ हरि सुमिरन टेव॥

यही इतने पर भी विलसन् महाशय कहते हैं कि जयदेव पण्डित कालीदास से भी पहिले कलिंग देश में हो गये हैं।

† रघुनाथशिरोमणि पक्षधरमिश्र के शिष्य थे। उन के शिष्य मथुरानाथ तर्कवागीश ने चिन्तामणि दीधति पर टीका बनाई। उन के शिष्यभवानन्दसिद्धान्तवागीश ने दीधिति पर टीका बनाई। भवानन्द के दो शिष्य थे। एक जगदीश तर्कालंकार दूसरे गदाधरभट्टाचार्य। दोनों शिष्यों ने दीधिति पर अलग २ टीका बनाई है। देखो शब्द कल्पद्रुम न्याय शब्द पर।

× इस विषय में बम्बई के छपी जयदेव की भूमिका देखो।

और " वक्षोपानकृत्कारण संशये जाग्रतिस्फुटम् ।
सामान्य लक्षणा कस्माद कस्माद वलुप्यते ॥"

अर्थात्—सकृतहु प्रतक्ष भये यदिन, जाति द्वार थल (विषय) ज्ञान ।
किमि संभव है व्यक्तिगत, संशय सुनु शिशुकान ॥

रघुनाथ शिरोमणि, धर्मशास्त्री रघुनन्दन स्मार्त्त और श्रीश्रीचैतन्यदेव ये तीनों जन नदिया निवासी वासुदेव सार्वभौम के शिष्य थे। इन जयदेव के रचित ग्रन्थों के नाम रतिमञ्जरी और चन्द्रालोक हैं । प्रसन्नराघव नाटक इन्हीं जयदेव का बनाया है वा नहीं तिस में सन्देह है। इस ग्रन्थ की समाप्ति में लिखा है " महामहोपाध्याय तार्किक जयदेवमिश्र विरचितम्" अर्थात् तर्क शास्त्र कुशल महामहोपाध्याय जयदेवमिश्र का बनाया। "जयदेवगोस्वामि रचितम्" अर्थात् जयदेव गोस्वामी ने बनाया; ऐसा नहीं लिखा।

प्रसन्नराघव नाटक की प्रस्तावना में जयदेव ने जिस श्लोक में कवियों का नाम निर्देश किया है, वह नीचे लिखा जाता है उस से छिपा न रहेगा कि कौन २ कवि इन जयदेव के पहिले हो गये हैं ।

" यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरो
* हासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदय वसतिः पञ्चबाणस्तुबाणः
केषां नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ॥"

अर्थात्

जासु चोरकवि सम कचजूरा। कर्णपूर सम सुकवि मयूरा।
हर्ष हर्ष कवि हासउ हासा । कविवर कालिदास सुविलासा ॥
मनसिजमनसि बसतजनुबाना। कहुकिहिंकावि तियकुतुक न ठाना ॥

श्री अर्जुनमिश्र ।

यद्यपि इन के समय का ठीक २ स्थिर करना निपट अटपट है तौभी भक्तमाल में श्री जयदेव गोस्वामी के अनन्तर इन का नाम आया देख मैंने भी उन्हीं का अनुसरण कर श्री जयदेव गोस्वामी के अनन्तर इन का नाम डाला।

इन ने श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में बस के महाभारत पर 'भावदीप' नाम तिलक लिखा। वही इन के महापाण्डित्य का प्रमाण है। इन ने भीष्मपर्व के तिलक के आरम्भ में लिखा है कि " श्री लक्ष्मणाचार्य गुरवे जड़जन्तु

* किसी २ प्रति में हास के स्थान में भास लिखा मिलता है।

चक्षुर्बन्धापनोदन मृते नाहिरोचतेऽन्यत् " अर्थात् मूढ़ प्राणियों की आंखों में लगे अज्ञान पटल का हटाना छोड़ दूसरा कोई कर्त्तव्य श्रीलक्ष्मणाचार्य को नहीं भावता है।

इस से स्पष्ट है कि इन के गुरु का नाम लक्ष्मणाचार्य था, ये पर लक्ष्मणाचार्य कौन थे ? तिस का ठिकाना नहीं। शंकराचार्य के शिष्यों में से किसी का नाम लक्ष्मण भी था। उस ने गुरु से अनुमति पा के एक वैष्णव-मत चलाया।

हो न हो; येही वे गुरु लक्ष्मण हों * ।

ऊपर उक्त महाभारत का ' भावदीप ' नाम तिलक छोड़ इन ने कुसुमाञ्जलि पर भी तिलक किया है और श्रीयुक्त रघुनाथ वेदान्तवागीश रचित ' अद्वयकाशिका ' नाम ग्रन्थ के ७५ पृष्ठ में लिखा है कि इन ने माध्वभाष्य की छाया ले के गीता पर भाष्य रचा।

श्रीश्रीधरस्वामी।

इन ने गीता की सुबोधिनी नाम व्याख्या की है। उस में कहा है कि मैंने भाष्यकार का तात्पर्य पर्यालोचन किया है। यथा—

" भाष्यकारमतं सम्यक् तद्व्याख्यातुर्गिरस्तथा।
यथामतिसमालोक्य गीताव्याख्यांसमारभे ॥"

---

* "पूर्वभागे लक्ष्मणाचार्यः किलदिग्विजयं कृत्वा कांश्चिद्ब्राह्मणादीन् छिन्नोर्द्ध्वपुण्ड्रधारिणःशङ्खचक्राङ्कुरभासुरभुजयुगलान् कृत्वाबहुशिष्यसमेतः पुनरावृत्यपरमगुरुचरणं नत्वातदनुज्ञावशात् मतविजृम्भणहेतुक भाष्यादिग्रन्थचयमकरोत्।"

(इति आनन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजये)

अर्थात्—इस कथानक की प्रसिद्धि है कि लक्ष्मणाचार्य दिग्विजय करते हुए पूर्वांचल में जा पहुंचे। वहां उन ने ब्राह्मणादिवर्णों के कुछ लोगों को अपनी दीक्षा में दीक्षित करके उन के ललाट में बीच में फटा रामफटाका तिलक और दोनों भुजाओं में शङ्ख.चक्र की छाप लगाने की चाल चलाई और अपने घनेरे शिष्यों समेत बड़े गुरु (शङ्कराचार्य) के पास फिर आके प्रणाम करके उन से अनुमति ले के अपने मत के प्रचार के हेतु अलग बहुत से भाष्यादि ग्रन्थ बनाये ॥

अर्थात्

भाष्यकारमत जानि भलि , भांति विवरण हुतासु ॥
समुझि यथामति करत हौं , गीता अर्थ प्रकाशु ॥

इस से सिद्ध होता है कि ये शंकराचार्य से अर्वाचीन हैं।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के १२ वें अध्याय के दूसरे श्लोक की टीका में इन ने 'विष्णुस्वामी' का नामोल्लेख किया है। उस से प्रकट है कि ये वैष्णव सम्प्रदाय के चलानेवाले विख्यात विष्णुस्वामी के पश्चात् हुए हैं। विष्णुस्वामी खीष्टीय तेरहवीं शताब्दी के पूर्व में वर्त्तमान थे; यह विस्तार से उन के समय निरूपण प्रकरण में दर्साया जायगा। किञ्च श्रीमद्भागवत तृतीयस्कन्ध २३ अध्याय के तीसवें श्लोक की टीका में 'विश्वप्रकाश' नाम कोष का वचन और बीच२ में कहीं२ दण्डी के रचित श्लोक उठाये हैं तिस से ये स्वामी उन ग्रन्थकर्त्ताओं से भी अर्वाचीन सिद्ध होते हैं *। विलसन् महाशय के छापे विष्णुपुराण ५ खण्ड के ३८३ पृष्ठ में लिखा दीखता है कि श्रीधरस्वामी हिन्दुस्तान के पूर्विहा (पूर्व देश बासी) ब्राह्मण थे।

इन ने विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता इन तीनों पर तिलक किये और 'व्रजविहार' नाम एक छोटी सी पोथी भी रची। व्रजविहार का मंगलाचरण यह है—

"गायन्तीनां गोपसीमन्तिनीनां स्कीताकाङ्क्षामक्षितोलक्ष्य माणाम्।
विद्याकन्यामात्मवक्त्रारविन्दे कुर्वन्नव्याद्देवकीनन्दनोवः ॥"

अर्थात्—जब गोपीलोग श्रीकृष्ण से लगन लगा के ब्रह्मविद्याविषयक गीतगाती थीं; उस वेला उन गोपियों की सतृष्ण आंखों से श्रीकृष्ण पर ब्रह्मविद्यारूपी कन्या की गाढ़ी चाह झलकती थी। गोपियों के मुख से सुन २ कर आप भी श्रीकृष्ण अपने मुख से उन गीतों को गाते थे। उस समय ऐसा बोध होता था कि मानो घर करना चाहती ब्रह्मविद्यारूपी कन्या श्रीकृष्णचन्द्र के बदनारबिन्दरूपी मन्दिर में बधू प्रवेश कर रही है। एतादृश श्रीकृष्णचन्द्र तुम्हारी रक्षा करें॥

---

* श्रीमद्भागवत १० म स्कन्ध ४१ अ० ४ थे श्लोक की टीका में 'हंसगुह्य' स्तोत्र का प्रमाण दिया है। लोग बतलाते हैं कि 'आकारःक्रतस्तेषां' इत्यादि प्रतीकवाला श्लोक श्रीधरस्वामी का श्रीमुखवचन है परन्तु वह खण्डप्रशस्ति में ११३ वां श्लोक लिखा मिलता है।

बिल्वमङ्गल ठाकुर

ये दक्षिण में कृष्णवर्णा (कृष्णा) नदी के पश्चिम तीर किसी बसति में रहते थे * पहिले अति लम्पट थे । किसी दिन, दिन में इन के बाप का श्राद्ध था † । रात को घनघोर घटा उमड़ी थी । जल में बहती किसी लोथ को पकड़ ये नदी पार कर गये और एक रस्सी के धोखे अजगर सांप की पूंछ थाम्ह के उस के सहारे से अपनी आसक्ता प्यारी के कोठे पर चढ़ गये । उस ने इन्हें वैसे आये देख बहुत झिड़का तब तो इन की ज्ञानदृष्टि उघड़ी और तत्क्षणात वैरागी हो गये । श्रीकृष्ण की क्रीड़ा विषय में कई पुस्तकें रचना करने से इन को लीलाशुक यह पदवी मिली थी । वैष्णव महापुरुषों के मुख से सुनने में आता है कि इन की संस्कृत में रची किसी कविता पुस्तक के श्लोकों को साक्षात् मूर्तिमन्त श्रीकृष्णचन्द्र कान दे के सुना करते थे; अतएव उस पुस्तक का नाम कृष्णकर्णामृत धरा गया । वैष्णवों के बीच इस पुस्तक का परम आदर है । सो जो कुछ हो; इस पुस्तक के सब श्लोक सुनने में सचमुच अमृत के तुल्य मधुर हैं । श्रीचैतन्य महाप्रभु सदा इस अमृत रस की माधुरी को चखा करते थे । उस का मङ्गलाचरण श्लोक यह है—

"चिन्तामणि + जयति सोमगिरिर्गुरुर्मेशिक्षागुरूश्च भगवन्शिखिपिच्छमौलिः यत्पादकल्पतरु पल्लवशेखरेषु लीलास्वयंवररसंलभते जयश्रीः"

अर्थात्

जयति सोमगिरि मम चिन्तामनि । सिखगुरु शिखिशिखण्ड शेखरधनि ।
जासु चरण सुरतरु दलकोरे । ललकि जयश्री भरत अंकोरे ॥

---

* कृष्णा को इन दिनों कृष्णवेल्ला कहते हैं । यह दक्षिण में सह्याद्रि से निकलती है । प्रमाण यथा विष्णुपुराण द्वितीय अंश तृतीय अध्याय में देखो लिखा है—

"गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णादिकास्तथा
सह्यपादोद्भवानद्यः स्मृताः पाप प्रणाशनाः ॥"

अर्थात्—गोदावरि अरु भीमरथि, कृष्णा आदि पुनीत ।
सह्याचल पग धोवतीं, नदियां मल दल जीत ॥"

† माधवेन्द्र पुरी के दादागुरु गोस्वामी विष्णुपुरी की संकलित "भक्ति रत्नावली" में इस की मिति लिखी है ।

+ कोई २ कहते हैं कि इन की आसक्ता (वेश्या) का नाम चिन्तामणि था । सो उसी को ग्रन्थारम्भ में शिक्षागुरु कह के इन ने उल्लेख किया है ।

ठाकुर बिल्वमंगल ने और भी एक छोटी सी पुस्तक रची है। उस का नाम अपने नामानुसार बिल्वमंगल ही प्रचारित किया है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"यं वेद वेद विदपि प्रियमिन्दिरायास्तन्नाभिनीररुह गर्भगृहो न धाता।
गोपाल बालललना वनमालिनं तं गोधूलिधूसर शरीरमरीरमंस्ताः॥"

अर्थात्

जासु नाभि नीरज अभ्यन्तर। निगम निरत विधि बसत निरन्तर॥
तउ जिहि कहं वह जानत नाहीं। सो बनवारी गुवारिन्ह माहीं॥
गोखुर धूरि धूसरित गाता। श्रीपति केलि करत रँग राता॥

बिल्वमङ्गल किस समय में हुए; यद्यपि इस का कहीं कुछ पता नहीं लगता तौ भी अनुमान से जाना जाता है कि शङ्कराचार्य से अद्वैत (माया) बाद का विशेष प्रादुर्भाव होने पर दक्षिण देशवासी स्वामी रामानुज जब उस के विपक्ष खड़े हो चुके थे तत्पश्चात् ये उत्पन्न हुए हैं * पहिले ये शाङ्करमतानुयायी अद्वैतवादी थे। यह बात उन के निज रचित निम्न लिखित श्लोक से प्रकट होती है।

अद्वैत वीथीपथिकैरुपास्याः स्वानन्द सिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेनकेनापिवयं हठेनदासीकृतागोप वधूविटेन॥

अर्थात्

अद्वयमत पथपथिक सुसेवित। आत्मानन्द राज्य अभिषेकित॥
हम थे तिहिंकोउ शठ दै फन्दी। ग्वारि धींगरो हठि किय बन्दी॥

कृष्णकर्णामृत के आरम्भ वाले श्लोक में इन ने सोमगिरि को अपना गुरु कहके उल्लेख किया है और जगद्विदित है कि गिरि, पुरी इत्यादि उपाधि शङ्कराचार्य के साम्प्रदायिक संन्यासी शिष्यों की शाखा भेद की पहिचान के लिये चलाई गई हैं। इस का व्योरा लोग यों बतलाते हैं कि कलिकाल में संन्यास लेना धर्मशास्त्र से निषिद्ध था परन्तु शङ्कराचार्य ने उसे कलिकाल में विहित स्थापित किया † शङ्कराचार्य के पद्मपाद, हस्तामलक, मण्डन और तोटक ये चार मुख्य शिष्य थे। पद्मपाद ने दो शिष्य

---

* भक्तमाल में रामानुज की शिष्यों की परम्परा के बीच इन का नाम भी लिखा दीखता है। उस का उल्था यथा—

रामानुज के शिष्यन्हकी बीते पर पीढ़ी बहुतेरी।
शिष्य बिल्वमङ्गल जगतारण जनु रामानुज किय फेरी॥

† देखो १७३८ शक माघमास की ४२ सङ्ख्यक तत्त्वबोधिनीपत्रिका।

किये । उन में से एक की शिष्य शाखा की तीर्थ और दूसरे की आश्रम उपाधि हुई । ऐसेही हस्तामलक के दो शिष्यों की पृथक् २ दो शिष्य शाखाओं की बन और अरण्य ये दो उपाधि हुई । मण्डन के तीन शिष्य थे उन में से एक शिष्य शाखा की गिरि, दूसरी की पर्वत और तीसरे की सागर उपाधि हुई । ऐसेही तोटक के तीन शिष्यों की तीन शिष्य शाखा की पृथक् २ सरस्वती, भारती और पुरी ये तीन उपाधि हुईं । विद्यारण्यस्वामी ने शङ्कर दिग्विजय में इन में से प्रत्येक का अलग २ लक्षण लिखा है और वह प्राणतोषणी * में भी लिखा मिलता है। परस्पर विभेदक दश लक्षणों के कारण ये जो संन्यासियों के दशदल हैं ; उन सभों की एक साधारण संज्ञा दश नामी है । निदान इस विवृति से विवृत हो जाता है कि सोमगिरि के नाम के अन्त में गिरि उपाधि रहने के कारण वे दण्डी संन्यासी थे बिल्वमङ्गल ने उन्हीं से ज्ञान सिखा था ।

जो पहिलेही से श्रीकृष्णचन्द्र जी के भजन का परम प्रेमी है वह शंकर के अद्वैतवाद को सर्व श्रेष्ठ वा मोक्ष साधन माने यह बात कदापि संभव नहीं है । हां पहिले लोग अद्वैतवाद को अखण्ड मान विश्वास करते थे । यहां तक कि उन में से बहुतेरे विष्णु की भक्ति में तत्पर हो के भी अद्वैतवाद के खण्डन की युक्ति न सूझने से उसी पर आस्था रखते थे । उन के उदाहरण यथा श्रीधरस्वामी आदि हैं ; परन्तु स्वामी रामानुज ने जब अद्वैतवाद पर सौ दूषणदेनेहारी शतदूषणी नामक पुस्तक लिखी तब लोगों की आंख खुल गई ।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने भी संन्यास ले लिया था पर वे उस के पक्षपाती नहीं बरन इसी उपलक्ष से उन के उपासक लोग उन्हें कपट संन्यासी कहते हैं । उक्त महाप्रभु ने प्रभु नित्यानन्द के कहने से संन्यास का दण्ड त्याग भी दिया था । विशेष करके † अद्वैतवाद के वे कैसे कुछ विपक्ष थे ; तिस का भेद चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड का षष्ठ परिच्छेद और प्रथम खण्ड का सप्तम परिच्छेद देखने से खुल जाता है। सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ शास्त्रार्थ का षष्ठ परिच्छेद में और काशीवासी संन्या-

---

* कलकत्ते के पास खड़दहगांव के निवासी प्राणकृष्ण विश्वास ने उपासना काण्ड के विषय में जो एक पुस्तक संकलित की है उस का नाम "प्राणतोषणी" है ।

† देखो चैतन्य चरितामृत मध्यखण्ड का पञ्चम परिच्छेद ।

सियों के साथ शास्त्रार्थ का सप्तम परिच्छेद में वर्णन है। मध्यखण्ड के पच्चीसवें परिच्छेद में भी इसी का प्रसङ्ग है।

रामानुजस्वामी।

शंकराचार्य ने जैसा अद्वैतबाद चलाया वैसाही इन ने वैष्णवों का विशिष्टाद्वैतवाद चलाया। कविवों के बीच इस पुस्तक में इन के नामोल्लेख का हेतु यह है कि वेंकटरामस्वामी ने इन का नाम कवियों के बीच में दिया है। यहां भी मैं ने उन्हीं का अनुसरण किया।

स्मृतिकालतरङ्ग के मत में रामानुजस्वामी शक १०४९ में वर्तमान थे। पट्ट में खुदे अक्षरों (शिल्पलिपि) से भी इन की मिति शक १०५० ठहरती है * कर्णाट के राजाओं के ब्योरेवार चरित्र वर्णन के पढ़ने से विदित होता है कि रामानुजार्य्य चोलदेश के राजा वीर पाण्ड्य के समय में हुए हैं †। यह राजा चोल के महाराज त्रिभुवन चक्रवर्ती का जो कि ४६० फ़सली सन् अर्थात् ९७४ वा ९७५ शक में जीवन्त थे पुत्र था। उसी चरित्र वर्णन की पुस्तक में एक ठौर यह भी लिखा है कि शक ९३९ में रामानुज का नाम जगत में फैल गया था × विलकिस महाशय ने जो कुछ प्रमाण बटोरे हैं; उन से वे अनुमान करते हैं कि रामानुज ११०४ शक में जीवन्त थे +। रामानुज के समसामयिक विष्णुवर्द्धन के बहुत से पट्टलेख (शिलालेख) मिले हैं *। उन में से किसी में भी शक १०५५ से अधिक पुरानी मिति नहीं खुदी है। विष्णुपुराण के छापे की भूमिका में विलसन् महाशय लिखते हैं कि स्वामी रामानुज खीष्टाब्द १२०० (?) में वर्त्तमान थे। इन सब तर्कों और प्रमाणों की अपेक्षा पत्थर की लीक (शिलालेख) पक्का प्रमाण है। यदि यह बात सत्य है तो रामानुज को ग्यारहवीं शकशताब्दी के बीच में प्रादुर्भूत मानें तो कोई बाधा नहीं दीखती है †।

---

* Buchanan's Mysore.

† Journal, Asiatic society of Bengal vol. VII P. 128.

× Ibid.

+ Wilk's History of Mysore P. 141.

* Mackenzie's Collections P. CXI.

† इन ने खीष्टाब्द १११६ में राजा विष्णुवर्द्धन को वैष्णव किया The Indian Antiquary.

इन का जन्म मन्द्राज के पश्चिमोत्तर भाग के पेरुम्बुर नामक नगर में हुआ। इन के पिता का नाम केशवाचार्य और माता का नाम भूमिदेवी था। इन ने काञ्चीपुर में विद्या अध्ययन किया और पहिले पहिल अपने मत का उपदेश देना वहीं से आरम्भ किया। श्रीरंग में * बस के श्रीरंगनाथ की सेवा उपासना करते हुए अनेकानेक ग्रन्थ रचे और तत्पश्चात् दिग्विजय के लिये निकले।

रामानुज आचार्य का जीवनचरित दक्षिण देश में अत्यंत प्रसिद्ध है। भार्गव उपपुराण के पढ़ने से जाना जाता है कि रामानुज शेषनाग के अवतार थे। विष्णु के शंख, चक्र, गदा और पद्म आदि आयुध और भूषण उन के मतानुयायी मुख्य २ शिष्यों के रूप में अवतीर्ण हुए थे। कर्णाटी बोली में लिखी दिव्यचरित्र नाम पोथी में भी इन का जीवन चरित वर्णित है। उस में भी इन्हें शेषनाग का अवतार कहा है। पद्मपुराण में भी रामानुज का नाम मिलता है। यथा—

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे" इत्यादि।

स्वामी रामानुज ने श्रीभाष्य (वेदान्तसूत्र भाष्य), गीताभाष्य, वेदार्थसंग्रह, रामायण की टीका, वेदान्त प्रदीप और शतदूषणी † आदिक बहुत ग्रन्थ बनाये जिन में निरा अध्यात्मविचार है। कविताई की ओर वे कभी नहीं झुके।

रामानुज के सम्प्रदायिक वैष्णवों की गुरुपरम्परा भक्तमाल में लिखी है। उस का उलथा मैं यहां लिखता हूं। उस के बांचने से जानोगे कि इन आचार्य से पहिले कौन २ से कवि और पण्डित हो गये हैं।

सिन्धुसुता लछिमी ठकुराइन + सम्प्रदाय गुरु मूल चलाइन ॥
तासु कृपा भाजन मुनिटोपा। विष्वक् सेन तासु शकटोपा।
अयुततासु बोपदेवा भिध ×। भयेशिष्य सुविदित विधानिध ॥

---

* त्रिचनापल्ली के पास कावेरी नदी की फूटी दो धाराओं से वेष्टित होने के कारण बीच में जो टापू पड़ा है, उसी में श्रीरङ्गपत्तन बसा है। त्रिचना पल्ली 'त्रिशिरः पल्ली' का अपभ्रंश है।

† मूल बङ्गाली पुस्तक में 'शतभूषणी' नाम लिखा है (अनुवादक)।

+ इस बात का 'रामानुजं श्रीः स्वीचक्री' इत्यादि प्रतीक वाला वचन प्रमाण है।

× इन ने मुग्धबोध व्याकरण बनाया और श्रीमद्भागवत की व्याख्या में मुक्ताफल नाम एक तिलक रचा।

लुप्त रह्यो भागवतपुराना। प्रकट कीन्ह पुनि जगदुखभाना॥
श्रीश्रीनाथ तासु फिरि ताके। पुण्डरीकलोचन पुनि वाके॥

मुक्ताफलेनग्रन्थेन सद्भागवतशुक्तिना।
भक्तिस्वात्यम्बुमासुग्ध मार्कण्डेयशिशुप्रिया॥
विद्वज्जनेशशिष्येण भिषक्केशवसूनुना।
हेमाद्रिर्वोपदेवेन मुक्ताफलमचीकरत॥

अर्थात्

भक्ति स्वातिजल मिलि जनु पोथी। भलो भागवत सीप अथौथी॥
भीतर से मुक्ता फल वाके। काढ़ि समर्पौं सुशिशुहि जाके॥
माय प्रपञ्च मृकण्डुज भूला। शोभित हो वह शिशु अनुकूला॥
केशववैद्यतनूजयहबुधधनेशशागिर्द।वोपदेवहेमाद्रिमुदहितमुक्ताफलकिर्द॥

इन ने जिस ने ग्रन्थरचे, सब की नामतालिका मुग्धबोध व्याकरण की समाप्ति में श्लोकबध संनिविष्ट की है।

यस्यव्याकरणेवरेण्यघटना: स्फीता: प्रबन्धादश।
प्रख्यातानव वैद्यकेऽपितिथि निर्द्धारार्थमेकोऽद्भुत:।
साहित्येत्रयएव भागवततत्वोक्तौ त्रयस्तस्यभु
व्यन्तर्वाणिशिरोमणेरिहगुणा: के केन लोकोत्तमरा:।

अर्थात्

बिदित बड़े व्याकरण पर, रुचिर रचे दश ग्रन्थ।
वैद्यकत्रय साहित्यत्रय, इक अद्भुत तिथि पन्थ॥
चौ०—पुस्तकत्रय भागवत निचोरा। बोपदेव बुधवर शिरमोरा॥
आजु अहो धरती तल माहीं। पटतर जोग गुणी कोउ नाहीं॥

कोई २ कहते हैं कि बोपदेव बारहवीं खीष्टीय शताब्दी के बीच में देवगढ़ के राजसभासद थे पर ऊपर की लिखि बातों से यह कथन कहां तक संगत हो सकता है; तिस की विवेचना का भार मैं माननीय पाठकों के ऊपर अर्पित करता हूं।

राममिश्र ताके मुनि यामुन * । तिन के रामअनुज आकरगुन ॥
जो करि कृपा भानुसम ज्ञाना । प्रकटेउ तम अज्ञान नसाना † ॥

कल्हण ।

इन ने कश्मीर के महाराजों के इतिहास में राजतरङ्गिणी बनाई। शक १०७० में विद्यमान थे। सो आप ही लिखते हैं।

"लौकिकेऽब्दे चर्तुविंशे शककालस्यसाम्प्रतम् ।
सप्तत्यत्यधिकं यातं सहस्रं परि वत्सराः ॥"

अर्थात्

लौकिक संवत चौबिस बीते + । दश सौ सत्तर शाक बितीते ॥
इस मिति में आज काल राजतरंगिणी बन रही है।

मुरारि मिश्र ।

ये विष्णुपुर ग्राम में ११०० शकाब्द के भी पूर्व वर्तमान थे × । विष्णुपुर राढ़ देश में मल्लवेणी (मल्लावनि वा मल्लभूमि) की राजधानी था। ये वहीं के राजा के आश्रित थे। ये अपनी पहिचान में बताते हैं कि मैं महाकवि गोवर्द्धन भट्ट का पुत्र हूं। ये गोवर्द्धन भट्ट जयदेव के पूर्ववर्त्ती आर्या सप्तशती के रचयिता गोवर्द्धनाचार्य ही हैं वा कोई दूसरे हैं इस का पता लगाना चाहिये।

---

* इन का बनाया "आलवन्दारस्तोत्र" है। उस में से श्रीचैतन्यचरितामृत प्रथम खण्ड तृतीय परिच्छेद में एक श्लोक उठाया मिलता है –

उल्लङ्घित त्रिविधसीमसमातिशायिसम्भावनं तवपरिव्रढ़िमस्वभावम् ।
मायाबलेन भवतापि निगुह्यमानंपश्यन्तिकेचिदनिशं त्वदनन्य भावाः ॥"

अर्थात्—तव स्वभाव ठाकुरपन आगे। सद्दशविशेषविषय सब त्यागे।
सोउ मायाबल रखेउ दुराई। कोउ लख जु सतत भज शरणाई ॥

† लक्ष्मी ठकुराइन से चल के रामानुजाचार्य तक गिनती में केवल आठ पीढ़ी होती है। इतनी थोड़ी पीढ़ी देखने से तर्कणा होती है कि गुरु परम्परा में विशिष्ट २ देशिक का नाम गिनाया गया है।

+ जान पड़ता है कि काश्मीर में उन दिनों इस नाम का कोई नया संवत् चला होगा।

× देखो अनर्घ्यराघव के छापे पर श्रीप्रेमचन्द्रतर्कवागीश महाशय कृत भूमिका। यह मत ठीक नहीं है। अनर्घ्यराघ के कवि मुरारि इन से दूसरे हैं। (अनुवादक)

प्रसिद्ध अनर्घ्य राघव नाटक इन्हीं का निर्मित है। धर्मशास्त्र और न्याय के भी ग्रन्थ इन ने बनाया होगा, ऐसा अनुमान होता है क्योंकि जगन्नाथतर्क पंचाननकृत "विवादभङ्गार्णव" नाम दाय विषयक ग्रन्थ में और विश्वनाथ न्यायपंचानन रचित न्याय विषयक भाषापरिच्छेद की टीका सिद्धान्तमुक्तावाली में मुरारि मिश्र का नाम मिलता है।

गोपालदास वैद्य।

छन्दोमंजरी ग्रन्थकार गंगादास इनके पुत्र थे। इन ने 'पारिजातहरण' नाम नाटक बनाया है; तिस का प्रथम श्लोक यह है—

"सिन्दूरपूरकृतगैरिकरागशोभे शश्वन्मद स्रवण निर्झरवारिपूरे।
सङ्ग्रामभूमिगत मत्तसुरेभकुम्भकूटे मदीयनखराशनयो विशन्तु॥"

अर्थात्—संग्रामभूमि में मतवाले देवदिग्गजों के मस्तक पर्वतों के शिखर के तुल्य हैं उन में वज्र की नाईं मेरे नखनिपात हों। दिग्गजों के मस्तकों से जो मदजल बहते हैं वे मानों झिरनों के पानी की धारा बहती है और जो सिन्दुर की रंजना है वह मानो लाल २ गेरू हैं।

गंगादास।

इन ने छन्दोमंजरी बनाई है। उस में मुरारिमिश्रकृत अनर्घ्यराघव के श्लोकों को प्रमाणरूप से उपन्यस्त किया है। इस से इन्हें उन के अनन्तर निर्द्धारित किया। छन्दोमंजरी के प्रारम्भ में ये अपनी पाहिचान यों देते हैं—

"देवं प्रणम्यगोपालं वैद्यगोपालदासजः।
सन्तोषातनयश्छन्दो गंगादासस्तनोत्यदः॥"

अर्थात्

वैद्य गुपाल दास मम ताता। सन्तोषा नामक मम माता॥
गंगादास प्रणमि गोपालहिं। करहुं ग्रथित चुनि छन्दो जालहिं॥

इन के बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं। अच्युतचरित, गोपालशतक, दिनेशशतक और दिनेशतत्त्व। छन्दोमंजरी का अन्तिम श्लोक यह है—

सर्गैःषोड़शभिः समुज्ज्वलपदैर्नव्यार्थभव्याशयै—
र्येनाकारितदच्युतस्य चरितं काव्यं कविप्रीतिदम्।
कंसारेःशतकं दिनेशशतकद्व न्द्वश्चतस्यास्त्वसौ
गङ्गादासकवेः श्रुतौ कुतुकिनां सच्छन्दसांमञ्जरी॥

अर्थात्—जिस ने नये २ अर्थों और मनोहर भावों से गर्भित ललित पदों से युक्त सोलह सर्गों में कविजन सुखजनक अच्युतचरित नाम ग्रन्थ और कृष्णशतक तथा दिनेशशतक बनाये; उस गंगादास कवि की निर्मित सुन्दर छन्दोमंजरी काव्यविनोदियों के श्रवण गोचर होवें।

मध्वाचार्य ।

ये दक्षिण में तुलवा के (तुलवदेशनिवासी) रहवैये मधुजीभट्ट नाम एक ब्राह्मण के पुत्र थे। ११२१ शकाब्द में जन्मे *। सर्वदर्शनसंग्रह में इन का नाम पूर्णप्रज्ञ और मध्यमन्दिर भी कहा है। और भी कई ठौर में इन की उपाधि आनन्दतीर्थ ऐसी लिखी मिलती है। सर्वदर्शनसंग्रह में इन को पवनावतार कह के निर्देश किया है। यथा—

"प्रथमन्तु हनूमान् स्याद्द्वितीयोभीमएवच ।
† पूर्णप्रज्ञस्तृतीयश्च भगवत्कार्यसाधकः ॥"

अर्थात्—वायु के प्रथम अवतार हनुमान्, द्वितीय भीमसेन और तीसरे पूर्णप्रज्ञ हुए। तीनों अवतारों में इन ने भगवान् के इष्ट कार्य साधित किये।

इन के चलाये मत को वैष्णव लोग ब्रह्म सम्प्रदाय कहते हैं और उस की पुष्टि के लिये पद्मपुराण के इस वचन को प्रमाण उठाते हैं।

" रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः " इत्यादि + ।

मध्वाचार्य ने अनन्तेश्वर के मठ में विद्याभ्यास किया और जब इन की अवस्था नौ वर्ष की थी तब सनकवंशी अच्युतप्रच नामक आचार्य से

---

* विलसन् महाशय के छापे विष्णुपुराण की भूमिका में लिखा है कि ये ११२०० शक में वर्तमान थे। सन् १८८६ खीष्टाब्द में छपे रहस्यसन्दर्भ ३ पर्व ३४ खण्ड के १५० पृष्ठ में लिखा है कि ये लगभग आज से ६०० वर्ष पहिले पादूकाट नाम धाम (स्थान) में जन्मे थे।

† "एतच्चरहस्यंपूर्णप्रज्ञेन मध्यमन्दिरेणवायोस्तृतीयावतारम्मन्ये न निरूपितमिति।"

अर्थात्—इस का मर्म मध्यमन्दिरोपनामक पूर्णप्रज्ञ (मध्व) ने भी अपने को वायु का तीसरा अवतार लगाते थे निरूपित किया है

+ तत्त्वसन्दर्भ में लिखा है कि विजयध्वज, ब्रह्मतीर्थ और व्यासतीर्थ इत्यादि विद्वान् पहिले दक्षिण देश में शंकराचार्य के साम्प्रदायिक शिष्य थे। पश्चात् अद्वैतवाद का विश्वास विसर्जन कर इस सम्प्रदाय के वैष्णव हो गये।

इन ने संन्यास आश्रम ग्रहण किया। सुनते हैं कि मध्वाचार्य ने बद्रीबन (बदरिकाश्रम) में जाके वेदव्यास से भेंट की। इन के रचित सैंतीस ग्रन्थों में से कुछेक के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

गीताभाष्य, सूत्रभाष्य, ऋग्भाष्य, दशोपनिषद्भाष्य, अनुवाकानुनय-विवरण, अनुवेदान्तरसप्रकरण, भारततात्पर्यनिर्णय, भागवततात्पर्य, गीता-तात्पर्य, कृष्णामृतमहार्णव और तन्त्रसार।

शार्ङ्गधर।

शार्ङ्गधर, दामोदर के पुत्र थे। दामोदर, राघव के पुत्र थे। राघव के तीन पुत्र हुए। जेठा गोपाल, मझिला दामोदर और लहुरा देवदास था। शार्ङ्गधर के कृष्ण और लक्ष्मीधर दो छोटे भाई थे। शार्ङ्गधर के आजा (पितामह) राघवदेव राजपुताने के शाकम्भरि देश (सांभर) में रहते थे। राजा हम्मीर चौहान के यहां नियुक्त थे। हम्मीर का राज्यकाल १३२५ से १३५१ खीष्टाब्द तक सिद्ध हुआ है। (?)

शार्ङ्गधर ने स्वरचित शारंगधर पद्धति में लिखा है कि संवत् १४२० अर्थात्— शक १२८५ में यह संकलित हुई।

सायणाचार्य।

पहिले शंकराचार्य के वर्णन में बतला आये हैं; विद्यानगर वा विजय-नगर के राजा हरिहर शक १३१७ में वर्तमान थे। उन के पिता संगम राजा के मन्त्री के पद पर सायणाचार्य नियुक्त थे। उस से निकलता है कि सायणाचार्य शक १२०० के पूर्ववर्त्ती रहे होंगे।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद आदि पर वेदभाष्य किया है और इन की रचित धातुवृत्ति नाम पुस्तक में यह लेख मिलता है—

"इति पूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वर कम्पराजपुत्रसङ्गमराज महा-मन्त्रिणामायणपुत्रेण माधवसहोदरेणसायणाचार्येण विरचिता माधवीया धातुवृत्तिः"

अर्थात्—पूर्व, दक्षिण और पश्चिम समुद्र के जो कि भारतवर्ष के दक्षि-णाञ्चल में है अधीश्वर कम्पराज के पुत्र राजा संगम के मन्त्री सायणा-चार्य ने यह धातुवृत्ति बनाई। सायणाचार्य के पिता मायण थे और सहो-दर भाई माधव थे। सायण ने धातुवृत्ति का नाम माधवीय धातुवृत्ति क्यों रक्खा है? इस प्रश्न का उत्तर अनुमान से दे सकते हैं कि सायण

और माधव ये दोनों भाई प्रेम से इतने हिले मिले थे कि दोनों जो जो पुस्तक बनाते गये सब में दोनों का नाम देते गये हैं। देखो सर्वदर्शन-संग्रह में माधव ने भी सायण का नाम दिया है—

"पूर्वेषामति दुस्तराणिसुतरामालोड्यशास्त्राण्यसौ श्रीमत्सायणमाधवः प्रभुरुपन्यास्थत्सतां प्रीतये" अर्थात्—प्राचीन आचार्यों ने जो ग्रन्थ बनाये उन का अर्थ लगाना बड़ा कठिन जान उन का आलोड़न (भीतरधँसना) विद्वानों के सुखाववोधार्थ श्रीयुत सायणमाधव प्रभु ने सर्वदर्शनसंग्रह का कथन किया है।

माधवाचार्य।

इन का दूसरा नाम विजयानन्द है और स्वामी विद्यारण्य यह उपाधि मिली थी। ये सायणाचार्य के भाई हैं सो; पहिले लिख * आये। विजयानन्द ने अपने नाम से विजय नगर को शक १२५३ अर्थात् सन् १३३१ खीष्टाब्द के वैशाख की ७ वीं तिथि को बसाया ऐसा ताम्रपत्रों पर खुदे अक्षरों से प्रमाणित होता है कि पोकाराव और माधवाचार्य दोनों जन समसामयिक थे। इस से जान पड़ता है कि माधवाचार्य पोकाराव को विजयनगर का राजा बना के आप उस के मन्त्री का का भार उठाये रहे होंगे।

माधवाचार्य ने ऋक्, यजुः और सामवेद के भाष्य रचे हैं। व्यवहार में जो प्रजाओं के झगड़े आते हैं उन का निबटेरा कैसे किया जावे? तिस के निर्द्धारण में माधव ने धर्मशास्त्रानुसार व्यवहारमाधव नाम ग्रन्थ बनाया। पाणिनि व्याकरण पर एक टीका और सर्वदर्शन संग्रह भी इन के बनाये हैं। लोक कहते हैं कि शङ्करविजय भी इन्हीं की कृति है। पराशरस्मृति की व्याख्या जो इन ने लिखी है, उस का नाम माध-

---

* सर्वदर्शनसंग्रह के प्रारम्भ में एक श्लोक है। उस के पढ़ने से विदित होता है कि माधव भी सायण ही के पुत्र थे। वह श्लोक यह है—

"श्रीमन्सायणदुग्धाब्धि कौस्तुभेनमहौजसा।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः"

अर्थात्—जैसे क्षीरसागर से कौस्तुभरत्न निकला तैसे श्रीमान् सायण से महातेजस्वी जो माधवाचार्य उत्पन्न भये वे सर्वदर्शनसंग्रह बनाते हैं। बंगला में सायण को कनिष्ट लिखा है बंगला में श्रीमत्सायण पाठ है। पर मेरी अनुमति से सायण ही के पुत्र थे। (अनुवादक)

वीय वा माधव्य है। इन ने इतने अधिक ग्रन्थ बना के ऐसा नाम कमाया कि लोग इन्हें महादेव का अवतार मानने लगे।

जोनराज।

कश्मीर के महाराजों के इतिहास में इन ने कल्हण के पीछे दूसरी राजतरंगिणी रची है। ये शक १३३४ के पहिले वर्तमान थे। यथा—

"श्री जोनराज विबुधः कुर्वन्राजतरङ्गिणीम्।
सायकाग्नि मितेवर्षे शिवसायुज्य मासदत्॥"

(श्रीवर पण्डित कृत ३ री राजतरंगिणी के प्रथम तरंग का छठां श्लोक)

अर्थात्—राजतरङ्गिणि ग्रन्थ यह, जोनराज विरचन्त।
काश्मीरी पैंतीस सन, शिवसायुज्य लहन्त॥

श्रीवर पण्डित।

ये पूर्वोक्त जोनराज के शिष्य थे और तृतीय राजतरंगिणी बनाई। यथा—

"शिष्योऽस्य जोनराजस्य सोऽहं श्रीवर पण्डितः।
राजावली ग्रन्थ शेषा पूरणं कर्तु मुद्यतः॥"

(३ य राजतरंगिणी १ म तरंग का ७ श्लोक।)

अर्थात्—"जोनराजबुध शिष्य हौं, श्रीवर पण्डित नाम।
राजतरंगिणि शेष गुँथि, चाहत करन तमाम॥"

इन ने सन् १४७७ ई० में शाहफते शाह के वक्त तक की तवारीख लिखी हैं *।

महीप।

इन ने १४३० में 'नानार्थ तिलक' नाम एक कोष बनाया। हम नहीं जानते कि यह १४३० संवत् वा शक का अंक है †। नानार्थ तिलक के प्रमाण शिवराम वासवदत्ता दर्पण नाम तिलक में बहुत उठाये हैं।

---

* देखो शक १७८५ चैत्र मास की तत्त्वबोधिनीपत्रिकाका १६८ पृष्ठ।

† बहुधा अर्वाचीन पुस्तकों में शकाब्दही लिखे मिलते हैं। इस पद्धति से हो न हो वह शकाब्दही का अंक हो। इसी विवेचना से मैंने इन का नाम जोनराज आदि के पीछे भुगताया।

प्राज्यभट्ट अथवा प्राज्ञभट्ट ।

इन ने राजावलिपताका नाम की चौथी राजतरंगिणी बनाई है । ये शक १४८२ में वर्तमान थे । इन ने फ़तह शाह की अमलदारी की कैफ़ियत से तवारीख़ शुरू की है । यथा—

" गङ्गाभगवतीतीर्थे स्नानधन्यस्वभूषितः ।
कविः श्रीप्राज्ञभट्टाख्यः समग्रगुणभूषितः ॥
राजावलिपताकां स्वां राज्ये फतिह भूपतेः ।
एकोन नवतिं यावद्व्यक्तीचक्रे ततः परम् "

(इति चतुर्थ तरंगिणी के ७-८ श्लोक ।)

अर्थात्—

श्रीप्राज्ञभट्ट कवि गङ्ग पवित्र तीर्थ न्हाके कृतार्थतन सर्वगुण प्रवीण ।
खासी तवासितक या विरची पताका राजावली फतहशाह समै तदग्रे ॥

विष्णुस्वामी ।

इन ने वैष्णवों का तृतीय सम्प्रदाय चलाया है । इन के चलाये सम्प्रदाय को रुद्र सम्प्रदाय कहते हैं । प्रमाण यथा पद्म पुराण ——

" रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः ।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रः " इत्यादि ।

ये शक १५०० के पूर्व में वर्तमान थे *। इस में प्रमाण निम्न लिखित वर्णन है । विष्णुस्वामी के शिष्य ज्ञानदेव, ज्ञानदेव के वामदेव और त्रिलोचन शिष्य हुए । इन सभों के अनन्तरही अथवा थोड़े पीछे तैलङ्ग लक्ष्मण भट्ट के पुत्र बल्लभ ने शक संवत्सर की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में आचार्य पद प्राप्त कर अपने मंत का अच्छा प्रचार किया । पहिले वे गोकुल में रहते थे †

---

* संवत् १५३५ में वल्लभाचार्य वर्तमान थे । देखो गोपाललीला काव्य की प्रस्तावना The Pundit. विलसन् महाशय के छापे विष्णुपुराण की भूमिका में एक ठौर १६०० खीष्टाब्द में और दूसरी ठौर १५२० खीष्टाब्द में ये वर्तमान थे ऐसा लिखा है ।

† मथुरा से न्यूनाधिक तीन कोस पूर्व में यमुना के बायें तट पर गोकुल गांव बसा है । यहां के गोस्वामी लोग इसी सम्प्रदाय के हैं ।

वहां कुछ दिन बिता के तीर्थाटन को निकले भक्तमाल में लिखा है कि ये दक्षिण के विजय नगर के महाराज कृष्णदेव की सभा में पहुंचे और वहां धर्मशास्त्री ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। वहां के वैष्णवों ने इन्हें आचार्य पद पर वरण करके इन से दीक्षा ली। वल्लभाचार्य श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। इस की चर्चा चैतन्य चरितामृत अन्तिमखण्ड के सप्तम परिच्छेद में विस्तार से आई है।

विष्णुस्वामी ने वेदों पर भाष्य बनाये।

निम्बादित्य।

इन ने वैष्णवों का चौथा सम्प्रदाय चलाया। इन के चलाये सम्प्रदाय का नाम सनकादिक सम्प्रदाय है प्रमाण यथा पद्मपुराण का वचन है।

" रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुः सनः ॥"

अर्थात्—

रामानुजकहँ श्रीसिखव, विष्णुस्वामिहि महेश।
निम्बार्कहि सनकादि सिख, दिय मध्वहिं लोकेश॥

ऐसी किंवदन्ती है कि सूर्य ने इस जगत् में पाखण्ड मिटाने के लिये निम्बादित्य के स्वरूप में अवतार धारण किया था। इसी से निम्बादित्य का नाम पहिले भास्कराचार्य था। वृन्दावन के पास ये बास करते थे। एक समय कोई दण्डी अथवा कोई २ कहते हैं कोई जैनउदासी इन के झोपड़े में आके उतरा। मतविषयक बातचित छिड़ के दोनों मे शास्त्रार्थ हो पड़ा। बाद विवाद होते २ सूर्यास्त हो गया। तब भास्कराचार्य ने सुधि सम्हाली कि गृहागत अभ्यागत का आतिथ्य करना चाहिये जिस से उसे विश्राम मिले सो भोजन के लिये कुछ सामग्री ल्याये। दण्डी वा जैनी लोगों का नियम है कि सांझ वा रात होजाने पर फिर भोजन नहीं करते। उसी नियमानुसार अतिथि ने भोजन न करना चाहा। निम्बादित्य के मतानुयायी वैष्णव लोग विश्वास करते हैं कि भास्कराचार्य ने अतिथि को उपोषित रहते देख सूर्य की गति को तब तक रोक रक्खा जब तक कि अतिथि का खाना पकाना और खाना पूर्ण न हो चुका; उतने काल तक सूर्य निम्बादित्य के निर्देशानुसार एक निम्ब के पेड़ के साम्हने ठहरे दिखाई दिये। निदान सूर्य देव ने भी निम्बादित्य का कहना माना। इसी उपलक्ष से उस दिन से भास्कराचार्य का नाम पलट के निम्बार्क अथवा निम्बादित्य ऐसा चल निकला।

निम्बादित्य के समय की मिति की स्थिरता नहीं हो सकी। मथुरा के समीप यमुनातीर ध्रुवतीर्थ (ध्रुवक्षेत्र) में इन का आसन (गादी) था। लोग बतलाते हैं कि इन के शिष्य हरिव्यास गृहस्थ थे। उन्हीं के सन्तान आज तक पीढ़ी से पीढ़ी लों उक्त आसन (गादी) के अधिकारी होते आते हैं। परन्तु उस आसन के महन्त कहते हैं कि हम निज निम्बार्क के वंशज (सन्तान) हैं। ध्रुवतीर्थ में उक्त आसन के बिछने के आरम्भ की मिति वे १४२० वर्ष से भी पूर्व निर्देश करते हैं पर यह झपासियापन की बात जंचती है। पद्मपुराण के 'रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे' इत्यादि प्रतीकवाले वचन में जैसा क्रम पढ़ा है; उस के अनुसार तो यही अनुमान होता है कि स्वामी रामानुज आदि तीन मतप्रवर्त्तकों के पश्चात् निम्बादित्य का प्रादुर्भाव भया होगा क्योंकि यदि वे सब से पहिले भये होते तो उक्त श्लोक में उन का नाम सब से पहिले लिखा मिलता।

इन की बनाई केवल धर्माब्धिबोध नाम एक पुस्तक प्रचलित है। एतद्भिन्न अन्य कोई पुस्तक इन ने बनाई वा नहीं सो विदित नहीं है। संस्कृत कोकिल दूत के ३२ वें श्लोक की टीका में धर्माब्धिबोध का यह श्लोक उठाया है—

"रजोवृत्त्या सुविक्षिप्तो ब्रह्मा जिज्ञासुरर्थतः।
जिज्ञासया भजन्कृष्णं भक्त आरभ्यजन्मनः॥"

अर्थात्—ब्रह्मा आजन्मकृष्णभक्त थे और भजन के लिये कृष्ण की जिज्ञासा रखते थे जब उन के चित्त में रजोगुण से विशेष विक्षेप हुआ तब वास्तव में कृष्ण भगवान् हैं कि नहीं इस बात की परीक्षा लेने की इच्छा हुई।

इन के केशव भट्ट और हरिव्यास ये दो शिष्य थे *।

भानुदत्त मिश्र।

कुमार भार्गवीय चम्पू, रसमञ्जरी और रसतरङ्गिणी ये पुस्तक इन की बनाई हैं † इन ने रसमञ्जरी की समाप्ति में अपनी पहिचान का श्लोक यों लिखा है—

"तातो यस्यगणेश्वरः कविकुलालङ्कारचूड़ामणिर्देशो यस्य विदेहभूः

---

* देखो; भक्तमाल २६१ पृष्ठ और अक्षयकुमारदत्त कृत 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय'।

† गीतगोविन्द की ढङ्ग का गीतगौरीपति नाम काव्य भी इन ने बनाया है। (अनुवादक)।

सुरसरित्कल्लोलकिर्मीरिता। पद्येनस्वकृतेन तेन कविना श्रीभानुना योजितावाग्देवीश्रुतिपारिजातकुसुमस्पर्द्धाकरीमञ्जरी ॥ ”

अर्थात्—कविगणशिरमुकुटमणि गणेश्वर जिस के पिता हैं और गंगा के तरङ्गों से उज्ज्वलता मिश्रित तिरहुत जिस की जन्मभूमि है। उस श्रीयुत भानुदत्त कवि ने श्लोकों में रसमंजरी बनाई । यह सरस्वती देवी के कर्णगत पारिजात पुष्प के कर्णफूलों से ईढ़ रखती है अर्थात् यह उन कर्णफूलों के तुल्य है।

धनिक।

इन ने दशरूपक पर दशरूपकावलोक नामक तिलक लिखा। उस में अपनी पहिचान यों बतलाई है 'इति विष्णुसूनोर्धनिकस्य कृतौ' अर्थात्—विष्णु के पुत्र धनिक की रचना में समाप्ति इस से निर्द्वन्द्व निर्द्धारित होता है कि ये विष्णु नाम कवि के पुत्र थे। इन ने उक्त तिलक में विद्धशालभञ्जिका के रचयिता राजशेखर के वाक्यों के उदाहरण दिये हैं। उस से जाना जाता है कि ये ९०० शताब्दी के बीच में वर्त्तमान थे। इन ने 'काव्यनिर्णय' नाम एक साहित्य का ग्रन्थ बनाया है। दशरूपकावलोक में इन ने कहीं२ स्वरचित पद्य भी उठाये हैं। उन के पढ़ने से इन्हें एक महाकवि कहने में सन्देह नहीं रहता है। प्रस्तुत पुस्तक में पद्मगुप्त और रुद्र इन दो कवियों का वर्णन हम नहीं कर सके । इन दोनों के नाम दशरूपकावलोक में मिलते हैं।

मायूराज।

इन ने उदात्त राघव बनाया * ।

श्रीकृष्ण मिश्र।

इन ने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक निर्माण किया । कोई २ बतलाते हैं कि केशव मिश्र इन्हीं का नामान्तर है।

इति द्वितीय परिच्छेद समाप्त हुआ।

---

* काव्यमाला में इन्हें हैहयवंशी लिखा है। (अनुवादक)

तृतीयकाल ।

चन्द्रशेखर वैद्य ।

इन ने 'पुष्पमाला' नामक काव्य बनाया है ॥

विश्वनाथ कविराज ।

ये ऊपर उक्त चन्द्रशेखर के पुत्र हैं । यह बात इन ने आप साहित्य दर्पण की समाप्ति में कही है । यथा—

" श्रीचन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनु श्रीविश्वनाथकविराजकृतं प्रन्बधम् ।
साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेववित्त॥"

अर्थात्—श्रीचन्द्रशेखर महाकवियों के बीच चन्द्रसदृश सब को सुखद थे । उन के पुत्र श्रीविश्वनाथ कविराज ने यह साहित्यदर्पण निर्माण किया । इसे पढ़ कर पण्डित लोग साहित्य शास्त्र के सकल तत्त्वों को सहजही में जान लेओ ।

श्रीयुत कावेल महाशय जो कि संस्कृत कालिज के अध्यक्ष थे गुनावन करते हैं कि ये कविराज खीष्टीय पन्द्रहवीं शताब्दी में हुए हैं । उन का अनुमान हमारी बुद्धि में भी धँसता है क्योंकि सनातन गोस्वामी आदि जो लोग इन के पश्चात् उत्पन्न हुए हैं उन्हों ने अपने २ ग्रथ में प्रसङ्ग पड़े पर इन का नामोल्लेख किया है । देखो ; यथा श्रीमद्रूप गोस्वामी स्वसङ्कलित पद्यावाली में इन के श्लोक को उठाते हैं ।

'व्यतीताः प्रारम्भाः प्रणयबहुमानो विगलितो ।
दुराशा याता मे परिणातिरियं प्राणितुमपि ॥
यथेष्टं त्रेष्टन्तां विरहिबधविख्यातयशसो ।
विभावामय्येते पिकमधुसुधांशुप्रभृतयः ॥'

अर्थात्—साध की धाजें जाती रहीं । गाढ़ानुरागजनित मान ढल गया । जितनी आशा बंधी थीं वे सब दुराशा भईं । अब तो जीवन से भी निराशा होती है । विरहिजनों के बध से नाम कमाये हुए कोकिल, बसन्त और चन्द्र आदिक ये सब उद्दीपन विभाव मेरे पक्ष में जो करें सो सब थोड़ा है ।

कवि कर्णपूर ने स्वरचित अलङ्कार कौस्तुभ में विश्वनाथ कविराजकृत साहित्य दर्पण के "काव्यं रसात्मकं वाक्यं" अर्थात्-रसभरे वाक्य को काव्य कहते हैं । इस काव्य के लक्षण वाक्य को उठा के खण्डन किया है । किञ्च कृष्णदास कविराज ने जो कि सनातन गोस्वामी आदि के साथ

रहा करते थे, अपने बनाये चैतन्य चरितामृत के अन्तिमखण्ड के प्रथम परिच्छेद में साहित्य दर्पण के प्रमाण उठाये हैं।

विश्वनाथ कविराज के रचित ग्रन्थों के नाम यथा—चन्द्रकला, प्रभावती, कुवलयाश्वचरित, परिणयराघवविलास, षोड़श भाषाओं में प्रशस्ति रत्नावली और साहित्यदर्पण * निम्न लिखित नामवालेपण्डितों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में नहीं हो सका। उदयनाचार्य † चण्डीदास, चन्द्रशेखर, धर्मदत्त, नारायण, महिमभट्ट, राघवानन्द, रुद्रट, वक्रोक्ति-जीवितकार, वाचस्पति मिश्र ‡ व्यक्तिविवेकार और श्रीमल्लोनचकार। साहित्य दर्पण में इन के नाम मिलते हैं।

विष्णुपुरी।

इन ने विष्णुभक्तिरत्नावली सङ्कलित की है। इन के शिष्य व्यासतीर्थ और उन के भी शिष्य माधवेन्द्र पुरी थे। वैष्णवीवन्दना में महाप्रभु के पार्षदों में ये गिनाये गये हैं।

माधवेन्द्रपुरी।

चौदहवीं शताब्दी के पूर्व में ये वर्तमान थे और इन के प्रेम परिपूर्ण आशयोपनिबद्ध जितने श्लोक श्री चैतन्यचरितामृत में संगृहीत हुए हैं; उन के पढ़ने से मन रोके नहीं रुकता, मोहित हो जाता है। उन में से एक यथा—

अयिदीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

अर्थात्—ऐ दीनों पर दयालु नाथ मथुरानाथ प्यारे! मुझे कब दिखाई दोगे तुम्हारे देखे विना मेरा मन व्याकुल तड़फता है। अहो मैं क्या करूं?

---

* कोई २ कहते हैं कि मृगांकलेखा नाम नाटक इन्हीं ने बनाया है। देखो; काव्य-दीपिका पर अङ्गरेजी में लिखी भूमिका का १४ पृष्ठ।

† इन ने कुसुमाञ्जलि और आत्मतत्वविवेक आदि ग्रन्थ रचे हैं। इन की बनाई चतुःशिखी के बचन को प्रसंग पड़े पर श्रीहर्ष ने खण्डनखण्डखाद्य मे उठाया है। ये भरद्वाज-गोत्रज थे और उद्योतकर, उदयकर वा उदय इन नामों से भी प्रसिद्ध हैं।

‡ इन ने न्याय आदिक अनेक शास्त्रों की टीका और व्यवहार चिन्तामणि आदि ग्रन्थ बनाये हैं। कोलब्रुक् महाशय कहते हैं कि वाचस्पति मिश्र तिरहुत के 'सेमौल' नामक ग्राम में रहते थे। इन के जीवनकाल से अनन्तर आजतक दश वा बारह पीढ़ी से अधिक पीढ़ी नहीं बीती है। देखो, व्यवहार दर्पण प्रथम खण्ड की भूमिका का ॥) पृष्ठ।

ईश्वरपुरी ।

यह माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे और महाप्रभु ने इन को मंत्रदाता (कनफूंके गुरु) रूप से वरण किया है। इस का वर्णन चैतन्य चरितामृत के प्रथम खण्ड के सत्रहवें परिच्छेद में है । इन के बनाये कई श्लोक पद्यावली में सङ्गृहीत हैं । उन में से एक यथा—

" कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रोच्यमानम् ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये कृष्णनाम ॥ "

अर्थात्

निधी कल्याणों की कलिमलहरी पावन बड़ी
गली में मुक्ती की गँथ सपदि मोक्ष प्रद वदी ।
भले जाते जीवैं बयन सचुपावैं सुकवि की
सुकृष्णाख्या धर्मद्रुमजननि रौरे भल करै ॥

रघुपति उपाध्याय ।

ये चौदहवीं शताब्दी में वर्तमान थे। श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रयाग में इन की भेंट हुई थी । ये तिरहुत के रहवैये थे । श्री चैतन्य चरितामृत के मध्यमखण्ड के उन्नीसवें परिच्छेद में इन की भेंट का वृत्तान्त लिखा है । इन का रचित एक श्लोक यथा—

" श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः ।
अहमिहनन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परम्ब्रह्म ॥ "

अर्थात्—' कोउ श्रुति कोउ स्मृति गहहु, कोउ भारत भवभयभीत ।
वन्दौं नन्दहिं खेलते, जासु पौरि गोऽतीत ' ॥

पद्यावली में भी ठौर २ इन के श्लोक संगृहीत हैं ।

कवि रामचन्द्र ।

इन ने ' गोपाल लीला ' नाम काव्य बनाया है । संवत् १५४० अर्थात् शक १४०५ में यह काव्य बना * ।

---

* The Pandit Vol. VI No. 65 p. 109.

श्री श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु * ।

जगत् के अज्ञान अन्धकार दूर करने के हेतु ये नवद्वीप (नदिया) नगर रूपी उदयाचल में सूर्य सदृश उदय हुए । श्रीचैतन्यचरितामृत में लिखा है कि ये संवत् १४०७ शक में प्रकट हुए। इन की जन्मतिथि के ख्यापन में जो बंगाली बोली में पद्य हैं उन का उल्था यथा—

शाके चौदह सौ पर सात। नदिया बीच विश्व विख्यात॥
श्रीचैतन्य देव अवतारी। अड़तालीस बरीस बिहारी॥
शाके चौदह सौ पञ्चावन। अन्तर्द्धान भये जगपावन॥

वैष्णवों की मण्डली में पञ्चाङ्ग से उठाई इन के जन्मदिन की मास कुण्डली यों लिखी मिलती है—

और जन्मतिथि का चक्र यह है।

१	११	८
१५	५५	४०
४१	०	२३

* यद्यपि इन के पार्षदों में से कोई २ इन की अपेक्षा वयोज्येष्ठ थे तौभी अभ्यर्हितत्व (पूज्यत्व) से मैं ने इन का वर्णन औरों से आगे ही किया।

इस बात के प्रमाण का एक श्लोक भी है। यथा—

"शाके मुनिव्योमयुगेन्दु गणये शुभोदयः फाल्गुनपौर्णमास्याम्।
त्रैलोक्य भाग्योदयपुण्यकीर्तिः प्रभुः शचीनन्दन आविरासीत्॥"

अर्थात्—१४०७ शक की फाल्गुन पूर्णिमा को त्रैलोक्य के भाग्योदय के निमित्त पुनीत कीर्ति विस्तार करनेहारे धन्यजन्मा प्रभु चैतन्य देव शची नाम माता की कोख से उत्पन्न हुए।

महाप्रभु ने निज कोई ग्रन्थ नहीं रचा किन्तु आत्मानुभाव श्रीरूप गोस्वामी इत्यादि में ऐसा संचारित कर दिया कि उस के प्रकट प्रभाव से उन्हों ने भांति २ के ग्रन्थ बना डाले। जब कभी प्रेम के उमङ्ग में श्रीमुख से स्वरचित दो एक श्लोक लोगों को सुनाते थे उन के पढ़ने से काव्यरचना में ये कैसे पटु थे तिस का पूरा परिचय मिल जाता है। बानगी के लिये श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यम खण्ड के तीसरे परिच्छेद से उन का कहा एक श्लोक यहां उठाता हूं—

"न प्रेमगन्धोऽस्ति दरोऽपि मे हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलास्याननलोकनं विना बिभर्मि यत्प्राणपतंगकान्वृथा॥"

अर्थात्—

हरिसों नहिं तनिकहु अनुरागा। बिलखहुँ प्रकट न निज बड़ भागा॥
मुरली चारु बदन बिनु देखे। प्राणपखेरु जियहिं किहि लेखे॥

महाप्रभु ने किसी दिग्विजेता नाम कवि को अलङ्कार विद्या के शास्त्रार्थ में परास्त किया। तिस का वर्णन देखो; चैतन्यचरितामृत प्रथम खण्ड के सोलहवें परिच्छेद में लिखा है। जगन्नाथाष्टक जिस के कि प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में "जगन्नाथस्वामी नयनपथगामी भवतु मे" अर्थात् नयनन्ह मम दरश दीजै जगन्नाथ स्वामी ऐसा पठित है, इन्हीं का बनाया है। श्रीराधिकाजी के अष्टोत्तर शत नाम तिलक जो स्तोत्र विशेष है वह भी इन्हीं की कृति है। पद्यावली में "न जाने संमुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये। प्रयान्ति मम गात्राणि श्रोत्रतां किमुनेत्रताम्।" अर्थात्-जब प्रियतम सम्मुख आके प्रिय बचन बोलने लगता है, तब मेरे सर्वांग किधौं आंख किधौं कान हो जाते हैं अर्थात् उसे देखना और उस के वचन सुनना छोड़ और इन्द्रियों की वृत्ति की सुधि नहीं रहती है।

इस श्लोक को "श्रीयुक्तप्रभुपादानाम्" अर्थात् श्रीयुक्तमहाप्रभु का बनाया यह श्लोक है ऐसा कह के उठाया है। श्रीयुक्तप्रभुपाद से चैतन्य महाप्रभु ही अभिप्रेत हैं इन के बिना न्यारे किसी के मुख से कैसे ऐसा प्रेमपीयूष की चासनी से पगा श्लोक निकलता?

सार्वभौम भट्टाचार्य ।

चैतन्यमंगल नाम पुस्तक में इन का नाम वासुदेव लिखा है । ये धुरन्धर पण्डित थे । न्यायशास्त्र और अमरकोष पर भी इन ने अलग २ एक २ टीका लिखी है। सुनने में आता है * कि बंगाल के विख्यात धर्मशास्त्री रघुनन्दन भट्टाचार्य, प्रधान नैयायिक रघुनाथशिरोमणि, कृष्णानन्द 'हो न हो तन्त्रसार के रचयिता' ? और चैतन्य देव भी इन्हीं के शिष्य थे; पर इस का कुछ आधार किसी पुस्तक में नहीं मिला ।

इन ने चैतन्याष्टक रचा है उस के देखने से इन की कविता का पूरा परिचय मिलता है । चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड के छठें परिच्छेद में इन का वर्णन लिखा है।

अनुमान होता है कि कवि सार्वभौम नामक एक और भी मनुष्य थे और पद्यावली में जो एक श्लोक कवि सार्वभौम के नाम से उठाया है वह इन्हीं का रचित होगा। यथा—

"इदानीमंगमक्षालि रचितंचानुलेपनम् ।
इदानीमेव ते कृष्ण धूलीधूसरितं वपुः ॥"

अर्थात्

अभी तोहि नहला धुला, चन्दन चर्चित कीन्ह ।
बहुरि तुरत धुरमाटिली, काय कान्ह करि लीन्ह ॥

चैतन्यचरितामृत में बहुत से श्लोक सार्वभौम भट्टाचार्य के बनाये जान कर संगृहीत हुए हैं ।

" नाहं विप्रो नच नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी नच गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ॥"

अर्थात्—न मैं ब्राह्मण हूं। न क्षत्रिय हूं। न वैश्य हूं। न शूद्र हूं । न ब्रह्मचारी हूं। न गृहस्थ हूं। न वानप्रस्थ हूं। और न संन्यासी हूं । यदि पूछो ब्राह्मणादि नहीं हो तो तुम हो क्या ? तो उत्तर यह है कि पूरे परमानन्दरूपी अमृत से भरे पूर लेते समुद्र सदृश गोपीनाथ के चरणकमल युगल के दासों के सेवकों का अनुगामी टहलुआ मैं हूं ।

भवानन्द ।

हों न हों येही राय रामानन्द के पिता हैं। चैतन्यचरितामृत के अन्तिम

---

* व्यवस्थादर्पण ॥/)० पृष्ठ देखो।

खण्ड के नवें परिच्छेद में इन का नामोल्लेख है। निम्नलिखित श्लोक पद्यावली में भवानन्द कृत जानकर उठाया है—

" लावण्यामृतवन्यामधुरिमलहरीपरीपाकः ।
कारुण्यानां हृदये कपटकिशोरः परिस्फुरतु ॥"

अर्थात्—कपट से किशोरमूर्त्ति धारण किये श्रीकृष्ण सन्तों के दयार्द्र हृदय में अपना वह दिव्य दर्शन दें जिस दर्शन में लावण्यरूपी अमृत के बढ़ियार नदी माधुरी से सनी घनी लहरें लेती रहती है।

राय रामानन्द।

ये चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। चैतन्यचरितामृत मध्यखण्ड के आठवें परिच्छेद में इन का वर्णन है। दक्षिण में जो गोदावरी तीर जियाड़नृसिंह नाम तीर्थ है, वहां महाप्रभु के साथ इन का मिलाप हुआ था।

इन ने श्रीक्षेत्र के राजा प्रतापादित्य की आज्ञा से 'जगन्नाथ वल्लभ' नाम नाटक रचा। पद्यावली ग्रन्थ में राय रामानन्द के रचित कई एक श्लोकों को संग्रह किया मिलता है।

स्वरूप दामोदर।

नवद्वीप में ये सदा महाप्रभु के श्रीचरणसमीप रहते थे। जब कि महाप्रभु को संन्यास लेते देखा ; तब इन ने आप भी संन्यास ले लिया। परन्तु दण्डी संन्यासियों के अद्वैतवाद की ओर से तनिक भी प्रवण न थे। संन्यासी होने के पहिले इन का नाम पुरुषोत्तमाचार्य था। ये (नित्य) केवल श्रीकृष्ण के भजन आनन्दही में मग्न रहते थे। बड़े सरस और रसज्ञ थे। जब कभी कोई जन कोई नवीन ग्रन्थ आदि बना के महाप्रभु के पास ल्याता तो पहिले प्रभु इन्हीं को उस के गुण दोष की विवेचना के लिये देखने को देते थे। जब वे जांच लेते थे कि इस में कोई भद्दापन वा भदेसभाव नहीं है तब उसे महाप्रभु के श्रवणयोग्य ठहराते थे। इन ने कोई प्रसिद्ध काव्य बनाया है कि नहीं; सो हम नहीं जानते; परन्तु चैतन्यचरितामृत के मध्यखण्ड के दसवें परिच्छेद में इन की जैसी प्रशंसा लिखी है; उस से जाना जाता है कि ये महाशय अवश्यही काव्य-

कला में निपुण रहे होंगे। इन ने महाप्रभु की लीला के वर्णन में एक कड़चा * रचा था।

श्रीसनातन गोस्वामी।

ये श्रीचैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। चैतन्यचरितामृत मध्य-खण्ड के प्रथम परिच्छेद में इन का वृत्तान्त विस्तार से वर्णित है।

हरिभक्तिविलास † भागवतामृत, वैष्णवतोषणी, ये सब ग्रन्थ सनातन गोस्वामी के रचित हैं। मेघदूत पर इन ने तात्पर्यदीपका नाम टीका बनाई है ‡।

सनातन, रूप और वल्लभ इन तीनों गोसाइयों की पूर्व वंशावली का वर्णन यों लिखा मिलता है। कर्णाट देश के किसी राजा का नाम श्रीसर्वज्ञ था। वह भरद्वाज गोत्रज था। उस का पुत्र अनिरुद्ध देव हुआ। उस के दो रानियां थीं। उन में से एक से रूपेश्वर और दूसरी से हरिहर हुए। अनिरुद्धदेव अपने राज्य को दोनों पुत्रों में बांट के जब श्रीवृन्दावन धाम सिधारे; तब हरिहर अपने जेठे भाई को जिसे शास्त्राभ्यास का व्यसन था, राजकाज नहीं संभालता था, बरबस सिंहासन से उतार आप पूराराज्य करनेलगा। हृतराज्य रूपेश्वर आठ घुड़चढ़े सङ्ग लेके पूर्व देश में शिखरेश्वर नाम राजा के यहां जाके रहा। वहां कुछ काल पीछे उसे पद्मनाभ नाम एक पुत्र हुआ। उस ने नानाशास्त्रपारङ्गत हो सर्वत्र ख्याति पाई। कुछ दिन अनन्तर पद्मनाभ गङ्गातीरनिवास करने की इच्छा से शिखर राजा की राज्यभूमि छोड़ 'नयाहाटी' नाम ग्राम में आ बसा। क्रम से उस के अठारह बेटियां और पांच बेटे हुए। पांचों पुत्रों के नाम यथा-पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, नारायण, मुरारि और मुकुन्द। इन में से

---

* अक्षरार्थ तो इस का राजकर लिपि अथवा राजस्व का नियम विशेष है पर यहां विरुद (राजस्तुति) गीति का अर्थ देता है।

† हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थ पहिले सनातन गोस्वामी ने बनाया। तदन्तर गोपाल-भट्ट गोस्वामी ने उसे विस्तार पूर्वक लिखा। इस कारण से वह ग्रन्थ गोपालभट्ट गोस्वामी रचित ऐसा प्रसिद्ध है; परन्तु चैतन्यचरितामृत मध्यमखण्ड के प्रथम परिच्छेद में यह सनातन गोस्वामी का रचित है ऐसा लिखा है। यथा—

"हरि भक्तिविलास अरु भागवतअमृत। दशमपरटिप्पनिअरु दशमचरित॥
ये सब ग्रन्थ सनातन रचित।"

‡ देखो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर मुद्रित मेघदूत के विज्ञापन का ४ पृष्ठ।

मुकुन्द का एकलौता बेटा कुमार नाम हुआ। उस पर कोई अनिष्टापात हुआ। उस के दुःख से वह जन्मभूमि छोड़ बङ्गाल में आ बसा। उस के जितने पुत्र हुए उन में से तीन महा वैष्णव शिरोमणि जगत् उजागर हुए। तीनों के नाम ये हैं सनातन, रूप और वल्लभ ये तीनों जन भागवत आदि ग्रन्थों के तात्पर्य ग्रहण में अच्छा धंसे और परम भगवद्भक्त हुए। यहां तक कि ऐन्द्रियिक विषयों को विषतुल्य त्याग कर विरक्त निष्केवल कृष्णलीलारूपी अमृत के पान में प्रेम से मग्न मन रहा करते थे॥

श्रीरूप गोस्वामी।

ये सनातन गोस्वामी जी के मझिले भाई हैं। यथा जीव गोस्वामी ने लिखा है—

"सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीलसनातनः।
श्रीवल्लभोऽनुजोयस्य स रूपो जीवसद्गतिः॥"

अर्थात्—जिन के जेठे भाई सनातन मुनि के तुल्य श्रीसनातन गोस्वामी और लहुरे भाई श्री वल्लभगोस्वामी हैं; वे रूप गोस्वामी जीव गोस्वामी की अथवा जीव मात्र की उत्तम गति के हेतु हैं॥

चैतन्यचरितामृत के मध्यम और अन्तिम खण्ड में ठौर २ पर इन के चरित्र का वर्णन है। इन के बनाये ग्रन्थों के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

भक्तिरसामृतसिन्धु, विदग्धमाधव, ललितमाधव, उज्ज्वल नीलमणि, दानकेलिकौमुदी, स्तवावली, (यह गोविन्द विरुदावली और गीतावली इत्यादि कई एक पुस्तकों की गुटिका है) उत्कलिकावल्लरी, अष्टादश लीलाच्छन्द, नाटकचन्द्रिका, लघुभागवतामृत, हंसदूत, उद्धवसन्देश, पद्यावली, मथुरामाहात्म्य और मुक्ताचरित्र * तथा गोपीप्रेमामृत। इन में से जिस २ ग्रन्थ के निर्माण की जो २ मिति निर्दिष्ट है; उसे विशद करके लिखता हूं।

"नन्दसिन्धुरबाणेन्दुसंख्ये संवत्सरे गते।
विदग्धमाधवं नामनाटकं गोकुले कृतम्॥"

---

* वैष्णवतोषणी की समाप्ति में रूपगोस्वामीकृत पुस्तकों की जो नामवाली है, उस में इस का नाम नहीं मिलता तौ भी कर्णानन्दरस नाम ग्रन्थ में रूप गोस्वामीकृत इस ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। वृन्दावनधाम में मुक्ताफल का जन्म इस काव्य का वर्ण्य विषय है। इसी विषय में गौड़ भाषा में श्रीयुक्तदुर्गाप्रसाद भट्टाचार्य ने "मुक्तालतावली" नाम पोथी बनाई है।

अर्थात्—विक्रम संवत् १५८३ में गोकुल में बस के विदग्धमाधव नाम नाटक निर्माण किया।

" नन्दाङ्गवेदेन्दुमिते शकाब्दे शुक्रस्य मासस्य तिथौ चतुर्थ्याम्।
दिने दिनेशस्य हरिं प्रणम्य समापयं भद्रवने प्रबन्धम् ॥"

अर्थात्—१४६३ शक ज्येष्ठ की सौर चतुर्थी रविवार को भद्रवन में बस के हरि को प्रणाम करके मैंने यह पुस्तक रचना करके समाप्त की।

" रामाङ्गशक्रगणिते शाके गोकुलमधिष्ठितेनायम्।
भक्तिरसामृतसिन्धु र्विटङ्कितः क्षुद्ररूपेण ॥"

अर्थात्—१४६३ शक में गोकुल में बस के क्षुद्रजीव रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिन्धु नाम ग्रथ बनाया।

'गतेमनुशते शाके चन्द्रस्वरसमन्विते।'
नन्दीश्वरे निवसता भाणिकेयं विनिर्मिता ॥

अर्थात्—श्री रूपगोस्वामी ने नन्दीश्वर नाम ग्राम में निवास करके शाके १४७१ में 'दानकेलिकौमुदी' नाभाणिका * रची। उसी शकाब्द में उत्कलिकावल्लरी भी बनाई।

'चन्द्राद्रिभुवने शाके पौषे गोकुलवासिना।'
इयमुत्कलिकापूर्वा वल्लरी निर्मिता मया ॥

अर्थात्—१४७१ शक पौषमास में मैंने गोकुल में बस के यह उत्कलिका-वल्लरी विरची।

निम्न लिखित नामवाले कवियों के विषय में प्रस्तुत पुस्तक में अन्य कुछ विशेष वर्णन नहीं हो सका। पद्यावली में इन के नाम मिलते हैं। सारङ्ग, शुभाङ्ग, हर, दाक्षिणात्य, श्रीविष्णुपुरी † सर्वज्ञ, लक्ष्मीधर ‡ वैष्णव, व्यासपाद, नारद, कविरत्न, यादवेन्द्रपुरी, शारदाकार, पुरुषोत्तम-देव, औत्कल, सर्वानन्द, माधव सरस्वती, जगन्नाथसेन, माधव, कविचंद्र, भवानन्द, सुरोत्तमाचार्य, श्रीगर्भ, सर्वाभीष्ट, श्रीकर, गौड़ीय, मंगल,

---

* नाटिका विशेष। उस का लक्षण साहित्यदर्पण ४ परिच्छेद में देखो।

† विष्णुभक्ति रत्नावली इन को बनाई है। ये पहिले काशी में रहते थे। पीछे जगन्नाथ देव की आज्ञा से पुरी जगन्नाथ में जा बसे।

‡ अनुमान होता है कि ये भोजराज के पोते उदयादित्य के पुत्र थे। यदि यह सत्य है तो ये शाके १०२६ अर्थात् ११०४ खी० में वर्तमान रहे होंगे। धर्मशास्त्र विषयक कल्पतरु नाम ग्रन्थ इन्हीं का बनाया जान पड़ता है।

शिरोमौलि (शिवमौलि), श्रीहनुमत, * आगम, भुवन, श्रीगोविन्द मिश्र, दिवाकर, वांग, दीपक, कविसार्वभौम, वनमाली, मुकुन्द भट्टाचार्य, श्रीराङ्क (शङ्कर), श्रीमान् , योगेश्वर, केशवच्छत्री, सर्वविद्याविनोद भट्टाचार्य, बसुदेव, अभिनन्द, चिरञ्जीव, जयन्त, सञ्जय, कविशेखर, पुष्कराक्ष, (रव्य) गोविन्द भट्ट, दैत्यारि पण्डित, षाण्मासिक, कविराज मिश्र, स्वरूपसेनदेव, रुद्र (कङ्क), विश्वनाथ, अंगद, नाथदेव, वासव, मोटक, जगदानन्द राय, सूर्यदास, चक्रपाणि, हरिहर, माधव चक्रवर्ती, मनोहर, कर्णपूर, वाणीविलास, तैरभुक्त, रामचन्द्र दास, षष्ठीदास, हरिहर, कुमार, धन्य, हरिभट्ट, दशरथ, हरि, केशव भट्टाचार्य, त्रिविक्रम, क्षेमेन्द्र, भीम भट्ट, शान्तिकर, आनन्द, शम्भु, शचीपति, बीरसरस्वती, अपराजित, नील, पञ्चतंत्र, शुद्ध, अविलम्ब सरस्वती और योगेश्वर ।

प्रबोधानन्द सरस्वती ।

इन का नाम पहिले प्रकाशानन्द था । ये काशीवासी संन्यासियों में मुख्य थे । पहिले ये अद्वैत (माया) वाद मतानुगामी थे । पश्चात् श्रीचैतन्य महाप्रभु से शास्त्रार्थ में परास्त हो के वैष्णव मत में दीक्षा ली । चैतन्यचरितामृत मध्यम खण्ड चौवीसवें परिच्छेद में इन का ब्यौरेवार वर्णन है । चैतन्यचरितामृत नाम पुस्तक इन्हीं की वनाई है । शाके १६४५ अग्रहायण मास में इस ग्रन्थ पर श्रीश्यामकिशोर देव ने तिलक किया । यथा—

> " शाके बाणविधातृवक्त्ररसकुप्रोक्ते सहोमासके
> राकायां पुरुषोत्तमे सुरगुरोरानन्दिनः प्राचरत् ।
> श्रीमच्छ्यामकिशोरदेवमिषतश्चैतन्यचन्द्रामृत-
> ग्रन्थप्राकरणीसुबोधरसिकास्वादिन्यसौ टीकिका ॥ "

अर्थात्—वृहस्पति के तुल्य श्रीप्रबोधानन्द जी ने पुरुषोत्तमक्षेत्र में बसे । श्रीमान् श्यामकिशोर देव के मन में बैठ के उन के द्वारा शक १६४५ अगहन की पूर्णिमा को विशेष व्युत्पन्न रसिक जनों की रसीली लगती चैतन्यचन्द्रामृत नाम ग्रन्थ के प्रकरणार्थ का यथार्थ लगानेवाली यह छोटी सी टीका प्रचारित की ।

---

* श्री मद्भागवत पर हनुमद्भाष्य इन्हीं का बनाया बोध होता है ।

गोपाल भट्ट गोस्वामी ।

ये द्राविड़ ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम वेङ्कट भट्ट था । इन ने महाप्रभु से मन्त्र लिया। चैतन्यचरितामृत मध्य खण्ड के नवें परिच्छेद में और कर्णानन्द रस नाम ग्रन्थ के छठें निर्यास (गोद) में इन के चरित्र वर्णित हैं ।

गोस्वामी गोपाल भट्ट ने कृष्णकर्णामृत पर टीका और वृन्दाबन यमक नाम काव्य रचा। टीका के मंगलाचरण यथा—

" चूड़ाचुम्बितचारुचन्द्रकचमत्कारव्रजभ्राजितं
दिव्यं मंजुमरन्दपङ्कजमुखभ्रूनृत्यदिन्दिन्दिरम् ।
रज्यद्वेणुकमूलरोकविलसद्बिम्बाधरौष्ठं मुहुः
श्रीवृन्दावनकुंजकेलिललितं राधाप्रियं प्रीणये ॥ "

अर्थात्—श्रीवृंदावन के निकुंजों में लीलाविलास करने में सुभग सुहावन राधा के मनभावन की आराधना मैं करता हूं। कैसे हैं राधा प्रिय! माथे में जो मोरपंख बांधे हैं, उस के सुन्दर चन्द्रकों से अति अद्भुत शोभा जिन की हो रही है और सरस मंजुल जिन के मुखरूपी कमल पर भ्रमर समान भृकुटि भ्रमण कर रही है। दोनों हाथों में शोभमान वंशी को पर्यन्त के छिद्रों पर जो विम्बसदृश रक्तवर्ण अपने ओष्ठों का अर्पण कर के वार २ मधुरध्वनि से वजा रहे हैं ।

और ' कृष्णकर्णामृतेऽप्येतां टीकां श्रीकृष्णवल्लभाम् ।
गोपालभट्टः कुरुते द्राविड़ावनिनिर्जरः ॥ '

अर्थात्—द्राविड़ देश का ब्राह्मण गोपालभट्ट कृष्णकर्णामृत पर श्रीकृष्णप्रिया नाम की यह टीका रचता है ।

इन के बनाये कई एक श्लोक पद्यावली में संगृहीत हुए हैं। उन्ही में का एक यह भी है। यथा—

" श्रुतमप्यौपनिषदं दूरे हरिकथामृतात् ।
यन्न सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकोद्गमाः ॥ "

अर्थात्—उपनिषदों के अर्थ सुनने से न चित्तद्रव, न तनुकम्प, न अश्रु और पुलकावलि होती है । इस से सूचित होता है कि उन का वर्ण्यविषय रूखा सा होगा। हरिकथा रूपी अमृत के पान से ये सब बातें अदबदा के उत्पन्न होती हैं। तिस से निश्चय होता है कि उन का वर्ण्यविषय सरस है ।

हरिभक्त विलास भी इन की बनाई पुस्तकों में प्रसिद्ध है। इन्हें छोड़ षट सन्दर्भ भी इन्ही की कृति हैं। राधारमण गोस्वामी ने भागवत् पर

'दीपिकादीपक' नाम जो व्याख्यान ग्रन्थ लिखा; उस के ग्यारहवें स्कन्ध के आरम्भ का श्लोक यह है—

" श्रीचैतन्यं प्रपद्येऽहं सार्थैतं रसनित्यकम् ।
श्रीमद्गोपालभट्टञ्च षट्सन्दर्भ प्रकाशकम् ॥ "

अर्थात्—अनुग्रावन कर भक्तिपथ दरसाने निमित्त भक्तों के समूह में आमिले, श्रीचैतन्य देव के जिन में रस सदा निवास करता है मैं शरणागत हूं। षट्सन्दर्भ ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीमान् गोपालभट्ट के भी मैं शरणागत हूं।

रघुनाथभट्ट गोस्वामी ।

ये काशी निवासी तपनमिश्र के पुत्र हैं। महाप्रभु के साथ इन के भेंट का वर्णन चैतन्यचरितामृत अन्त्य खंड के तेरहवें परिच्छेद में है। यद्यपि इन की बनाई कोई पुस्तक आदि आज तक मेरी दृष्टितले नहीं पड़ी तौ भी ये ग्रन्थ बनाना नहीं जानते हों यह वात मन नहीं बोलता क्योंकि चैतन्यचरितामृत में इन की वड़ाई जो लिखी है, उस का उल्था नीचे किया जाता है—

काव्यप्रकाशपढ़ावहीं, सकलशास्त्रपरवीन ।
वैष्णववर रघुनाथ रघु- नाथ भजनलयलीन ॥

गोस्वामी रघुनाथदास ।

ये त्रिवेणी के निकट सप्तग्राम के निवासी थे। ये विभव विलास त्याग करके वैरागी हो गये। चैतन्यचरितामृत अन्त्य खण्ड के छठें परिच्छेद में इन का चरित्र वर्णित है।

स्तवावली, मनःशिक्षा और मुक्ताचरित्र नाम काव्य इन के बनाये हैं। पद्यावली ग्रन्थ में भी इन के बनाये कुछ श्लोक सङ्गृहीत हैं। उन में से यह एक है,

" काननं क्व नयनं क्व नासिका क्व श्रुतिः क्व च शिखेति कोलितः ।
तत्र तत्र निहिताङ्गुलीदलो वल्लवीकुलमनन्दयत्प्रभुः ॥ "

अर्थात्—श्री बालकृष्ण प्रभु से गोपियां पूछती थीं कि मुह कहां है? आंख कहां है? नाक कहां है? कान कहां है? चोटी कहां है? यों खेल देखने के लिये जिस अङ्ग को वे पूछती थीं वे उसी अंग पर पल्लव तुल्य मृदुल अंगुली धरकर बतला देते थे। उस से गोपियां आनन्दित होती थीं।

चैतन्यस्तवक कल्पवृक्ष भी इन ने रचा है। उस के कुछ श्लोक चैतन्यचरितामृत में कहीं २ उठा के लिखे हैं।

श्रीजीवगोस्वामी।

ये रूप और सनातन गोस्वामी के भतीजे हैं। अपने दोनों ताऊ की बनाई सब पुस्तकों की व्याख्या इन ने की है। आप भी ये नाना ग्रन्थों के प्रणेता हैं। इन के रचित ग्रन्थों में भागवतसन्दर्भ, गोपालचम्पू और हरिनामामृत व्याकरण ये तीन ग्रन्थ विशेष प्रचलित हैं।

गोपालचम्पू संवत् १६४५ अर्थात् शाके १५१० में बना। यथा—

" संवत्पञ्चकवेदषोडशयुतं शाकं दशेष्वेकभा-
ग्जातं तर्हि तदाखिलं विलिखिता गोपालचम्पूरियम्।
वृन्दाकाननमाश्रितेन लघुना जीवेन केनापि त-
द्वृन्दाकाननमेव * संहतिकलां धत्तां समन्तादिह ॥"

अर्थात्—जीव नामक किसी क्षुद्र जीव ने संवत १६४५ शक १५१० में वृन्दावन में बस के यह जो गोपालचम्पू निर्माण की वह वृन्दावन तुल्य सब ओर सङ्गसः कला धारण करे।

इन ग्रन्थों के बना चुकने पर जीवगोस्वामी ने गोपालविरुदावली नाम पुस्तक बनाई।

कवि कर्णपूर।

इन का मूल नाम परमानन्द दास है। चैतन्य महाप्रभु इन्हें पुरीदास कह के पुकारते थे। इन के बाप का नाम शिवानन्द सेन था। इन का जन्म १४४६ शक में हुआ। नवद्वीप मण्डलान्तर्वर्त्ती काचड़ापाड़ा नाम गांव में आजलों इन के वंशज सन्तान विद्यमान हैं। सातवें वर्ष की वय में महाप्रभु के चरण के अंगूठे को मुख में डाल कर चूसा था; उसी के प्रभाव से ये अद्भुत कवित्वशक्ति सम्पन्न हुए। उसी अवस्था में इन ने जो श्लोक बना के पढ़ा वह नीचे दर्साया जाता है—

" श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥ "

अर्थात्—वृन्दावन बासी बनिताओं के कानों में नील कुमुद सदृश, आंखों में अंजन मंजुल, वक्षःस्थल में महेन्द्र नीलमणि की माला तुल्य लगते उन स्त्रियों के समग्र भूषण का काम देते हुए श्रीकृष्णचन्द्र का जय जयकार है।

---

* यह एव पद इव पद का अर्थ देता है।

इस श्लोक में व्रजबालाओं के कर्णभूषण का वर्णन पहिले आया है, तिसी उपलक्ष से स्वयं महाप्रभु ने इन्हें कवि 'कर्णपूर' ऐसी प्रसिद्ध्यर्थ उपाधि दी। इस विषय का विशेष वर्णन चैतन्यचरितामृत अन्तिम खण्ड के सोलहवें परिच्छेद में लिखा है।

इन के रचित ग्रन्थों के नाम ये हैं—

आर्याशतक * चैतन्यचरितामृत, चैतन्यचन्द्रोदय नाटक, आनन्द वृन्दावनचम्पू, कृष्णलीलोद्देशदीपिका, गौरगणोद्देशदीपिका और अलङ्कार-कौस्तुभ॥

इन में से जिस २ पुस्तक की जो २ मिति निर्दिष्ट है उसे नीचे लिखता हूं।

"वेदा रसाः श्रुतय इन्दुरिति प्रसिद्धे शाके तथा खलुशुचौ सुभगे च मासि।
वारे सुधा किरणनाम्न्यसितद्वितीयातिथ्यन्तरे परिसमाप्तिरभूदमुष्य॥"

अर्थात्—शके १४६४ ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष द्वितीया तिथि सोमवार को चैतन्यचरितामृत बनकर सम्पूर्ण भया।

शक १४६४ में चैतन्यचन्द्रोदय नाटक निर्माण हुआ। यथा—

"शाकेचतुर्दशशते रविवाजियुक्ते गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।
तस्मिँश्चतुर्नवतिभाजितदीयलीलाग्रन्थोऽयमाविरभव त्कतमस्यवक्त्रात्॥"

अर्थात्— १४०७ शक में गौरहरि (चैतन्यदेव) पृथ्वी में अवतीर्ण हुए और १४९४ शक में उन की लीलावर्णनात्मक यह ग्रन्थ किसी के मुख से कथित भया॥

ये ग्रन्थकर्त्ता हो के जिन दिनों ग्रन्थ बनाने लगे, उन्हीं दिनों महाप्रभु अन्तर्द्धान हो गये थे। इस कारण सुबन्धु ने जैसे बासवदत्ता के आरम्भ में विक्रमादित्य के वियोग से हाय किया है; वैसेही इन ने भी आनन्द वृन्दावन चम्पू के आरम्भ में महाप्रभु के वियोग की आह मारी है। वह शोकसूचक श्लोक यथा—

"गतेस्व स्वाभीष्टं पदमहह चैतन्य भगवत्-
परीवारे पश्चाद्गतवति च तस्मिन्निजपदम्।
विलुप्ता वैदग्धी प्रणयरसरीतिर्विगलिता
निरालम्बो जातः सुकविकवितायाः परिमलः॥"

अर्थात्—भगवान् चैतन्य देव के परिवार में से जिस का जिस लोक

---

* पहिले पहिल इन ने यही पुस्तक बनाई। उस के आरम्भ का 'श्रवसोः कुवलयम्' इत्यादि प्रतीकवाला श्लोक ऊपर दर्साया जा चुका है।

में जाने का अभिलाष था, वह उस लोक को चला गया। तत्पश्चात् वे आप भी निज धाम सिधारे। अहो! अब विद्वत्ता में परिपक्वता जगत् से उड़ गई। प्रीति जनित सुख की धारा रुक गई और सत्कवि की कविता रूपी पुष्प के आमोद का रसिक कोई न रहा।

कोई २ आनन्द वृंदावन चम्पू को रूप गोस्वामी का विरचित बतलाते हैं; पर यह उन की भूल है। जान पड़ता है कि उन्हों ने उस ग्रन्थ को अन्ततः उस के इस श्लोक को भी न देखा होगा।

" चैतन्यकृष्णकरुणानिधि वाग्विभूति-
स्तन्मात्रजीवनधनस्य जनस्य पुत्रः।
श्रीनाथपादकमल स्मृतिशुद्धबुद्धि-
श्चम्पूमिमां रचितवान् कविकर्णपूरः॥ "

अर्थात्—मेरे पिता के प्राणधन श्रीकृष्ण ही थे। मेरी भी उन्हीं के चरण कमलों के ध्यान से बुद्धि शुद्धि भई है। श्रीकृष्ण के अवतार चैतन्य-देव की दया से वचनरचनाशक्ति मुझे प्राप्त भई है। मेरा नाम कर्णपूर कवि है। मैंने यह चम्पू बनाई है।

कृष्णदास कविराज।

ये रूप सनातन आदि गोस्वामियों के समसामयिक थे। बंगाली बोली में निज रचित चैतन्यचरितामृत के बीच इस बात की सूचना वे आप देते हैं। उस सूचना का उलथा यह है।

जय यय नित्यानन्द जय कृपामय। जाते हम पाइय रूप सनातन आश्रय॥
जाते हम पाइय रघुनाथ महाशय। जाते हम पाइय श्रीस्वरूप आश्रय॥
पाइ सनातन कृपा हम पाइय भक्तिसार। श्रीरूपकृपागुण हम पाइय रसपार॥

इनने अपने बनाये ग्रन्थ में मिति का यों निर्देश किया है—

" शाके सिन्ध्वग्निबाणेन्दौ ज्येष्ठे वृन्दावनान्तरे।
सूर्याह्वेऽसितपञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥ "

अर्थात्—१५२७ शक ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी रविवार को यह ग्रन्थ वृन्दावन में बन के सम्पूर्ण भया।

इन का निर्माण किया 'गोविन्द लीलामृत' नाम एक संस्कृत ग्रन्थ है; उस के पढ़ने से इन की कविताशक्ति समीचीन रूप से परिचित होती है। कृष्णकर्णामृत पर इन ने भी एक तिलक किया है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"कृपासुधासरिद्यस्य विश्वमापूरयत्यपि ।
नीचगैव सदा भाति तं श्रीचैतन्यमाश्रये ॥"

अर्थात्--जिन की कृपा रूपी नदी जगत् भर को भर देती है और सदा प्रवण (नम्र) ही की ओर ढुलती है उन श्रीचैतन्यदेव के शरणागत मैं हूं।

दूसरे कवि कर्णपूर।

ये विद्याविनोद नाम वैद्य विशारद के पुत्र थे। जान पड़ता है कि शक १५०० के कुछ अनन्तर इन का अभ्युदय हुआ।

कविचन्द्र*।

ये ऊपर लिखे दूसरे कवि कर्णपूर के पुत्र हैं। इन ने शक १५८३ में रत्नावली नाम एक वैद्यक का ग्रन्थ रचा। उस में वे अपने घर, घराने की यह पहिचान देते हैं।

आसीद्वैद्यविशारदः सुरधुनीतीरे सुधीरे परे
श्रीमद्दत्तकुलाब्जभास्करकरो गाम्भीर्यधैर्याकरः।
हिण्डीरस्फुटपुण्डरीकपटलीकर्पूरपूरस्फुरत्-
कीर्तिः काव्यविचारचारुचतुरो विद्याविनोदाह्वयः॥
तत्सूनुः कविकर्णपूरसुकृती नानागुणालंकृत-
स्तज्जातः कविचन्द्र एष सुधियो वैद्यानिदं याचते।
नानातन्त्रकवीन्द्रसंग्रहगणं संवीक्ष्य यल्लिख्यते
तत्रास्तां भवतां सतां मतिमतां धीरावधानच्छटा॥
संगृह्य ग्रन्थसिन्धोर्गुरुकुलकृपया साररत्नानि यत्नै-
रम्या रत्नावलीयं विमलगुणवती गुम्फ्यते ऽस्माभिरेका।
सा सद्वर्णावकीर्णा रुचिरतरपदा सम्यगर्थैरुपेता
राज्ञामाज्ञारतानां सदसि निवसतां राजतां चारुकण्ठे॥"

अर्थात्—कविता के विचार में अच्छे चतुर, धीरता और गम्भीरता के निधान श्रीयुत दत्तों के वंशरूपी कमल वन के लिये सूर्य के किरण

---

* रत्नगर्भ के पुत्र और भी कविचन्द्र हुए हैं; जो चैतन्य देव के समसामयिक थे। देखो; चैतन्य भागवत द्वितीय खण्ड का प्रथम अध्याय। चैतन्य से चलित परम्परा के छपाकार लिखे चित्रपट्ट में कविचन्द्र का नाम मिलता है।

सदृश सुखद विद्याविनोद नाम विशारद वैद्य गंगातीर अति एकान्त स्थान में निवास करते थे । उन की कीर्त्ति पालों, खिले श्वेत कमलों के समूहों और बहती कर्पूर धारा के सदृश स्वच्छ अवदात है । उन के पुत्र नाना गुणगणों से भूषित, पुण्यात्मा कवि कर्णपूर हुए । उन का पुत्र मैं कविचन्द्र हूं । वैद्यों से यह विनती करता हूं कि अनेक वैद्यक ग्रन्थों और बड़े २ ग्रन्थकारों के संकलित संग्रहों का अवलोकन कर के यह ग्रन्थ रचता हूं । आप सब सज्जन बुद्धिमानों का इस पर धैर्य पूर्वक ध्यान बना रहे । गुरु कुल में निवास की वेला सेवा से प्रसन्न हो के गुरु ने कृपा की उसी के प्रभाव से समुद्र के रत्न सञ्चय के तुल्य नाना ग्रन्थों के सारांश बड़े यत्न से संग्रह कर के हम यह एक निर्मल * गुणवती रमणीय रत्नावली (रत्नमाला) ग्रथित करते हैं । इस में वर्ण † बहुत अच्छे और पद ‡ भी अति रुचिर विन्यस्त हैं । इस में ¶ अर्थ भी पुष्ट हैं । जो राजाओं की सभा में नियुक्त और उन की आज्ञा पालन में तत्पर रहते हैं वे अपने कण्ठ में इसे धारण करें । इस से शोभा होगी ।

और

"गङ्गातरङ्गलसदङ्गविहङ्गभृङ्गरङ्गस्फुरत्सततगुञ्जितमञ्जुकुञ्जे ।
दीर्घाङ्गनामनगरे कृतगुम्फनोऽयं ग्रन्थः कृशानुवसुवाणशशाङ्कशाके ॥"

अर्थात्– गङ्गा के तरङ्गों में सुन्दर किलोल करते पक्षियों के चहचहे और भौंरों के निरन्तर गुञ्जार से मंजु निकुञ्ज पुञ्जवाले दीर्घाङ्ग नाम नगर में १५८३ शक में यह ग्रन्थ निर्मित भया ।

इन ने एक और भी "रामचन्द्रचम्पू" नाम पुस्तक रची है ।

कविवल्लभ + ।

ये ऊपर उक्त कवि चन्द्र के पुत्र हैं । यह बात रत्नावली के उपोद्घात में लिखी है ।

" ग्रन्थस्य ग्रथनश्रमेण गुरुणा यद्द्रव्यमुद्भाव्यते
तेन व्याधिमतां सतां शतशतं नश्यन्तु तास्ता रुजः ।

---

* माला के पक्ष में गुण = डोरा । † माला के पक्ष में वर्ण = रङ्ग ।

‡ माला के पक्ष में पद = फूंदना । ¶ माला के पक्ष में अर्थ = धन ।

+ कर्णानन्दरस में पूर्वोक्त प्रभु श्रीनिवासाचार्य के शिष्यों की नामावली में कवि कर्णपूर और कवि वल्लभ कविराज के नाम लिखे मिलते हैं । न जाने वे ही ये है वा दूसरे कोई ।

किञ्च प्रार्थनमस्मदीयमधिकं तेषां प्रसादोदयान्
मत्पुत्राः कविवल्लभप्रभृतयः कुर्वन्तु वंशोन्नतिम् ॥ "

अर्थात्—ग्रन्थ के बनाने के भारी श्रम से जो पुण्य लाभ होता है; वह व्याधियुक्त सज्जन विद्वानों की निज २ सैकड़ों व्याधियों का विनाश करे हमारी एक और यह प्रार्थना है कि सज्जनों के अनुग्रह के उदय से मेरे कवि वल्लभ आदि बेटे वंश की उन्नति करें।

घनश्याम दास।

इन ने 'गोविन्द रतिमञ्जरी' नाम पोथी बनाई है। इस ग्रन्थ में संस्कृत और बंगाली बोली में भी कृष्ण की लीला के वर्णनात्मक भजन हैं। ये आचार्य प्रभु के लहुरे पुत्र गोविन्द यति के शिष्य हैं।

" श्रीगोविन्दयतिं नत्वा श्रीचैतन्यरसप्रदम्।
श्रीकृष्णमनुसेवेऽहं गोविन्दरतिमञ्जरीम् ॥ "

अर्थात्—श्रीचैतन्य के सुखदायक श्रीगोविन्द यति को नमस्कार कर के श्रीकृष्ण के संबन्ध में; गोविन्दरतिमञ्जरी नाम ग्रंथ की रचना रूपी परिचर्या मैं करता हूं।

"सिन्धुर्विन्दुमहो प्रयच्छति नहि स्वैरी न धाराधरः
सङ्कल्पेन विना ददाति न कदाप्यल्पञ्च कल्पद्रुमः।
स्वच्छन्दोऽपि विधुः सुधावितरणे रात्रिं दिवापेक्षते
दाता कोऽपि न दृश्यते विनियमः श्रीगौरचन्द्रं विना ॥ "

अर्थात्—समुद्र भरा पड़ा है तो क्या भया? किसी को अपने से एक कणिका भर भी जल नहीं देता है। पानी वर्षाने में मेह स्वतन्त्र नहीं है। छाया में जाके मन में इष्ट वस्तु का संकल्प किये विना कल्पवृक्ष कदापि तनिक भी कुछ नहीं देता है। हां चन्द्र मांगे विना स्वच्छन्द अमृत किरण वितरण करता है पर रात ही में देता है। दिन में दान नहीं करता। यों बन्धेज रहित कोई उदार दानी दान देता नहीं दीखता है। बिना मांगे बन्धेज रहित; दान देनेवाले केवल श्रीगौरचन्द्रचैतन्यदेव ही हैं।

ये गोविन्द दास के पोते थे। विश्वनाथ चक्रवर्त्ती इन के तुल्यकालिक थे। इन के पिता का नाम दिव्यसिंह था। ऊपर उक्त 'गोविन्दरतिमंजरी' के दसवें श्लोक में लिखा है " श्रीवृन्दावनकेलिवर्णनविधौ श्रीदिव्य-

सिंहात्मजः" अर्थात्—श्रीवृन्दावन की केलि के वर्णन रूपी कार्य में श्री-दिव्य सिंह के पुत्र। ये दिव्य सिंह हरिकीर्तन के समय जो भजन विशेष कर के गाये जाते हैं; उन के रचायिता गोविन्द कविराज के पुत्र हैं।

कर्णानन्द रस छठें निर्यास में इस भांति लिखा है। यथा—

प्रभु * पदपद्म मरन्दमद, छाके गाढ़ मिलिन्द।
दिव्यसिंह कविराज हैं, जासु पिता गोविन्द † ॥

गोविन्द दास के रचित निरे संस्कृत के गद्य पद्य यद्यपि हम ने नहीं देखे तौभी ये अच्छे सहृदय कवि श्रेष्ठ थे। यह अवश्यही प्रतीति के योग्य है; क्योंकि यदि ये तादृश न होते तो इन की कवीन्द्र पदवी न होती। सुनते हैं कि बसन्त राय ने इन के बनाये कितने श्लोक लिख श्रीवृन्दा-वन धाम में श्रीजीव गोस्वामी के संमुख ल्याके धरे; उन्हें उन गोस्वामी के सेवक वैष्णवों ने पढ़ा और प्रसन्न होके गोविन्द को कवीन्द्र की उपाधि दी। कर्णानन्द के छठें निर्यास में जो चीठी है उस में का श्लोक यह है—

"श्रीगोविन्दकवीन्द्रचन्दनगिरेश्वश्वद्वसन्तानिले-
नानीतः कवितावलीपरिमलः कृष्णेन्दुसम्बन्धभाक्।
श्रीमज्जीवसुरांघ्रिपाश्रयजुषो भृंगान्समुन्मादयन्
सर्वस्यापि चमत्कृतिं व्रजवने चक्रे किमन्यत्परम् ॥"

अर्थात्—कविवर श्रीगोविन्द चन्द्र रूपी मलयाचल से कविता रूपी सुगंध को बसंतराय रूपी बसंत ऋतु का पवन पा कर चल के श्रीकृष्ण-चन्द्र के धोरे ले आया श्रीमान जीव गोस्वामी रूप कल्पवृक्ष के आश्रित भक्त रूपी भृंगों को समीचीन रूप से उन्मत्त करते इस सुगंध ने व्रजवन में सभी को चमत्कृत कर दिया है। अब इस से बढ़कर और क्या होना चाहिये ?

वेणीदत्त।

इन के पिता का नाम जगज्जीवन था। ये शाहजहां बादशाह के हम जमाना थे। इन ने शके १५३९ अर्थात् खीष्टाब्द १६१७ ई० में 'पद्यवेणी' नाम एक पुस्तक संकलित की। उस में नाना कवियों और कवितानियों के बनाये पद्य संगृहीत हैं। उस में सुबन्धु का बनाया यह श्लोक उठाया है—

* यहां पर प्रभु शब्द से प्रभु श्रीनिवासाचार्य अभिप्रेत हैं क्योंकि ये उन्हीं के शिष्य थे।

† यह बङ्गाली का उल्था।

" अक्षमालाप्रवृत्तिज्ञा कुशासनपरिग्रहा।
ब्राह्मीव दौर्जनी संसद्वन्दनीया समेखला॥"

अर्थात्—दुर्जन मण्डली ब्रह्ममण्डली तुल्य माननीय है क्योंकि दोनों के पक्ष में अक्षमालापवृत्तिज्ञा, कुशासन परिग्रहा और समेखला ये तीनों विशेषण घटित होते हैं। देखो; इधर दुर्जन अक्षम असह्य, आलापवृतिज्ञ=वा व्यापार को जानते हैं। उधर ब्राह्मण लोग भी अक्ष=रुद्राक्ष की माला का अपवृत्तिज्ञ=फेरना जानते हैं। इधर दुर्जन कु=खोटे, शासन-शिक्षा का परिग्रह=ग्रहण करते हैं अथवा उन की परिग्रह=जोड़ू, कुशासन=कुशिक्षित होती हैं। उधर ब्राह्मण लोग कुशासन=कुश के आसन, परिग्रह=ग्रहण करते हैं। इधर दुर्जन समे=सीधे सूधे साधुजन के पक्ष में खला=खल होते हैं। उधर ब्राह्मण लोग भी समेखला=मेखला पहिनते हैं।

निम्न लिखित श्लोक गौरी नाम की किसी कवितानी स्त्री का बनाया जान के संगृहीत हुआ है।

" कालिन्दीयःति कज्जलीयति कलानाथाङ्कमालीयति
व्यालयित्याविमण्डलीयति मुहुः श्रीकण्ठ कण्ठीयति।
शैवाली यति कोकिलीयति महानीलाभ्रजालीयति
ब्रह्माण्डे रिपुदुर्यशस्तव नृपालङ्कारचूड़ामणे॥"

अर्थात्—हे राजाओं के शिरोभूषण मणि! आप के शत्रुओं की कुकीर्त्ति ब्रह्माण्ड में यमुना, कज्जलपुंज, चन्द्रकलंकरेखा, कालव्याल, भेड़ों के लेहँड़े और श्रीशम्भु के गले में गरल का काला चिन्ह, काले रंग के सिवार, कोकिल और घन घोर काली घन घटा इन सब पदार्थों के रूप में प्रतिभात होती है॥

इति तृतीय परिच्छेद समाप्त हुआ।

———

चतुर्थ वा अन्त्यकाल।

विश्वनाथ चक्रवर्ती।

मुर्शिदाबाद के नज़दीक मौज़अ सओदाबाद में ये पैदा हुए थे। ऐसा अनुमान होता है १५५० शक के कुछ इधर वा उधर जीवन्त थे क्योंकि इन ने भागवत पर सारार्थदर्शिनी नाम जो व्याख्या लिखी उस में आप कहा है कि मैं ने लोकनाथ स्वामी से शिक्षा पाई। यथा –

"प्रणम्य श्रीगुरुं भूयः श्रीकृष्णं करुणार्णवम्।
लोकनाथं जगच्चक्षुः श्रीशुकं तमुपाश्रये॥"

अर्थात्—प्रथम श्रीयुत जगत् की आंख खोलनेवाले लोकनाथ करुणामय श्रीकृष्णचन्द्र को प्रणाम कर के नामाङ्कित श्री शुकदेवजी का मैं शरण ग्रहण करता हूं।

किसी २ का कहना है कि इन ने नरोत्तम ठाकुर के भतीजे से दीक्षा ली थी, पर इस कहतूत का कोई पक्का मूल नहीं मिलता। सो जो कुछ हो, नरोत्तमठाकुर, श्रीनिवास आचार्य, श्यामानन्द आचार्य, लोकनाथ गोस्वामी, भूगर्भ गोस्वामी, रामचन्द्र कविराज ये सब जन समान समय में हुए हैं; इस में संदेह नहीं। वृन्दावन में जीवगोस्वामी और गोस्वामी गोपालभट्ट इत्यादिकों में से अनेकों से इन की भेंट भई थी। इन ने कृष्णलीला के वर्णन में 'भावरसामृत' नाम काव्य जो गोविन्दलीलामृत की छाया है बनाया। श्रीमद्भागवत, आनन्द वृन्दावन चम्पू और गोपाल तापनी आदि ग्रन्थों पर इन ने टीका भी बनाई है। तदतिरिक्त रागवर्त्मचंद्रिका, चमत्कारचंद्रिका, प्रेमसम्पुट, गौरगणोद्देशचंद्रिका, स्तवामृतलहरी, गोपीप्रेमामृत, माधुर्यकादम्बिनी आदि कितने एक और ग्रंथ निर्माण किये।

बलदेव विद्याभूषण।

ये ऊपर उक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य हैं। इन ने श्रीवृन्दावन में वास कर गोविंददेव के तुष्ट्यर्थ वेदांत सूत्रों पर गोविंदभाष्य नाम व्याख्या लिखी और रूप गोस्वामिकृत गोविंद विरुदावली पर भी टीका इन ने बनाई है।

राजधानी जयपुर में पच्छाहं के पण्डितों को शास्त्रार्थ में जीतकर इन ने उस के पुरस्कार में गौड़ देशवासी ब्राह्मणों का प्राचीनकाल से चला आया, गोविन्ददेव इत्यादि श्रीभगवन्मूर्ति की सेवकाई का पद जो उन दिनों उन सभों के हाथ से किसी कारण से निकल जाने चाहता था फिर यथापूर्वक बचा रखने पाया। इन ने एक और भी शुभनाम का काम किया; जिस से चैतन्यसम्प्रदाय के वैष्णवों के बीच ये विशेष आदरपात्र हुए वह कार्य यह था कि उसी स्थान में इन ने महाप्रभु की एक सेवा प्रकाशित की।

इन ने रूप गोस्वामी कृत उत्कलिकावल्लरी की एक टीका बना के शक १६८६ में समाप्त की। यह मिति उस टीका की समाप्ति में लिखी है। उस से सूचित होता है कि यह पुस्तक उन ने बुढ़ापे में बनाई होगी।

श्रीकृष्ण सार्वभौम।

ये नवद्वीप में रहते थे। वहां के राजा रामजीवन * की आज्ञा से इन ने 'पदांकदूत' नाम एक खण्डकाव्य रचा। यह काव्य शक १६४५ में बना; यह बात काव्य की समाप्ति के श्लोक से विदित होती है। यथा—

"शाके सायकवेदषोड़शमिते श्रीकृष्णशर्मार्पय-
आनन्दप्रदनन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविंदं हृदि।
चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतरचनं विद्वन्मनोरञ्जनं
श्रीलश्रीयुतरामजीवनमहाराजाधिराजादृतः॥"

अर्थात्—श्री श्रीयुत रामजीवन महाराज के आदरपात्र श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वहृदय देश में आनन्ददायक नन्दनन्दन के पदारविन्द द्वय के निवास निमित्त विद्वज्जन मनोरञ्जन कृष्णपदाङ्कदूत नाम काव्य १६४५ शक में निर्माण किया।

शान्तिपुर के गोस्वामी भट्टाचार्य आदिकों ने इस पदांकदूत के अलग २ तिलक किये हैं। नैयायिक पण्डित महाशय लोग इस काव्य को बड़े आदर से अपने पास रखते हैं।

श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार।

इन ने दायभाग, काव्यप्रकाश और श्राद्धविवेक पर जो टीका बनाई वे बंगाल भर में सादर परिगृहीत हैं। इन ने चन्द्रदूत नाम एक खण्डकाव्य रचा है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

---

* ये राजा कृष्णचन्द्र राय के बाबा थे।

"रामो रामाभिरामो रमितकरभरैरात्म रामाविरामा-
त्तप्तो मोमुह्यमानो झटिति वियति तं वीक्ष्यचन्द्रं तदीयैः।
सूरोऽयं वा स्मरो वा स्मररिपुरपि वा स्वर्मणिर्वा विभाति
प्राणेशीवक्त्रचन्द्रः किमु गगनचरस्तर्कयामास चैतत् ॥"

अर्थात्—स्त्रियों के नयनाभिराम राम अपनी प्यारी से विरहित किसी समय बैठे थे। उसी वेला आकाश में चन्द्र उदय भया। यद्यपि पहिले उस के अनन्त किरणनिकर से चैन मिलता था पर अब चन्द्रदर्शन से उलटा अनुभूत होने लगा कि तुरन्त तनु में इतना सन्ताप व्यापा जिस से वे सुधि नहीं सम्भाल सकते थे। उस से उन्हें भ्रम भया कि क्या यह सूर्य, स्मर अथवा स्मरवैरीशिव हैं किंबा मेरी प्राणप्यारी का मुखचन्द्र स्वर्ग का रत्नोपम हो के गगन में उदय तो नहीं हुआ है।

जान पड़ता है कि इन ने पदाङ्कदूत देख के उसी की छाया से "चन्द्र-दूत" रचा क्योंकि दोनों के भाव परस्पर मेलखाते हैं। देखो; चन्द्रदूत का ३७ वां श्लोक—

" भीतिश्चास्या मनसिजभवा मत्कथावारणीया
शब्देनापि क्षयमुपगता स्याद्विशेषस्य शङ्का ।
सामग्री चेत् फलविरहिणो नानुयोगः समन्तात्
को जानीते विधुरितमहाभाव मादीश्वरस्य ॥"

अर्थात्—मेरी मदनबाधा की चर्चा उस के साम्हने मत चलाइयो। क्योंकि उस के मन में अबलों जो भावी कुशल की आशा लगी होगी वह आप के आप्तवाक्य से मद्विषयक अस्वास्थ्य श्रवण करके फिर स्वास्थ्य की प्रत्याशा न उदय होने के कारण संभव है उच्छेद को प्राप्त हो जावे जिस से मुझे उस के और प्राणधारण में जोखिम जान पड़ता है। ईश्वर परित्राण करेगा; इस भरोसे से उपत करके बरवस अनर्थोत्पादन की सामग्री न जुटा लेना चाहिये क्योंकि कार्य के उत्पन्न होने में जितने कारण अपेक्षित होते हैं; उन की सामग्री को जब जीव निज प्रयत्न से सम्पादित कर चुकता है; तब कार्य के उत्पन्न कर देने में विधाता रंचक भी विलम्ब नहीं करता है। फल चाहे उत्तम हो अथवा मन्द हो। देखिये; आप जब मेरी उस प्राणप्यारी के प्राणसहार का कारणरूप मेरी विरहबाधा का समाचार सुना दें और उस से वह घबड़ा के निज प्राण त्यज दे तो मैं क्या करूंगा ? क्या ईश्वर से पूछना होगा कि मेरी प्यारी का प्राण परित्राण उस ने क्यों नहीं किया ? न परित्राण करने का दोषारोप भी

भगवान पर नहीं हो सकता। कारण; वह अपने किसी स्वार्थ की अभि-सन्धि से किसी का भला वा अनभला नहीं करता है। यदि उस में उस का कुछ स्वार्थ नहीं है तो प्रवृत्त काहे को होता है? इस शंका का समाधान यह है कि स्वार्थ ही प्रवर्त्तक नहीं माना जाता अपितु न्याय और परार्थ भी प्रवर्त्तक होते हैं। अनादिकाल से ईश्वर जीवों के जैसे २ पुण्य पाप देखता जीवों की ही भलाई के लिये न्यायानुसार कारणों के इकट्ठे होने पर प्रतिफल उत्पन्न करदेता है। स्वार्थशून्य जगदीश्वर के मन में कब कैसे अदृष्ट को फलीभूत करना अभिप्रेत है तिस का उसी को छोड़ दूसरे को परिज्ञान प्राप्त नहीं है। संभव है सम्प्रति हम दोनों प्रेमीजनों का अदृष्ट खोटा आ जुटा हो। अतः मेरी प्यारी के निकट मेरी बिरहवेदना का आवेदन अनावश्यक है।

पदाङ्कदूत के "सामग्री चेन्नफल विरह" इत्यादि प्रतीकवाले २१ वें श्लोक की और पुनश्च चन्द्रदूत का ४३ वां श्लोक—

"श्रुत्वात्त्वत्तः सहितवचनं यद्रिपौ क्वापि नास्ते-
नाम्ना प्रेम्णा सहजहितता वेदनीया न तत्त्वम्।
व्याप्त्यज्ञाने यदि कथमपि व्यापिनौ न प्रसिद्धि-
र्व्याप्याज्ञानं न भवतितरां व्यापकाभावसिद्धौ॥"

अर्थात्—न तुम्हारा कोई मित्र है, न शत्रु है, तथापि तुम्हारे प्रेममय हित वचन सुन के तुम्हें स्वभाव से सर्वहित निरे नाम मात्र के लिये कह सकते हैं। यथार्थ में तुम्हारा सर्वहितत्व उस से सिद्ध मानलें यह कोई बात नहीं है; क्योंकि जैसे वह्नि की धूम पर व्याप्ति का अभिज्ञान जिसे नहीं है; उसे वह्नि की धूम पर व्यापकता का भी परिचय नहीं रहता है और जब व्यापकता का परिचय नहीं है; तब वह्नि से धूम की व्याप्यता का बोध सर्वथा अनहोना है। एतादृश निर्बोध जन के मन में धूम से वह्नि का अनुमान नहीं होता है। यों ही जीवों पर तुम्हारे सर्वहितत्व की तुम्हारे हित वचनमात्र पर व्याप्ति का परिचय हमें नहीं है। उस के परिचय के लिये भूयोदर्शन की अपेक्षा है। अतः सर्वहितत्व की व्यापकता का बोध उदय नहीं होता है। सुतराम् हित वचन की व्याप्यता की भी प्रतीति नहीं उपजती है। फिर तुम्हारे हित वचन मात्र से कोरा तर्क कर के हम तुम्हारे सर्वहितत्व का निश्चयात्मक परिज्ञान क्यों कर प्राप्त कर सकें?

पदाङ्कदूत के "व्याप्याज्ञानाद्व्रजकुलभुवां व्याप्यकस्यापिसिद्धौ" इत्यादि प्रतीकवाले २१ वें श्लोक की छाया है।

लम्बोदर वैद्य ।

इन ने राजा जगद्दुर्लभ के सभासद् के पद पर आरूढ़ रहके "गोपीदूत" नामक खण्डकाव्य बनाया है । उस में ये अपनी पहिचान के लिये यह श्लोक लिखते हैं—

"आसीद्भूमिपुरन्दरो नरवरः श्रीराघवः क्ष्मातले
ख्यातोदेवनदीतटेऽयमकरोद्दीनेन शून्यां महीम् ।
तस्यासौनृपवासुदेवतनयः सत्कीर्ति...राग्रणी
स्तस्मात् श्रील.........नरपतिर्जातोजगद्दुर्लभः ॥
सोऽयं गीर्वाणनारीगणकलितयशोराशिरासीनभूमी
देवश्रौत्याशिषा च स्वयमनुभवते तत्फलं यत्त्वलभ्यम् ।
तस्यैवायं सभास्थोऽभिनवकवितया वैद्यलम्बोदरः सत्-
काव्यं भव्यं यथावत् परिणति कुरुते गोपिकादूतिकाख्यम् ॥"

अर्थात्—पृथ्वीतल में इन्द्रसदृश प्रख्यात नरवर श्रीराघवनाम नरेश गङ्गातीर राजभवन बनवा के उसी में रहा करते थे । उन से दान पाते २ जगत् भर में क्वचित् कोई कङ्गाल न रहा । उन के पुत्र राजा वासुदेव सत्कीर्त्ति पात्रों के अग्रगण्य थे । वासुदेव के सुत श्रीयुत राजा जगद्दुर्लभ भये । ये वेही जगद्दुर्लभ हैं; जिन के यशों की राशि देवताओं की स्त्रियों के समूहों से गाई जाती है और जो सुख से बैठे ब्राह्मणगणों से उच्चारण किये जाते वेदवचनमय आशीर्वाद में निर्दिष्ट तादृश फल का साक्षात् अनुभव कर रहे हैं जो औरों को अलभ्य है । यह लम्बोदर वैद्य उन्हीं का सभापण्डित नई कविता बना सकता है । जैसा कुछ बनाना चाहिये वैसा यह गोपीदूत नाम सुन्दर सत्काव्य उस ने बनाया है ।

इस काव्य के आरम्भ का श्लोक यह है—

"गते गोपीनाथे मधुपुरमितो गोपभवनाद्-
गता यावद्धूली रथचरणजा नेत्र पदवीम् ।
स्थितास्तावल्लेख्या इव विरहतो दुःखविधुरा-
निवृत्ता निष्पेतुः पथिषु शतशो गोपवनिताः ॥"

अर्थात्—व्रजवासी नन्दगोप के गृह से मथुरापुरी को गोपीनाथ के चल देने पर रथ के पहियों से उड़ी धूली जब तलक दिखाई देती रही; तब तलक तो झुण्ड की झुण्ड गोपियां चित्र लिखी सरीखी खड़ी२ ताकती रहीं । जब धूली भी न देख पड़ी, तब घर लौटती बेला विरहव्यथा से व्याकुल हो मार्गों में जो जहां वह वहीं भहरा पड़ी ।

चिरञ्जीव भट्टाचार्य ।

वर्द्धमान प्रान्त के गुप्तिपाड़ा नाम ग्राम के ये निवासी थे। आज भी इन के वृद्ध प्रपौत्र अर्थात् पोते के पोते श्रीयुक्त हेमचन्द्र भट्टाचार्य महाशय रहते हैं।

इन ने अति प्रसिद्ध 'विद्वन्मोदतरंगिणी' नाम ग्रन्थ बनाकर काव्य के मर्मज्ञ लोगों का आनन्द बढ़ाया।

इन का ठीक नाम 'रामदेव' है; यह बात इन ने अपने काव्य के आरम्भ में आप प्रकट लिखी है। यथा—

"विचार्य तारकं चक्रं पिता मे करुणापरः।
मन्नाम रामदेवेति कृतवान् नामकर्म्मणि॥"

अर्थात्—मेरे करुणापरायण पिता ने मेरे जन्म की वेला के ताराचक्र की गति परिचिन्तन कर के नाम करण संस्कार के समय मेरा रामदेव यह नाम रक्खा था।

"नाम्नैव सम्बोध्य जनः कथायां यदेतदाकारयिता तदाशीः।
तताग्रजो मामतिवत्सलत्वा च्चिरं चिरञ्जीवतयाजुहाव॥"

अर्थात्—मेरे ताऊ अतिवात्सल्य से मुझे 'चिरञ्जीव' इस आशीसमय सम्बोधन से सदा पुकारा करते थे। उस में उन का मनोरथ यह था कि उसी सम्बोधन से सब लोग टेरा करेंगे तो उन्हों के वचन से इस बालक को आशीस मिल जाया करेगी।

ये काश्यप गोत्र के ब्राह्मण थे। इन के आजा का नाम काशीनाथ था। वे सामुद्रिक विद्या में बड़े विज्ञ थे। उन के तीन पुत्र थे। राजेन्द्र, राघवेन्द्र, और महेश। उन में से राजेन्द्र सिद्धान्तवागीश के पास विद्या सीख सर्व शास्त्र पारङ्गत हुए थे। विशेष कर कविता रचना में वे इतने प्रवीण थे कि कहीं कोई उद्भट कविता सुनते और उस में पढ़नेवाला किसी अक्षर की त्रुटि कर देता तो तुरन्त अपनी ओर से उसे भरकर श्लोक को पूरा देते थे और यदि कोई समस्या पूर्ण करने को देता तो उसे पूरी करते इन्हें नेक भी झेल नहीं लगती थी। यों सैकड़ों श्लोक निर्यत्न निर्मान कर लेने के कारण इन्हें लोगों ने शतावधान (अर्थात् समान समय में शतसह बातों पर ध्यान रखनेवाले) यह पदवी दी थी। चिरंजीवभट्टाचार्य इन्हीं शतावधान के पुत्र थे। वे अपने रचित ग्रंथ के प्रत्येक तरंग के अन्त में इस का उल्लेख करते गये हैं। यथा—

"द्वैताद्वैतमतादिनिर्णयविधिप्रोद्बुद्धबुद्धिः श्रुतो
भट्टाचार्य शतावधान इति यो गौड़ोद्भवोऽभूत्कविः ।
विद्वन्मोदतरङ्गिणी ननु चिरञ्जीवेन तज्जन्मना
शास्त्रे या रचितेह पूर्तिमगमत् तस्यास्तरङ्गोऽष्टमः ॥"

अर्थात्—द्वैत, अद्वैत इत्यादि जो दर्शनों के नाना प्रकार के मत हैं, उन सभों की छान करते २ जिन की बुद्धि विशेष वृद्धिगत हो गई है; ऐसे जो शतावधान भट्टाचार्य प्रसिद्ध कवि गौड़ में भये हैं ; हे विद्वज्जनो उन के पुत्र चिरंजीव भट्टाचार्य ने शास्त्र विचार विषयक जो विद्वन्मोदतरङ्गिणी निर्माण की उस का यह अष्टम सर्ग सम्पूर्ण भया ।

चिरंजीव भट्टाचार्य १६ वीं शक शकाब्दी के किसी समय में हो बीते हैं । इन ने राजा यशवन्त सिंह * की आज्ञानुसार वृत्तरत्नावली नामक एक छन्दोग्रन्थ रचा उस में का एक श्लोक यह है—

"वैरिव्रातविमर्द्दनिष्ठुपक्कृपारामैकवंशध्वज
च्छन्दःशास्त्र विचारपारगयशःकर्पूरपूरोज्ज्वल ।
गौड़श्रीयशवन्तसिंह नृपते सद्वृत्तरत्नावली-
वृत्ताकर्णनतः स्वकर्णसुधयोर्माधुर्यमाधारय ॥"

अर्थात्—हे गौड़ेश श्रीमन्त यशवन्त सिंह नृपते आप वैरियों के वृन्द के विनाश में तो पूरे निठुर हैं पर औरों के पक्ष में कृपा के उद्यान में लगे वंशवृक्ष की गोहों में ध्वजाधारी सब से लम्बे वंश की शाख की नाईं श्रेष्ठ सुवंशज हैं । आप के सुयश कर्पूरधारा तुल्य उज्ज्वल हैं । छन्दः शास्त्र के ज्ञान में आप पारंगत हैं । उत्तम जो यह वृत्तरत्नावली बन के प्रस्तुत भई है; उस में पठित श्लोकों का श्रवण कर के आप ने आजतक दोनों श्रवणों में सुधासरीखे वचनरचन सुने होंगे पर उन में मिठास न आई होगी उसी मिठास को आज भर लीजिये ।

उस ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक का पूर्वार्द्ध 'द्वैताद्वैत' इत्यादि प्रतीकवाले श्लोक का पूर्वार्द्ध है । शेष उत्तरार्द्ध के दो चरण ये हैं । 'नाना शास्त्र विदा तदात्मज चिरञ्जीवेन दत्तामु{ गौड़श्रीयशवन्तसिंह नृपतेः श्रीवृत्तरत्नावली ॥' अर्थात् शतावधान के पुत्र चिरञ्जीव ने जो नानाशास्त्र विशारद

* यह राजा गोवर्द्धन सिंह के पुत्र थे क्योंकि वृत्तरत्नावली में इन्हें श्रीगोवर्द्धन भूपनन्दन ऐसा कह के सम्बोधन किया है । 'इनशारआलमगोरी' के १८ वें सफ़े में इनको ज़िक्र आई है । जिस वक्त सुजाउद्दीन बंगाल का नवाब था, उसी ज़माने यशाने (शके १६४७—८) सन् १७२५ ई० में यशवन्त राय ढाके के इलाके के दीवान थे ।

हैं, गौड़ेश श्रीयशवन्त सिंह नरेश को प्रसन्न करने निमित्त यह सुन्दर वृत्तरत्नावली समर्पण की है।

चिरञ्जीव ने पहिले 'माधवचम्पू' नामक एक काव्य बनाया था। वह विरल प्रचार था। अब चौथी से सातवीं संख्या तक 'प्रत्नकम्रनन्दिनी' नाम पत्रिका में आद्योपान्त छप गया है। उस चम्पू के आरम्भ का श्लोक यह है—

" विमोहतमसः क्षयात् सुविमलं प्रकाशं नय-
दयार्द्रमधिकोन्नतं भुवनदाहकारि क्षये।
अये विलसतु क्षणक्षणविलक्षणं तत् सदा
सदाशिवमयं महत् किमपि धाममच्चेतसि ॥"

अर्थात्

जो मेटि मोहतम उज्ज्वल तेज भासै, भारी दयार्द्र तउ कल्प त्रिलोक दाहै।
पूज्य क्षण क्षण विलक्षण ज्योति कोऊ, ऐ! मे सदाशिव सदा मनठामठानै।

मथुरेश।

ये नवद्वीप के महाराज कृष्णचन्द्र राय के समसामयिक थे। अनुमान होता है कि सत्रहवीं शक शताब्दी में जीवन्त थे। राजकृष्णचन्द्रराय ने इन को 'मथुरेशोमहाकविः' ऐसा कह के महाकवि उपाधि दी थी।

ऐसी दन्तकथा है कि किसी समय राजाकृष्णचन्द्रराय की सभा में कोई दिग्विजयी कवि आया और अपनी इच्छा प्रकाश की कि उन के सभा पण्डितों के साथ काव्य के विषय में शास्त्रार्थ करने की अनुमति मिले परन्तु उस का साम्हना करने का हियाव किसी ने न पकड़ा। उस वेला मथुरेश अपने घर चले गए थे *। राजाकृष्णचन्द्रराय ने उस दिग्विजयी को एक अनुमति पत्र लिख दिया कि यदि आप मथुरेश के पास जाके उन से अपना एक जयपत्र लिखवाल्यावें तो मैं मान लूंगा कि मेरे यहां के सब पण्डितगण आप से हार चुके। दिग्विजयी उस पात्र को लेके चल दिया। जय की इच्छा से जाके गुप्तिपाड़ा के घाट पर उतरा और एक चिट्ठी लिख के किसी भृत्य के हाथ से मथुरेश के पास पठाई। चिट्ठी का मर्म यह था मैं दिग्विजयी कवि हूं। आप के साथ काव्य विद्या में शास्त्रार्थ करने के मानस से यहां आया हूं। इस लिये किस समय कहां पर उपस्थित होने से आप से भेंट हो सकेगी सो स्पष्ट लिखियेगा।

---

* वर्द्धमान प्रदेश के गुप्तिपाड़ा नाम ग्राम में ये रहते थे।

मथुरेश उस चीठी को पढ़ के मुसकुराए और तुरन्त यह श्लोक बना के उस के पास लिख भेजा।

" वाल्मीकेरजनि प्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती
वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्रीकालिदासं वरम्।
यासूतामरसिंहशंकुधनिकान् सेयं जरानीरसा
शून्यालंकरणा स्खलन्मृदुपदा कं कं क्षितौ नाश्रिता ॥ "

अर्थात्–वैदर्भी वृत्तिवाली कविता कन्या, वाल्मीकि मुनि से जन्मी। व्यास के साथ लड़कपन के खेल खेली। तरुणाई में कालिदास को व्याही गई। समय पा के अमर सिंह, शंकुक, धनिक इत्यादि बेटे जनी। कविता वनिता के साथ निकट नाता होने के कारण वे लोग वास्तव में कवि कहे जा सकते हैं। अब वह बुढ़ा गई। वे रस, चटक मटक और हाव भाव जाते रहे। गहने (अलंकार) भी हाथ से निकस गये। उस का कोई निकट नतैत जीवता नहीं रहा। धीरे २ मग में डगमगाते डग भरती आश्रय पाने के लिये घर २ पधारती है।

इस श्लोक का व्यंग्यार्थ यह है कि आजकाल कविता नायिका निराश्रय होने के कारण किसी के पास (चोखी) चटकीली नहीं मिलती है। नाम के चाहे कितनेही कवि हुआ करें।

दिग्विजयी उस पत्र को पढ़कर जयपत्र की आशा परित्याग कर तुरत चले गये।

भारतचन्द्र राय।

ये भारद्वाज गोत्री मुखोपाध्याय वंश में जन्मे थे। गांव गिरांव और रुपये पैसे इन के पास बहुत से होने से राय अर्थात् राजा की पदवी को प्राप्त हुए थे। इनके पिता नरेन्द्रनारायणराय पेंडुआ में जो वर्द्धमान मण्डल के 'भूरसुट' खण्ड में है रहते थे। नरेन्द्रनारायणराय के चार बेटे थे। जेठे चतुर्भुज राय, मझले अर्जुन राय, सझले दयाराम और सब से छोटे भारतचन्द्र राय थे।

शक १६३४ में इन का जन्म हुआ। वर्द्धमान के प्रसिद्ध राजा 'कीर्त्तिचन्द्र' राय की माता विष्णु कुमारी (वेसनकुमारी) ने नरेन्द्रनारायण का राज्य छीन लिया था। भारतचन्द्र राय ने अपनी बनाई गौड़ भाषा में रचित 'रसमंजरी में' तिस का कुछ बौछार मारा है। उस का उलथा यथा–राजवल्लभ के काज, कीर्त्तिचन्द्र ने छीना राज।

भारतचन्द्र राय ने अपनी बपौती छिन जाने पर नदिया के महाराज दूसरे विक्रमादित्यकृष्णचन्द्रराय का आश्रय लिया। उन्हीं महाराज की आज्ञा से इन ने "रसमंजरी" और "अन्नदामंगल विद्यासुन्दर" * नाम गौड़भाषा में प्रसिद्ध काव्य की ये दो पुस्तकें बनाईं। संस्कृत की न होने के कारण इन दोनों पुस्तकों में से संस्कृत के कवियों के वर्णनात्मक प्रस्तुत पुस्तक में कुछ अंश उठाना नहीं चाहता हूं परन्तु कवि के समय निरूपण में उपयोगी अन्नदामंगल के एक अंश का उलथा कर के नीचे लिखता हूं। यथा—

शाके सोरह सौ चौहत्तर। भारत रच्यो अन्नदामंगर (ल)॥

इस अर्थ का पद्य अन्नदामंगल की समाप्ति में लिखा है। परलोक प्रस्थान होने से कुछ दिन पहिले इन ने संस्कृत के नाटक की धारा पर 'चण्डीनाटक' नाम एक नाटक बनाना आरम्भ किया था पर शोक की बात है कि उसे पूरा न कर सके। संस्कृत के नाटकों में पात्रों के भेद से संस्कृत और प्राकृत येही दो बोली मिलती हैं. परन्तु इन ने नई चाल निकाली कि नाटक में प्राकृत की सन्ती हिन्दी रक्खी है। इन महाकवि की कविता रचना में कैसी कुछ दक्षता थी, उस के प्रकट होने के लक्ष्य से इन के बनाये उस नाटक के प्रारम्भ से टुक उठा के मैं नीचे लिखता हूं।

सूत्रधार और नटी का राजसभा में प्रवेश। सूत्रधार का वनच-संस्कृत।

"सङ्गायन् यदशेषकौतुककथाः पञ्चाननः पञ्चभि-
र्वक्त्रैर्वाद्यविशालकैर्डमरुकोत्थानैश्च संनृत्यति।
या तस्मिन् दशवाहुभिर्दशभुजा भालं विधातुं गता
सा दुर्गा दशदिक्षु वः कलयतु श्रेयांसि निःश्रेयसे॥"

अर्थात्—श्रीदुर्गाजी के कौतुकमय निखिल चरित्रों को बड़े २ बाजे बजाते डमरु डमकाते श्रीशिवजी निज पांचों बदनों से गाते नाच रहे थे। उसी रङ्ग में जो दशभुजा श्रीदुर्गादेवी आप चली आके अपनी दशो हथेलियों से ताल देने लगीं वे तुम्हारे मोक्षपथ की दशो दिशाओं में कल्याण कारिणी हों।

नटी कां वचन—हिन्दी †।

सुनो सुनो ठाकुर, परम विशारद चतुर, सभासद सकला।
नूतन नाटक, नूतन कविकृत, तहँ हम नूतन अबला॥

---

* इतना बड़ा एक ही पुस्तक का नाम है। (अनुवादक)

† मूल में बङ्गला की खिचड़ी हिन्दी थी इस लिये उलथा करके लिखा है। (अनुवादक)

कैसे बताउब, भाव भवानी के, मोहिं भयो भयभारी।
दनुज दलनलगि, धरणी तलमधि, देवी लीलाअवतारी ॥
गुरुसमपण्डित, हरिसमगुण मण्डित, हौ तुम भटभारे।
कृष्णचन्द्रनृप, राजशिरोमणि, भारतचन्द्र बिचारे ॥

इन ने गङ्गा की स्तुति में गंगाष्टकभी बनाया है। उस में का एक श्लोक यह है—

"यदम्बुनाशितुं (?) मलं महानलः सुशीतलं
प्रयातिनीचमार्गकं ददातिनित्यमुच्चताम्
हरेः पदाब्जनिर्गतां हरित्वमात्रदायिनीं
नमामिजन्हुजां हितां कृतान्तकम्पकारिणीम् ॥"

अर्थात्—जिन का जल अतिशीतल है पर पाप के भस्म करने में प्रचण्ड पावक की नाईं समर्थ है। आप निचास में ढुलता है पर अपने दर्शस्पर्श करनेवालों को सदा उच्च (स्वर्ग) पद देता है। आप तो विष्णु के चरणकमल से निकला है पर अपना सेवन करनेवालों को साक्षात् विष्णुरूप बना देता है। जिन के भय से यमराज भी कांपते हैं, ऐसी हितकारिणी श्री गंगाजी को मैं नमस्कार करता हूं।

द्विज वैद्यनाथ।

इन ने शक १७०६ में "तुलसीदूत" नामक एक खण्डकाव्य बनाया। यथा-

"शाके तर्कनभोहयेन्दुगणिते श्रीवैद्यनाथोद्विजो
गोपीकैरवकाननप्रियकलानाथाङ्घ्रिपाथोरुहम्।
ध्यायंस्तच्चरणारविन्दरसिकः प्रज्ञावतां प्रीतये
प्रीत्यै तस्य चकार चारु तुलसीदूताख्यकाव्यं महत् ॥"

अर्थात्—श्रीवैद्यनाथ द्विज ने गोपी रूपी कुमुदवन के आह्लाद दायक चन्द्रतुल्यप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमल का ध्यान धरे और उसी के मकरन्द का रसिक बना रहकर श्रीकृष्ण और उन के भक्त विद्वज्जनों के प्रीत्यर्थ सुन्दर तुलसीदूत नाम बड़ा काव्य बनाया ॥

इस काव्य का प्रथम श्लोक यह है—

"नाथे याते मधुपुरमतिक्षोभविभ्रष्टचित्ता
गोपी काचित् कलयति सखीरन्तरङ्गाः समीपे।
प्राणत्यागादतिगुरुतरे तस्य बन्धोर्वियोगे
केन स्थेयं मुहुरिति वचो व्याकुला सा बभाषे ॥"

अर्थात्—जब गोपीनाथ मथुरा को चल दिये और वहां जाके बस रहे, तब बड़ी व्याकुलता से सुधि बुधि बिसराये कोई गोपी अपनी कुछेक आप सी सखियों से जो उस के समीप उपस्थित थीं बार २ घबड़ा कर यह कहने लगीं कि कौन है जो उस बन्धु के बिछोह में अपना प्राण धारण कर सके ? काहे से कि उस के विरह की व्यथा मरण से भी बढ़कर अत्याधिक पीड़ादायक है ।

जगन्नाथतर्कपंचानन ।

इन का जन्म शक ११०२ में हुआ । सिराजुदौला ने इन को ' सोहार-बख्श ' का खिताब दिया था ।

माधव ।

इन ने उद्धवदूत नामक एक खण्ड काव्य रचा है । उस का प्रथम श्लोक यह है ।

"गोपीबन्धोरनवधिकृपादाच्यदाक्षिण्यसिन्धो-
रादेशेन प्रणयपटुना प्रापितं गोकुलाय ।
गोधुग्वृन्दाव्यसनविसरालोक दुःस्थं रहस्थं
मध्येकृत्य प्रियसहचरीमुद्धवं काचिदूचे ॥"

अर्थात्—असीम कृपा, चतुरता और मिलनसारी के सागर सदृश गोपीनाथ प्यारे ने आज्ञा दे के प्रीति की रीति पहिचानने में पटु उद्धव को गोकुल में भेजा । उन ने वहां जाके देखा कि श्रीकृष्ण की दारुण, असह्य विरहवेदना ग्वालों और ग्वालिनियों को बिन चैन किये है । जब उद्धव को एकान्त में पाया तब कोई गोपी अपनी किसी प्यारी सहेली को बीच में बिठला के उन से ये वचन बोली ।

ये किस समय में वर्तमान थे; तिस के विषय ये कुछ नहीं जतला गये । ग्रन्थ की समाप्ति में केवल इतना लिख गये हैं ।

"नानारामप्रणयिसुमनःसङ्गसौभाग्यभाजा
जाड्यापाये सुरभिसमयस्थायिना माधवेन ।
राधाबन्धोरुपहृतमिति प्रेममाध्वीकमेत-
न्निर्विघ्नेन श्रवणपुटकैः पुण्यमन्तः पिबन्तु ॥"

अर्थात्—जड़काला बीतने पर वसन्तऋतु का बैशाख मास नाना उद्यानों में खिले फूलों से जैसा विशेष सुहावना लगता है, वैसा ही माधव

कैसे बताउब, भाव भवानी के, मोहिं भयो भयभारी।
दनुज दलनलगि, धरणी तलमधि, देवी लीलाअवतारी॥
गुरुसमपरिडत, हरिसमगुण मरिडत, हौ तुम भटभारे।
कृष्णचन्द्रनृप, राजशिरोमणि, भारतचन्द्र बिचारे॥

इन ने गङ्गा की स्तुति में गंगाष्टकभी बनाया है। उस में का एक श्लोक यह है—

"यदम्बुनाशितु (?) मलं महानलः सुशीतलं
प्रयातिनीचमार्गकं ददातिनित्यमुच्चताम्
हरेः पदाब्जनिर्गतां हरित्वमात्रदायिनीं
नमामिजन्हुजां हितां कृतान्तकम्पकारिणीम्॥"

अर्थात्—जिन का जल अतिशीतल है पर पाप के भस्म करने में प्रचण्ड पावक की नाईं समर्थ है। आप निचास में ढुलता है पर अपने दर्शस्पर्श करनेवालों को सदा उच्च (स्वर्ग) पद देता है। आप तो विष्णु के चरणकमल से निकला है पर अपना सेवन करनेवालों को साक्षात् विष्णुरूप बना देता है। जिन के भय से यमराज भी कांपते हैं, ऐसी हितकारिणी श्री गंगाजी को मैं नमस्कार करता हूं।

द्विज वैद्यनाथ।

इन ने शक १७०६ में "तुलसीदूत" नामक एक खण्डकाव्य बनाया। यथा-

"शाके तर्कनभोहयेन्दुगणिते श्रीवैद्यनाथोद्विजो
गोपीकैरवकाननप्रियकलानाथाङ्घ्रिपाथोरुहम्।
ध्यायंस्तच्चरणारविन्दरसिकः प्रज्ञावतां प्रीतये
प्रीत्यै तस्य चकार चारु तुलसीदूताख्यकाव्यं महत्॥"

अर्थात्–श्रीवैद्यनाथ द्विज ने गोपी रूपी कुमुदवन के आह्लाद दायक चन्द्रतुल्यप्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमल का ध्यान धरे और उसी के मकरन्द का रसिक बना रहकर श्रीकृष्ण और उन के भक्त विद्वज्जनों के प्रीत्यर्थ सुन्दर तुलसीदूत नाम बड़ा काव्य बनाया॥

इस काव्य का प्रथम श्लोक यह है—

"नाथे याते मधुपुरमतिक्षोभविभ्रष्टचित्ता
गोपी काचित् कलयति सखीरन्तरङ्गाः समीपे।
प्राणत्यागादतिगुरुतरे तस्य बन्धोर्वियोगे
केन स्थेयं मुहुरिति वचो व्याकुला सा बभाषे॥"

अर्थात्—जब गोपीनाथ मथुरा को चल दिये और वहां जाके बस रहे, तब बड़ी व्याकुलता से सुधि बुधि बिसराये कोई गोपी अपनी कुछेक आप सी सखियों से जो उस के समीप उपस्थित थीं बार २ घबड़ा कर यह कहने लगीं कि कौन है जो उस बन्धु के बिछोह में अपना प्राण धारण कर सके ? काहे से कि उस के विरह की व्यथा मरण से भी बढ़कर अत्याधिक पीड़ादायक है।

जगन्नाथतर्कपंचानन।

इन का जन्म शक ११०२ में हुआ। सिराजुदौला ने इन को 'सोहार-बख्श' का खिताब दिया था।

माधव।

इन ने उद्धवदूत नामक एक खण्ड काव्य रचा है। उस का प्रथम श्लोक यह है।

"गोपीबन्धोरनवधिकृपादाक्ष्यदाक्षिण्यसिन्धो-
रादेशेन प्रणयपटुना प्रापितं गोकुलाय।
गोधुग्वृन्दाव्यसनविसरालोक दुःस्थं रहस्थं
मध्येकृत्य प्रियसहचरीमुद्धवं काचिदूचे॥"

अर्थात्—असीम कृपा, चतुरता और मिलनसारी के सागर सदृश गोपीनाथ प्यारे ने आज्ञा दे के प्रीति की रीति पहिचानने में पटु उद्धव को गोकुल में भेजा। उन ने वहां जाके देखा कि श्रीकृष्ण की दारुण, असह्य बिरहवेदना ग्वालों और ग्वालिनियों को बिन चैन किये है। जब उद्धव को एकान्त में पाया तब कोई गोपी अपनी किसी प्यारी सहेली को बीच में बिठला के उन से ये वचन बोली।

ये किस समय में वर्तमान थे; तिस के विषय ये कुछ नहीं जतला गये। ग्रन्थ की समाप्ति में केवल इतना लिख गये हैं।

"नानारामप्रणयिसुमनःसङ्गसौभाग्यभाजा
जाड्यापाये सुरभिसमयस्थायिना माधवेन।
राधाबन्धोरुपहृतमिति प्रेममाध्वीकमेत-
न्निर्विघ्नेन श्रवणपुटकैः पुण्यमन्तः पिबन्तु॥"

अर्थात्—जड़काला बीतने पर वसन्तऋतु का बैशाख मास नाना उद्यानों में खिले फूलों से जैसा विशेष सुहावना लगता है, वैसा ही माधव

कवि जड़ता के निवृत्त होने अनन्तर सज्जनों की मनोहर सुचाल पकड़े चलता अनेक संख्यक रामभक्त विद्वज्जनों की सत्संगति से महाभाग्यवान् भया है। वैशाख में उत्पन्न पुष्पों के मकरन्दरस की नाईं प्रेम मधुमय यह काव्यपुष्पोपहार माधव (श्रीकृष्ण) को माधव कवि ने चढ़ाया है। उस की प्रसादी को पुण्यात्मा प्राणी अपने कर्णरूपी पात्रों के द्वारा पान करें।

"इति तालित नगरनिवासि श्रीमाधवकवीन्द्रभट्टाचार्यविरचितमुद्धवदूतं खण्डकाव्यं समाप्तम्।"

राधामोहन विद्यावाचस्पति।

ये शान्तिपुर के गोस्वामी भट्टाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन की कविताई में विशेष प्रसिद्धि नहीं है। न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण आदि विषयों में ये बड़े विद्वान थे परन्तु पदाङ्कदूत पर टीका आदि इन की कृति देखने से इन्हें कवियों की श्रेणी में गिने विना मन नहीं मानता। ये शक १७३७ तक जीवते थे।

श्रीशङ्कर।

इन की उपाधि वैद्यचन्द्र थी। यह उपाधि इन्हें नदिया की राजसभा में वैद्य होने के हेतु राजा ईश्वरचन्द्र से मिली थी। ये नवद्वीप मण्डल के 'नवला' नामक ग्राम में रहते थे। कविता की रचना में बड़े निष्णात थे निदर्शन के लिये नीचे एक कथा लिखी जाती है।

एक समय ये राजा ईश्वरचन्द्र से छुट्टी लेकर नवला नाम गांव में अपने घर चले गये थे। उन्हीं दिनों राजा ने उन के पास एक चीठी, नारङ्गी और रुपये भेजे। पत्र के हाथ में आतेही तुरन्त इन ने एक श्लोक बना के राज के पास लिख भेजा। यथा—

"पवित्रकमलासङ्गा संमुद्रानुग्रहप्रदा।
शङ्करस्योत्तमाङ्गस्था गङ्गेव तव पत्रिका॥"

अर्थात्—रुपयाहु नवरङ्गिहू, कृपासिन्धु समुहानि।
सुरसरि सी तव पत्रिका, शङ्कर शिरधर मानि॥

इति चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ।

वर्त्तमान काल।

'वर्त्तमान' यह शब्द सुनतेही लोग अवहेला करते हैं। इस का एक कारण यह जान पड़ता है कि 'दूर का ढोल सुहावना' होता है। इस न्यायानुसार लोक प्रकृति पाई जाती है कि देशकाल से परोक्ष वस्तु के अनुभव में कुतूहल होता है और देशकाल में प्रत्यक्ष वस्तु का अनुभव नीरस लगता है। जैसा दृष्टान्त शतक में भी कहा है—

"निकटस्थंगरीयां समपि लोको न मन्यते ॥"

अर्थात्—पार्श्ववर्त्ती अतिमहान का भी आदर जगत् के लोग नहीं करते हैं।

दूसरा कारण यह भी संभव है कि दैव, रथचक्र की नाई फिरता रहता है। कभी उन्नति होती है और कभी अवनति। आजकाल हमारे देश के दिन घटती के हैं। उसी से लोग काव्यकलाकौशल से विस्पृह हो रहे हैं तौभी पृथ्वी निर्बीज नहीं हो गई है। कहीं २ रसभावना चतुर महानुभाव अबलों जीवते होंगे जो आधुनिक (वर्त्तमान) यह शब्द सुनतेही दोनों हाथों से दोनों कान कदापि न मूंदलेंगे किन्तु संमुख उपस्थापित काव्य के गुणदोष की जांच अवश्य करेंगे। फलतः ऐसेही लोगों के विज्ञापनार्थ में वर्त्तमान काल के कवियों की नामावली गूंथता हूं। इस से और कुछ न हो तो दो बातें अवश्य सधती दीखती हैं। एक तो आधुनिक कवियों का मन न गिरने पावेगा। दूसरे मेरी देखा देखी और लोग भी वर्त्तमान और भविष्य कवियों के समय लिख रखने की परिपाटी पकड़ेंगे।

* श्रीयुक्त कृष्णानन्द भट्टाचार्य।

नवद्वीप प्रान्त के अन्तर्वर्त्ती हलदामहिषपुर इन का निवास स्थान है। इन ने श्लेष से ऐसा द्व्यर्थक काव्य बनाया है जिस का अर्थ एकबार व्याकरण पर और दूसरी बार अन्य अर्थ पर घटता है। उस के पढ़ने से बड़ा आश्चर्य होता है।

राघवपाण्डवीय में लिखा देखते हैं:—

* जो लोग अबलों जीते हैं उन के नाम के पहिले 'श्री' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह सूचना ग्रन्थकार ने दी है। बंगला १२८० संवत् की भाद्र पद मास में प्रस्तुत ग्रन्थ कर्त्ता की मृत्यु हुई। यह प्रकाशक का विज्ञापन है।

"सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिभङ्गिनिपुणा श्चतुर्थो विद्यते न वा ॥"

अर्थात्—सुबन्धु, वाणभट्ट और कविराज केवल यही तीनजन वक्रोक्ति (एंच पेंच अवरेव के वचन) विलाससंवलित कविताई की रचना में चतुर हो बीते। उन की समसरिका चौथा कोई जन है वा नहीं इस में सन्देह है। मुझे उचित सूझता है कि इन भट्टाचार्य महाशय की उन के बीच चौथे जनकी गिनती हो। यदि इन दिनों हमारे देश में संस्कृत भाषा का यथोचित आदर होता तो इन भट्टाचार्य के बनाये इस व्याकरण का सर्वत्र प्रचार हो जाता परन्तु इस देश का ऐसा अभाग्य है कि प्रचार न होके प्रत्युत इतना अग्राह्य हो रहा है कि विरले होंगे जो इस का नाम तक भी जानते हों।

रचना चातुरी के परिचयार्थ इन के रचित काव्य का एक छोटासा श्लोक उठा के नीचे लिखता हूं। यह एकवार व्याकरण पर और दूसरीवार अन्य विषय पर घटित होता है। यथा—

"मुक्तहेतोः परेशश्चेद द्वितीयोवर्ग इष्यते।
यथा रत्नाकराच्छुक्ति लोभान्मरणया हि वञ्चितः ॥"

इस का व्याकरण के पक्ष में यह अर्थ है। *

मुक्त यह किसी विद्यार्थी का नाम था। उसे सम्बोधन कर के कहते हैं। हे मुक्त तोः परे=तवर्ग के किसी अक्षर के परे शश्चेत्=यदि शकार आवे, किंबा तोः चे परे † =तवर्ग के किसी अक्षर के परे चकार ‡ हो तो द्वितीयोवर्ग इष्यते=उस तोः तवर्ग के किसी अक्षर के स्थान में दूसरे वर्ग अर्थात् चवर्ग का अक्षर आदेश इष्ट है। इस का उदाहरण यथा—

रत्नाकरात् शुक्ति लोभान्मरणयहि वञ्चितः=रत्नाकराच्छुक्ति×लोभान्मरणयाहि वञ्चितः+।

---

* जिन्हों ने मुग्धबोध व्याकरण पढ़ा है, वे इस स्थान पर उस के "स्तुश्चुभिश्चुशात्" इस सूत्र का स्मरण करें।

† इस पक्ष में 'अनचिच' इस पाणिनीय सूत्र से 'द्वितीयो' इस के दकार का द्वित्व हुआ है।

(अनुवादक)

‡ इस पक्ष में यहां चकार चवर्ग के अक्षर मात्र का उपलक्षण समझा जावे। (अनुवादक)

× यहां 'त' के स्थान में 'च' हुआ।

+ यहां वन् + चितः था। नकार के स्थान में ञकार होने से वञ्चित हो गया।

(अनुवादक)

अन्यपक्ष में अर्थ यथा*मुक्त हेतोः=मुक्ति के निमित्त; परेशः=परमेश्वर है। चेद् द्वितीयो वर्ग इष्यते=यदि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से मोक्ष को छोड़ शेष तीन पुरुषार्थों में से किसी को परमेश्वर से जो कोई पाने की कामना करता है वह'यथा रत्नाकराच्छुक्ति लोभान्मण्याहि वञ्चितः=ऐसा है जैसा कोई समुद्र से सीप पाने का लोभ करे और रत्न पाने से वंचित रह जावे। तात्पर्य यह है कि मोक्षदाता परमेश्वर से मोक्षभिन्न अन्य किसी विषय की प्रार्थना न करे।

इन भट्टाचार्य महाशय जी ने जो 'नाट्यपरिशिष्ट' नाम एक खण्ड व्याकरण छपा के प्रकाश किया; उस में अपने को नदिया के महाराज श्रीशचन्द्र राय का सभासद बतलाया है। इस पुस्तक के बनने की मिति शक १७६० है। इन महाशय ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपनी पहिचान यों लिखी है। यथा—

"गुड़ ग्रामि मण्डलेश्वर चतुर्धुरिणा महेशपुर नामक विषय निवासिना नवद्वीपाधिपतेः श्रीयुतश्रीशचन्द्रनृपतेः सभैकरत्नेन श्रीमता कृष्णानन्द भट्टाचार्येण" इत्यादि। अर्थात् नवद्वीपाधिपति श्रीयुत श्रीशचन्द्र राजा की सभा के एक रत्न गुड़ग्राम के निवासियों के मण्डलेश्वर चौधरी महेश्वरपुर नामक संस्थान के रहनेहारे श्रीमान् कृष्णानन्द भट्टाचार्य ने इत्यादि।

व्याकरण की इस पुस्तक को छोड़ न्याय और धर्मशास्त्र आदिक नाना विषयों के और भी कई एक ग्रन्थ इन ने बनाये और विविध विद्या की वृद्धि के उत्साही सर्व गुणग्राही विद्वद्वर श्रीयुक्त ईश्वरचन्द्रविद्यासागर महाशय के उभाड़ने से भट्टाचार्य जी ने 'शब्दशक्ति प्रकाशिका परिशिष्ट' इस नाम का एक श्लोक बद्ध न्याय का ग्रन्थ निर्माण किया। यह ग्रन्थ संवत् १९१२ अर्थात् १७७७ शक में छपा। ऊपर जिस की चर्चा हुई वह व्याकरण ग्रन्थ बहुत दिन पहिले का बना है।

श्रीयुक्त गङ्गाधर तर्कवागीश।

ये कलकत्ते के प्रसिद्ध कवियों और पण्डितों में एक ही हैं। जयदेव कृत गीतगोविन्द की अनुकृति में इन ने हरगौरीलीला विषयक 'संगीतगौरीश्वर' नामक काव्य रचा है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है।

---

* यहां पर नपुंके भावेक्तः इस सूत्र से भाव अर्थ में त प्रत्यय होने से यह शब्द मुक्ति अर्थ पर समझा जावे। अनुवादक।

" आधारादिशिरोगताम्बुजवसत्सत्कर्णिका सूज्ज्वलार-
तासूताङ्गूत पृथक् तनू विहरतः सर्वासुयासूज्ज्वलौ।
नित्यानन्दवने नियाय जगतामेकात्मनः स्वेच्छया-
गौरीशङ्करयोर्द्विधा गतवतोः क्रीड़ा जयत्विष्टदा॥"

अर्थात्—शक्ति और शक्तिमान् के अभेद से मायाशक्ति गौरी और शक्तिमान् पुरुष शिव इन दोनों में कुछ भेद नहीं है तौ भी स्वेच्छा से वे भिन्न२ रूप धारण कर के शक्त्यंश से गौरी और पुरुषांश से शङ्कर भये हैं। यों पृथक् २ प्रकाशात्मक रूप धारण कर के आधारादि चक्रों के शिरोभाग में वर्त्तमान कमलों के अति उज्ज्वल खोसों (कर्णिकाओं) में जो विहार करते हैं उन गौरीशङ्कर की नित्यानन्द वन में पहुंच के क्रीड़ा सर्ब जगत् की इष्टसिद्धि देनेहारी सर्वोत्कृष्ट होवे।

यह पुस्तक शक १७७२ में छापी गई।

प्रेमचन्द्रतर्कवागीश।

ये कलकत्ता संस्कृत कालेज में अलंकार शास्त्र के अध्यापक थे। इन का निवास स्थान राढ़ देश में था। १८०६ खीष्टाब्द अर्थात् बंगला १२०० संवत् में ये जन्मे। इन के पूर्व पुरुषों में से सर्वेश्वर नाम किसी पुरुष ने अवसथ यज्ञ का अनुष्ठान किया था। तिस की चर्चा निम्नलिखित श्लोक में मिलती है।

"नाम्ना सर्वेश्वरः प्रोक्तो दानैः कल्पमहीरुहः।
अवसथीतिविख्यातो मन्त्रेऽवसथपालनात्॥"

अर्थात्—वेदोक्त अवसथ अग्निहोत्र के संरक्षण से आवसथी उपाधि धारी दानों से कल्पवृक्ष के तुल्य सर्वेश्वर इस नाम से प्रसिद्ध विद्वान् जन हो गये हैं।

इन्हीं सर्वेश्वर के सन्तानों में रामचरण थे जिन ने साहित्यदर्पण पर टीका रची है। प्रेमचन्द्र ने लड़कपन में किसी चटशाला में पढ़ा था। पीछे इक्कीस वर्ष की अवस्था होने पर कलकत्ते के संस्कृत विद्यालय में श्रीयुक्त नाथूराम शास्त्री से अलङ्कार शास्त्र पढ़ा। ये जब बत्तीस वर्ष के हुए तब इस विद्यालय के अध्यक्ष श्रीयुतावलिसन् महाशय की कृपा से वहीं अलङ्कार शास्त्र पढ़ानेवाले पण्डित के पद पर नियुक्त हुए। तदनन्तर बत्तीस वर्ष तक उसी पद पर बने रहे और अच्छी प्रशंसा पाई। जब

अपनी जन्मकुण्डली देख इन्हें विदित हुआ कि अब मृत्यु दूर नहीं है तो मोक्षधाम काशीक्षेत्र में जाबसे। वहां थोड़े दिन पीछे बंगला १२७३ संवत् के चैत्र की सौर १२ वीं तिथि को निर्वाण प्राप्त हुए।

अलङ्कारशास्त्र में इन की समसरिका कोई विद्वान् बंगाल देश में आज है वा नहीं इस में सन्देह है। * रसगंगाधर आदि ग्रन्थों से संग्रह कर के इन ने साहित्य का एक ग्रन्थ का निर्माण आरम्भ किया था परन्तु यहां के लोगों की उस विषय के ग्रन्थ पर अभिरुचि न देख मन्द उत्साह हुए। अतः छोड़ दिया। इन ने कुमारसम्भव के उत्तरार्द्ध की टीका बनाने में हाथ लगाया था। दैवात् वह भी पूरी न होने पाई। इस टीका के आरम्भ में जो मंगलाचरण के दो श्लोक बनाये हैं सब के देखने के लिये उन्हें यहां उठाता हूं।

"चापल्यादिह वः सदास्मि विधुरा यास्यामि तातालयं
तातस्ते जनयित्रि कः स च महानीशो गिरीणां हि यः।
मातस्त्वं किमहो गिरीशदुहितेत्याभाषमाणे गुहे
प्रोन्मीलत्स्मितमुग्धनम्रबदना गौरी चिरं पातु वः॥
नन्दिन्नेषबुभुक्षितो वृषपतिर्भृङ्गिन्नभङ्गाऽस्ति मे
भ्रातः पन्नगराज बन्धुषु भवानुत्कण्ठितो लक्ष्यते।
इत्येतांश्छलतो बहिर्गमयितुं बद्धादरो व्याहर-
न्दृष्टः सस्मितलज्जमद्रिसुतया शम्भुश्चिरं पातु वः॥"

अर्थात्—यहां तुम्हारे ऊधम से व्याकुल होगई हूं। अपने बाप के घर चली जाऊंगी। हे माता तुम्हारा बाप कौन है? मेरे बाप गिरियों के महान ईश हैं। अहो अम्ब! क्या तूं गिरीश † नन्दिनी है? यों स्कन्द का प्रश्न सुन के छिटकती मुसक्यान से मनोहर मुख झुकाये गौरी सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें। हे नन्दी यह बड़ा बैल भूखा है। हे भृंगी मेरे भाँग नहीं हैं। हे भाई वासुकि लख पड़ता है कि आप अपने बन्धुओं से भेंट के लिये उत्कण्ठित हैं। यों बहाने से नन्दी आदि को बाहिर टरका देने के विचार से सादर सम्भाषण करते जिन शिव को पार्वती ने लजा के मुसकुराकर ताका वे सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें।

---

* यह ग्रन्थ प्रसिद्ध गंगालहरी के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ का बनाया है। ये शाहजहां बादशाह के वक्त में थे।—अनुवादक।

† गिरीश शिव का भी नाम है। देखो अमर कोष— अनुवादक।

इन ने नैषध के पूर्वार्द्ध, राघवपाण्डवीय, अनर्घराघव, उत्तर रामचरित, और मुकुन्द मुक्तावली इत्यादि ग्रन्थों पर तिलक भी किये। इन्हीं टीकाओं के बनाने से ये सर्वत्र प्रतिष्ठापात्र हुए। इन प्रशंसित कवि श्रेष्ठ महाशय ने राघवपाण्डवीय की टीका की भूमिका में विस्तार से अपनी पहिचान दी है। उस के पढ़ने से जानते हैं कि राढ़देश के वर्द्धमान प्रान्त में शाकरारा ग्राम के ये निवासी थे। ये काश्यप गोत्रज रामनारायण नामे ब्राह्मण के पुत्र थे। इन ने १७७५ शक में राघवपाण्डवीय की टीका बनाई। यथा—

"शाके सायकसप्तशैलकुमिते वर्षेऽतिहर्षप्रदां ।
चक्रे राघवपाण्डवीय विवृतिं श्रीप्रेमचन्द्रो द्विजः ॥"

अर्थात्—श्रीप्रेमचन्द्र विप्र ने १७७५ शक में राघवपाण्डवीय पर यह अतिहर्षदायक तिलक रचा।

श्रीयुक्त जयनारायण तर्कपञ्चानन।

ये कलकत्ते के संस्कृत कालेज में दर्शन शास्त्रों के अध्यापक हैं। कणाद सूत्र पर इन ने जो विवृति बनाई है; उस के पढ़ने से दर्शन शास्त्र में इन के पाण्डित्य का पूरा परिचय मिलता है। इस विवृति के प्रत्येक आन्हिक के प्रारम्भ में एक २ मङ्गलाचरण श्लोक इन ने बनाया है। उन्हें देख इन की कविताशक्ति को धन्य कहते बन आता है। उन श्लोकों में से दो श्लोक नीचे उठाता हूं।

"यः शङ्करोऽपि प्रणयं करोति स्थाणुस्तथा यः परपूरुषोऽपि ।
उमा गृहीतोऽप्यनुमागृहीतः पायादपायात् स हि नः स्वयम्भूः ॥"

अर्थात् जो न केवल सब के कल्याणकर्त्ता अपितु सब पर प्रेम विधाता भी हैं (अथवा जो सब के कल्याणकर्त्ता होके भी भीख मांगते हैं *) जो परात्पर पुरुष स्वरूप हो के भी स्थाणु † हैं और जो उमा (पार्वती) से गृहीत हो के भी अनुमा (अनुमान) से ग्रहण किये जाते हैं; ऐसे वे स्वतः सिद्ध शिव संकट से हमारी रक्षा किया करें। यहां कोई उमा गृहीत हो के फिर उस के विरोधी अनुमा से गृहीत नहीं हो सकता। ऊपर से ऐसा विरोधाभास है पर श्लेष से 'अनुमा' शब्द का अनुमान अर्थ कहके उस विरोध का समाधान होता है।

अथवा—

* संस्कृत में 'प्रणय' याचना को भी कहते हैं (अनुवादक)।

† स्थाणु शिव और ठूंड को भी कहते हैं (अनुवादक)]

"उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्वितनुते विश्वस्य यः स्वेच्छया
ताद्दिश्य परिस्फुरन्नपि न यः प्राज्ञेतरैर्ज्ञायते ।
यत्तत्त्वं विदुषां न संसृतिसरित्पूरे पुनर्मज्जनं
सोऽयं वः स्थिर भक्तियोगसुलभो भूयाद्भवो भूतये ॥"

अर्थात्—जो तत्त्व, स्वेच्छा से संसार का सृजन, पालन और संहार करता है ; जो संसार को थांभे संभाले हुए चैतन्य रूप से भासमान है, तथापि मूढ़ जिसे नहीं पहिचानते और जिस को लख लिये विद्वान् लोग फिर संसाररूपी नदी के वेगवन्त प्रवाह में नहीं बूड़ते ; जो अविचल भक्तिरूपी उपासना से सुलभ है ; वह तत्त्व शिवात्मक है तुम्हारी भलाई के लिये अनुकूल हो--

इन ने उक्त विवृति की समाप्ति में निज निवासभूमि बड़स्या गांव का यों बखान किया है ।

"कालीपीठोपकण्ठस्थलमिलितवपुस्तालिगञ्जप्रतीच्या-
मान्ते शस्तैर्द्विजौघैः प्रथिततमतनुर्या पुरी पण्डिताढ्या ।
बड़्श्यासंज्ञाभिषङ्गा कलितकुलचतुःसागरीरत्नपूर्णैः
सावर्णैः स्थापितोऽभूदतिविमलमतिर्यत्नतस्तत्रपूर्वम् ॥"

अर्थात्—कालीपीठ के पास बसे तालीगञ्ज से पश्चिम में बड़शा नाम प्रसिद्ध ग्राम है। वहां न केवल विप्र श्रेष्ठों का समूह बरन विद्वन्मण्डली भी वास करती है । चारो दिशाओं को विजय करके उन के चारो समुद्रों के रत्नों को ल्याके जिन ने अपने पास रख छोड़ा, ऐसे सावर्णों ने पहिले उस ग्राम में यत्न से ले आके जिस अति निर्मल मतिवाले को बसाया ।

उक्त विवृति से अतिरिक्त 'चामुण्डाशतक' नाम एक खण्डकाव्य भी इन ने बनाया है । उस के पढ़ने से इन की अद्भुत कविताशक्ति छिपी नहीं रहती है। यद्यपि यह कविता इन की असुस्थावस्था में बनाई है तौ भी आशय और अलङ्कार के ठीक ठिकाने विन्यास करने में रञ्चक भी चूक नहीं होने पाई है। इस के आरम्भ का श्लोक यथा—

"येषां पुण्यमगण्यमन्यजननेश्रेणीकृतं जृम्भते
धन्यास्ते पदपङ्कजान्तररजो ध्यायन्ति विन्दन्ति ते ।
न प्राचीनमणुप्रमाणमथवा पुण्यं नवीनं न मे
चामुण्डे नरमुण्डमालिनि मम क्लेशावलीं खण्डय ॥"

अर्थात्—जिन जनों ने पूर्वजन्म में अपरिमित सुकृतराशि उपार्जित की है वे धन्य हैं। वे ही तेरे चरणकमल के भीतर के पराग का ध्यान पाते हैं। हे नरमुण्डमाला पहिने चामुण्डे ! मेरे पास न पूर्व जन्मकृत और

न इस जन्म में संपादित तनिक भी पुण्य है, तौ भी मेरे क्लेशसमूहों का छेदन तू कर।

यह काव्य १७८८ शक के चैत्र मास में बना। यथा—

"दन्तिदन्तावलाद्रीन्दुप्रमिते शकभूपतेः।
अब्दे मासि मधौ स्तोत्रं समाप्तिमिदमागमत्॥"

अर्थात्—इस स्तोत्र के बन कर समाप्त होने की मिति शक १७८८ का चैत्र मास है।

श्रीयुक्त भरतचन्द्र शिरोमणि।

ये कलकत्ते के संस्कृत कालिज में धर्मशास्त्र के अध्यापक थे। 'विष्णवादि स्तोत्र' नामक एक काव्य इन की कृति है। उसे छोड़ दत्तकमीमांसा और दत्तकचन्द्रिका आदि कई ग्रन्थों पर तिलक भी इन के किये हैं।

श्रीयुक्त महेशचन्द्र न्यायरत्न।

ये मण्डलघाट परगना के अन्तर्वर्त्ती नारिट् ग्राम के निवासी भट्टाचार्य के पीढ़ीजात श्रीयुक्त हारिनारायणतर्क सिद्धान्त महाशय के पुत्र हैं। ये तर्कसिद्धान्त महाशय कलकत्ते के शोभाबाजारवाले राजवाड़े के सभा-पण्डित थे। श्रीयुक्त जयनारायण तर्कपंचाननभट्टाचार्य महाशय ने सर्व दर्शन संग्रह के बंगाली उल्थे की भूमिका के चौथे पृष्ठ से इन का गुणगान आरम्भ किया है। उस के पढ़ने से इन के गौरव और महत्त्व में किसी को सन्देह नहीं रह जाता।

संस्कृत कालेज के प्रधान अध्यक्ष श्रीयुक्त कावेल महाशय की आज्ञा से इन ने कुसुमाञ्जलि का तात्पर्य विवरण और काव्य प्रकाश की संक्षिप्त टीका बनाई। कावेल महाशय आप भी संस्कृत में कविता बना सकते थे। न्यायरत्न अबलों संस्कृत कालेज में अलंकारशास्त्र के अध्यापकपद पर नियुक्त हैं और भलीभांति अपना कार्य संभाले हैं। इसी लक्ष्य से इन्हें भी कवियों की श्रेणी में गिना है।

श्रीयुक्त तारानाथ तर्कवाचस्पति।

ये कलकत्ता संस्कृत विद्यालय में व्याकरण के अध्यापक हैं। इन ने

"शब्दार्थरत्न" नाम व्याकरण ग्रन्थ बना के संवत् १९०८ वा १७७३ शक में * छपवाया। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"अभिवाद्य जगद्वन्द्यां देवीं वाचामधीश्वरीम्।
शब्दार्थरत्नं क्रियते श्रीतारानाथशर्मणा॥"

अर्थात्—जगत् से वन्दनीय बागीश्वरी (सरस्वती) देवी की बन्दना कर के श्री तारानाथ शर्मा 'शब्दार्थरत्न' रचता है।

इस ग्रन्थ की भूमिका में इन ने जो पद्य रचे हैं, उन के पढ़ने से इन की कविताशक्ति का अच्छा परिचय हो सकता है।

वर्दवान प्रान्त के अन्तर्वर्त्ती अम्बिका ग्राम इन की निवासभूमि है। ये वेदान्त आदि सब शास्त्रों में पारंगत हैं।

श्रीयुक्त क्षेत्रपाल स्मृतिरत्न।

कलकत्ते के शोभाबाजार वासी श्रीयुक्त राजा राधाकान्तदेव के गुणों की प्रशंसा में इन ने "राधाकान्तचम्पू" नामक एक काव्य बनाया है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"वन्दे हेरम्बपादाम्बुजयुगममरस्तोमसम्पूज्यमानं
संसाराब्धिप्रयाणातरमिह परतः शैवलोकाप्तिबीजम्।
स्निग्धस्वान्तान्धकाराहरकरनिकरं दानवैर्वन्दनीयं
सर्वत्रोद्दामरोचिर्विनिहततिमिरं विघ्ननाशाग्निरूपम्॥"

अर्थात्—इस संसार सागर पार जो शिवलोक है, वहां पहुंचने हेतु शम्बल लम्बोदर के चरणकमलयुगल विघ्नों के विनाश के लिये अनल तुल्य हैं। न केवल उन्हें देवगण किन्तु दानव भी वन्दना करते हैं। न केवल वे सर्वत्र अप्रतिहत निज तेज से बाहिरी अन्धकार मात्र को फाड़ते हैं बरन सेवक के अन्तःकरण में वर्तमान गाढ़ अन्धकार को भी अपने किरणों के समूह से नष्ट कर देते हैं। मैं भी उन की वन्दना करता हूं।

---

* इस पुस्तक की समाप्ति में बनने का शक दिया है। यथा—

"शाके रामाश्ववाहेन्दुमाने सिंहगते रवौ।
शब्दार्थरत्नं सम्पूर्णं तारानाथविनिर्मितम्॥"

अर्थात्—तारानाथ का बनाया शब्दार्थ रत्न शक १७७३ में सिंहराशि पर सूर्य के रहते (अर्थात् भाद्र मास में) बन के संपूर्ण भया।

वास्तव में राधाकान्तदेव विविध विद्या विशारद और सर्वगुणगणालंकृत थे।

स्मृतिरत्न काव्य की समाप्ति में अपना परिचय यों देते हैं—

" इति महामहोपाध्यायमहाराजाधिराज सभास्तारवरश्रीयुक्तकान्तिचन्द्र सिद्धान्त शेखर भट्टाचार्यमहाशयात्मजश्रीक्षेत्रपालभट्टाचार्य विरचिता राधाकान्तचम्पूः समाप्ता।" अर्थात् महाराजाधिराज श्रीराधाकान्तदेव के सभासद् श्रेष्ठ महामहोपाध्याय श्रीक्षेत्रपालभट्टाचार्य की जो श्रीयुत कान्तिचन्द्रसिद्धान्तशेखर भट्टाचार्य महाशय के पुत्र हैं बनाई राधाकान्तचम्पू समाप्त भई।

ये वर्द्धमान प्रान्तान्तर्वर्त्ती गुप्तिपाड़ा ग्रामनिवासी ৺ बाणेश्वर विद्यालङ्कार के वंशज बहुत गुण गौरवापन्न चतुर्भुज न्यायरत्न महाशय के पोते हैं।

शक १७७५ में राधाकान्त चम्पू बनी और १७८० शक में छपी।

बाबू नीलरत्न हालदार।

पहिले इन का निवास कलकत्ते के पास चूंचुड़े में था। इन ने नाना देशभाषाओं में विशेष अभ्यास किया था। तिस का परिचय इन के सङ्कलित बहुदर्शन नाम पुस्तक पढ़ने से मिलता है। तद्व्यतिरिक्त श्रीमद्भागवत की श्रुतिस्तुति और दुर्गापाठ के चतुर्थाध्याय वाली शक्रादिस्तुति का भी उल्था बङ्गाली में किया। "श्रुतिगानरत्न" और "पार्वतीगीतरत्न" ये भी दो ग्रन्थ इन के बनाये हैं। भगवद्गीता का "गीतागीतरत्न" नाम उल्था बङ्गाली में करने लगे थे पर पूरा नहीं कर पाये। इन की रची इन सब पुस्तकों के देखने से स्वीकार करना पड़ता है कि ये भी एक सुकवि थे। "श्रुतिगानरत्न" शक १७७५ में छपा। उस के आरम्भ के गीत का ध्रुवपद यह है—

" नत्वा श्रीधर सुविमलचरणम्। दृष्ट्वा श्रीधरटीका रचनम्" अर्थात् श्रीधर (विष्णु) के अति पवित्र चरण को प्रणाम कर श्रीमद्भागवत पर श्रीधरस्वामिकृत टीका की वचनरचना देख कर इत्यादि। " जय नारायण करुणासिन्धो। जय जय कृष्ण पतितजनबन्धो" हे करुणासागार पतितजन के सहाय कृष्णनारायण आप का जय जय जय हो इत्यादि।

"पार्वतीगीतरत्न" शक १७७६ में छपा। उस का ध्रुवपद यह है—

"जयनारायणि जय जय दुर्गे। जय पार्वति मासीद(?) सुदुर्गे॥" इत्यादि।

अर्थात्—हे दुर्गे नारायण पार्वति वार २ तेरे जय हों। अति अलंघ्य संकट में पड़ा हूं। इस वेला तू बैठी मत रह।

बाबू विश्वम्भर पानि।

ये हुगली प्रान्तान्तर्वर्त्ती सेनहाट नाम ग्राम में शक १७०७ में जन्मे और जन्म भर सत्कर्म में बिताया। ऐसे ही लोगों का नरदेह धारण सफल समझना चाहिये। इन का देहान्त कलकत्ते में मिति शक १७७६ आषाढ़ के सौर सत्ताईसवें दिन हुआ।

इन ने शक १७३७ में बंगभाषा में "जगन्नाथ मंगल" नाम पुस्तक रची। पश्चात् थोड़ेही दिनों में संस्कृत भाषा सीखी। कई एक संस्कृत पुस्तकों के आधार ले बंगाली में "वृन्दावनप्राप्त्युपाय", "प्रेमसम्पुट", "भक्तरत्नमाला"; और 'कन्दर्पकौमुदी' * ये पुस्तकें बनाईं। उन में कहीं२ बीच में संस्कृत की रचना भी भरते गये हैं। आगे चल के आप भी संस्कृत काव्य रचना में पटु हुए। तब गोविन्दलीलामृत नामक ग्रन्थ के उतारे में कृष्णकेलि वर्णनात्मक संस्कृत में 'संगीतमाधव' नाम काव्य बना के अपना मनोरथ सफल किया। इस में भजन के पद्य भी हैं। उसी से इस का नाम संगीत माधव रक्खा। इस के आरम्भ का श्लोक यह है—

" श्रीगुरुं करुणासिन्धुं सर्वशक्तिप्रदं विभुम्।
तत्त्वातीतं सर्वतत्त्वस्वरूपं प्रणमाम्यहम्॥ "

अर्थात्—सर्वशक्ति अथवा सब को शक्ति देने हारे करुणासागर श्रीगुरु को जो प्रकृति आदि तत्त्वों से परे और सर्वतत्त्व स्वरूप आप सर्व व्यापक हैं; मैं प्रणाम करता हूं।

यह पुस्तक शक १७६९ में प्रस्तुत हुई। यथा—

" शाके ग्रहर्त्वर्णवरोहिणीशे श्रीराधिकाजन्मदिनेऽतिपुण्ये।
हीनेन विश्वम्भरदासकेन संवर्णितोऽभूदतियत्नतो वै॥"

अर्थात्—तुच्छ जीव विश्वम्भरदास ने बड़े यत्न से शक १७६९ में परम पुनीत राधा की जन्म तिथि को भलीभांति से यह वर्णन बना के सम्पूर्ण किया।

छपने की मिति शक १७८२ है।

---

* "वृन्दावन प्राप्त्युपाय" पद्मपुराण के पाताल खण्ड का और "प्रेमसम्पुट" विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत पुस्तक का उल्था है। "भक्त रत्नमाला" में नाना ग्रन्थों से भगवद्भक्तों के चरित्र सङ्कलित कर संनिवेशित किये हैं। "कन्दर्प कौमुदी" शृंगाररसात्मक काव्य है।

कविकेशरी।

यह उपनाम है। इन के मूल नाम धाम का पता नहीं। इन ने तोटक छन्दों में कृष्णलीलामयी 'हरिकेलिकलावती' नाम पुस्तक बनाई है। उसे श्रीयुक्त भीमलोचनसंन्याल की आज्ञा से श्रीयुक्त पीताम्बरशर्मा ने संशोधनकर शक १७८२ में मुद्रित कराया।

७ कृष्णचन्द्र (कालाचान्द) शिरोमणि।

इन ने नन्ददुलारे की अर्चामूर्त्ति की स्तुति में 'पुष्पमाला' नाम एक छोटी सी पुस्तक बनाई है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"श्रीमन्नन्ददुलाल यामि शरणं त्वामेव देवं परं
संसारार्णवकर्णधार करुणाधार प्रभो तारय।
भज्जन्तं भववारिधौ बहुविधैर्भारैरसंतारकं
यादांसीव बुभुक्षया परिजनाः संमज्जयन्तीह माम्॥"

अर्थात्—हे दयानिधे प्रभो नन्द दुलारे! संसार सागर में नाना प्रकार के भार धारण किये मैं बूड़ता हूं। कोई पार करनेहारा (कनहार) नहीं है। जो परिजन हैं वे भूखे जल जन्तुओं के तुल्य खाऊ घाऊघफ यहां मुझे और भी बुड़ाते हैं। यहां देवदेव तुम ही केवल नाव पार खेव ले जाने वाले केवट हो। मै तुम्हारेही शरणागत हूं। मुझे पार पहुंचाओ॥

इन शिरोमणि भट्टाचार्या महाशय की निवासभूमि कलकत्ते के पास चाणक नाम ग्राम है। पुष्पमाला १७८४ शक में छप के प्रकाशित हुई।

श्रीताराकुमार चक्रवर्त्ती।

ये कलकत्ते के संस्कृत कालेज के विद्यार्थी हैं। इन ने शिवशतक बनाया है। उस के आरम्भ का मङ्गलश्लोक यह है—

"मूर्द्धप्रोद्भासिगङ्गेक्षणगिरितनयादुःखनिश्वासपात-
स्फायन्मालिन्यरेखाच्छविरिव गरलं राजते यस्य कण्ठे।
सोऽयं कारुण्यसिन्धुः सुरवरमुनिभिः स्तूयमानो वरेण्यो
नित्यं पादयायायात् सततशिवकरः शङ्करः किङ्करं माम्॥"

अर्थात्—सर्वश्रेष्ठ, करुणासागर, सर्वदा कुशलक्षेमकर्त्ता शंकर जिन की स्तुति देव श्रेष्ठ और मुनिगण करते रहते हैं। मुझ सेवक की सदा

जोखिमों से रक्षा किया करें। शिव के गले में जो विषपान का काला चिन्ह दिखाई देता है; उस पर उत्प्रेक्षा की जाती है कि शिव के शिर पर शोभमानगङ्गा देख २ पार्वती को सौतिया डाह होता है; उसी ज्वलन से उन के मुख से दुःख की घनी २ उसासें निकला करती हैं; उन्हीं के बार २ लगते रहने से शिव का गला मानो काला पड़ गया है।

इन ने पुस्तक की समाप्ति में अपना परिचय दिया है और ग्रन्थ बनने का समय भी बतलाया है। यथा—

"शाके सुहृद्वसु सरित्पतिकान्तमाने
ध्यात्वा हृदा पदयुगं द्विजराजमौलेः।
श्रीकृष्णमोहनशिरोमणि सूरिज श्री-
ताराकुमाररचितं शतकं समाप्तम् ॥"

अर्थात्—हृदय में चन्द्रमौलि शिव के चरणयुगल का ध्यान धर के पण्डित श्रीकृष्ण मोहन शिरोमणि के पुत्र श्रीताराकुमार ने शक १७८६ में यह शिवशतक बना के समाप्त किया।

यह पुस्तक इसी शक में छपी।

इन ने गौड़ भाषा में "जीवनमृगतृष्णा" नाम एक और पुस्तक बनाई है।

श्रीप्राणकृष्णद्विज।

इन ने संस्कृत "शिवशतकस्तोत्ररत्न" नाम एक पुस्तक रची। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

"गुणातीतेऽपीशा गुणिनि गुणमय्या गुणवशात्
गुणीति प्रत्युक्त्या गुणविदनुशास्ति श्रुतिगणः।
यतो निस्त्रैगुण्ये क्वचिदपि न वृत्तिर्गुणविदा-
मतस्त्वां संस्तोतुं सगुण विगुणोऽपि प्रभवति ॥"

अर्थात्—हे सगुण मूर्त्ते भगवन् आप माया के गुणों से परे हैं; तथापि सत्त्व रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की समष्टिमयी जो माया शक्ति है, उस के गुणों से निर्लिप्त रह के भी आप माया के अनिर्वचनीय योग से माया की सृष्टि के लिये जो तनिक ताक देते हैं; उसी से उपचार से माया के गुणपर्यन्तही पहुंच रखनेहारे वेदवाक्यसमूह आप को सगुण कह के अधिकारियों के प्रति अनुशासन करते हैं। कोई कैसी भी गुणों की पहिचान रखता हो पर कदापि माया के तीनों गुणों से परे आप के परम धाम के निरूपण में कुछ व्यापार प्रयोग नहीं कर सकता है। इस लिये वह भी सगुण ही के

कथन में प्रवृत्त हो सकता है परन्तु यह भी शपथ नहीं है कि गुणवेत्ता ही सगुण के गुण गान करे गुणरहित जन न करने पावे।

इन ने न तो खोल के अपना परिचय दिया और न पुस्तक बनाने की मिति बतलाई। पुस्तक की बनावट देखने से प्राचीन रचना जंचती है। पुस्तक की समाप्ति में केवल एक श्लोक में इन ने अपना नाम सूचित किया है। यथा—

"इति शिवशतकं श्रीप्राणकृष्णाद्द्विजेन
व्यरचि नियतनुत्नं स्तोत्ररत्नं सयत्नम्।
सुविहितशिवपूजा पूर्वमेतस्य पाठा-
दखिलफलविधाता श्रीशिवः प्रीतिमेति॥"

अर्थात्—श्रीप्राणकृष्ण ब्राह्मण ने यत्नपूर्वक यह शिवशतक निर्माण किया। जो इसे पाठ करेगा उसे यह उबीठेगा नहीं किन्तु नित्य नवीन प्रिय बोध हुआ करेगा। शास्त्रोक्त विधि अनुसार शिवपूजन अनन्तर इस स्तोत्र के पाठ करने से प्रसन्न हो के श्रीशिव पाठकर्त्ता के सकलमनोरथों को सफल करेंगे।

श्रीयुक्त बाबू हितलाल मिश्र।

इन का निवासस्थान वर्द्धमान के अन्तर्वर्त्ती राईपुर नामक ग्राम में है। ये कनौजिया ब्राह्मण और वर्द्धमान के महाराज के पुरवैनी गुरुवंशज हैं। भगवद्गीता पर श्रीधरस्वामि कृत जो सुबोधिनी टीका है, उस का इन ने बङ्गाली में उल्था किया है। उस के आरम्भ में कई एक संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं और रामगीता पर इन ने संस्कृत तिलक किया है। उस के मङ्गलाचरण का श्लोक देखने से द्योतित होता है कि ये भी एक कवि थे।

भगवद्गीता वाले उल्थे के मङ्गलाचरण का श्लोक यह है—

बन्दे कृष्णं सुरेन्द्रं स्थितिलयजनने कारणं सर्वजन्तोः
स्वेच्छाचारं कृपालुं गुणगणरहितं योगिनां योगगम्यम्।
द्वन्द्वातीतं कमन्तं (?) हरमुखविबुधैः सेवितं ज्ञानरूपं
भक्ताधीनं तुरीयं नवघनरुचिरं देवकीनन्दनं तम्॥

अर्थात्—भक्तपरवश, नवघनसदृश मनोहर, श्यामशरीर, कृपालु, माया के गुणों से निर्लिप्त, निरञ्जन योगियों की योगसमाधि में ध्यानगम्य,

सुख दुःखादि द्वन्द्व से रहित, आनन्द ज्ञानघनमूर्त्ति, शिवादि देव देव सेवित देवकीनन्दन श्रीकृष्ण प्रसिद्ध देव देव की वन्दना मैं करता हूं। सब प्राणियों की सृष्टि, स्थिति, और प्रलय स्वेच्छाचार से वे करते हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन चारों में तुरीय उन्हीं की संज्ञा है। अन्त में उन्हीं में सब लीन होते हैं।

शक १७७५ में यह उल्था पूरा हुआ। यथा—

" मेये मार्गणसिन्धुसिन्धुविधुभिः शाके सतां संमुदे
गीतार्थः प्रकटीकृतः कृतिमता बाचानया भाषया ।
यत्नाच् श्रीहितलालभूसुरवरेणैषोऽपि दोषाकुलो
विद्याकीर्तिमतां कृपालुविधितो ग्राह्यत्व मागच्छतु ॥"

अर्थात्—रचनाचतुर विप्रवर श्रीहितलाल ने सज्जनों के आनन्दार्थ शक १७७५ में गीता का अर्थ बंगाली बोली में यत्नपूर्वक उल्था करके प्रकाश किया। यद्यपि यह दोषों से भरा हो तथापि विद्या में जिन्हों ने कीर्ति उपार्जित की है वे कृपालुता के ढंग से इसे ग्रहण करें।

रामगीता के संस्कृत तिलक का मंगलाचरणवाला श्लोक यह है—

" शेषाशेषमुखव्याख्या कौशलं त्वेकवक्त्रतः ।
दधानमद्भुतं वन्दे रामं शेषोपदेशिकम् ॥"

अर्थात्—शेष अपने सहस्र मुखों से जैसी व्याख्या करते हैं वैसी व्याख्या अपने एक ही मुख से करने में अद्भुत समर्थ कुशल रामनामक महातमा की जिन के उपदेशक शेषनाग थे मैं वन्दना करता हूं।

शक १७८१ में यह टीका पूरी हुई और १७८३ शक में छपी। यथा—

"श्रीरामगीताटीकेयं कृता नाम्ना हितैषिणी ।
शाके चन्द्रगजाश्वेन्दुमिते तद्देवप्रीतये ॥"

अर्थात्—श्रीरामदेव के प्रीत्यर्थ १७८१ शक में श्रीरामगीता पर यह हितैषिणी नाम की टीका बन के समाप्त भई।

श्रीयुत नन्दकुमार शर्मा।

इन का निवासस्थान नवद्वीप है। इन ने "राधामानतरङ्गिणी" नाम एक पुस्तक रची। सो अब तक नहीं छपी है। उस के आरम्भ का श्लोक यह है—

" भूभारावतरार्थमिन्द्रविधिवाग्देवादिभिः प्रार्थितः
पूर्णब्रह्मसनातनोऽपि तनुधृक् श्रीरामचन्द्रः प्रभुः ।

ध्यात्वा तच्चरणारविन्दयुगलं श्रीनन्दनन्दप्रदा
राधामानतरङ्गिणी विरचिता श्रीनन्दमानप्रदा ॥"

अर्थात्—इन्द्र, ब्रह्मा और बृहस्पति इत्यादिकों की प्रार्थना से सनातन, पूर्णब्रह्म प्रभु श्रीरामचन्द्र भूमिभार हरणार्थ शरीर धारण कर अवतीर्ण हुए। उन के चरणकमलयुगल का ध्यान करके श्रीलक्ष्मी के आनन्ददायक विष्णु को आनन्द देनेहारी "राधामानतरङ्गिणी" नाम पुस्तक बनाई। जो इसे पढ़ेगा उसे धन, सुख और आदर मिलेंगे।

"शैलचन्द्ररसरसाशाके मानतरङ्गिणी।
श्रीनन्देन कृता माघे नन्दानन्दप्रदायिनी ॥"

अर्थात्—सात के पूर्व में एक धरो फिर छ के अनन्तर एक धरो। यों १७६१ होते हैं। इसी १७६१ अंक के शक के माघमास में श्रीनन्दकुमार ने "राधामानतरंगिणी" बनाई। इस के निर्माण से नन्दा अर्थात् राधा आनन्दित हों।

जान पड़ता है कि यह पुस्तक शक १७६६ में बनी होगी पर श्लोक में विन्यस्त शब्दों से उल्लिखित मिति में कुछ गड़बड़ पड़ती है कि नहीं इस का उधेड़ बून करने का भार पाठक महाशयों के ऊपर आरोपित है।

सुनते हैं कि इन ने "हंसदूत" नामक एक और भी काव्य बनाया है पर हमारी दृष्टि तले वह नहीं आया। इस काव्य के किसी श्लोक का एक देश मेरे कान में पड़ा। उस से बूझ पड़ता है कि इन को उत्प्रेक्षा करने की अच्छी बुद्धि थी। यथा—

" मृदु मृदु श्वासेन हंसध्वनिः "

अर्थात्—कोई जन हंस से कहता है कि इस समय श्रीमती विरहिणी और कुछ नहीं कहती है। केवल उस की मृदु २ सांसद्वारा हंसध्वनि हो रही है (इसलिये हम तुम्हें संवाद देने आये हैं)।

श्रीयुक्त रामदयाल तर्करत्न।

ये वर्द्धमान के महाराज के परम आदरपात्र पण्डित हैं। इन की निवासभूमि भाटपाड़ा है। " अनिलदूत " नाम एक खण्ड काव्य इन का बनाया है। किन्तु आज तक वह सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

इस काव्य के आरम्भ का श्लोक यह है—

"श्रीमत्कृष्णे मधुपुरगते निर्मला कापिबाला
गोपी नीलोत्पलनयनजां वारिधारां वहन्ती।

म्लानिर्व्याप्त्या शशधरनिभं धावयन्ती तदास्ये
गाढ़ प्रीतिच्युतकृतजरा निर्भरं कातराभूत् ॥"

अर्थात्—कोई बालागोपी जो पहिले रूपवती तरुणी थी, श्रीकृष्ण के मथुरा सिधार जाने पर गाढ़ी प्रीति के विच्छेद से जनित शोक के दुःख से जर्जर और निपट कातर हो के नीलकमल तुल्य नयनों से इतनी अश्रुजलधारा बहाने लगी कि उस से चन्द्र सदृश मुख की कान्ति धुलकर म्लान पड़ के वह युवावस्था ही में जराग्रस्त सी हो गई। *

श्रीयुत अम्बिकाचरणदेव शर्मा।

ये कलकत्ते के हथियाबाग़ वाले प्रसिद्ध श्रीयुक्त.........महाशय के पुत्र हैं। इन की पूर्वनिवासभूमि वर्द्धमान प्रान्तान्तर्वर्त्ती उपलातिबड़ा ग्राम है। इन ने 'पिकदूत' नाम एक खण्डकाव्य बनाया। वह आज तक सर्वसाधारण के निकट प्रकट नहीं हुआ। उस के प्रारम्भ का श्लोक यह है:—

"कुञ्जं कूजन्मधुकरकुलैः सङ्कुलं गोपकान्ता
काचित्फुल्लत्कमलनयना गच्छदङ्गप्रधाना।
तस्मिन्नेकं मधुरवचनं कोकिलं पादपस्थं
दृष्ट्वाहृष्टावददिदमसौ कृष्णवत्कान्तिभाजम् ॥"

अर्थात्—प्रफुल्ल कमलतुल्य बदनी कोई ग्वालिनी कोकिलों की कूक और भ्रमरों के गुञ्जार से व्याप्त निकुञ्ज में एकली निकल कर चलीगई। वहां श्रीकृष्ण के देह के रंग की नाईं काले रंग के कोकिल को पेड़ पर बैठ कर मञ्जुल कूजन करता देख के हर्षित हो यह कहने लगी।

श्रीयुक्त तारकनाथ तर्करत्न।

ये वर्द्धमान के महाराज के प्रधान मन्त्री हैं। इन की निवासभूमि हुगली प्रान्तान्तर्वर्त्ती वंशवाटी नाम ग्राम है।

यद्यपि इन ने कोई काव्यग्रन्थ नहीं रचा तौ भी इन की जो छुटफुट उद्भट कविता कर्णगत हुई उसी से स्वीकार किया जाता है कि ये एक महाकवि हैं। इन के रचित दो श्लोक नीचे दर्सायें जाते हैं। यथा—

---

* इस स्थल पर पाठक लोग विचार करें कि क्या यह रसाभास नहीं है? (अनुवादक)

" यं जानन्तिभिदाजड़ा विभुरिति प्रायेण नैयायिकाः
सांख्याश्छागगलस्तनोपममसुं पातञ्जला इत्यपि।
काणादाः सहकारणं प्रतिभुवं कार्येषु मीमांसकाः
कोऽप्येकाजयति भ्रमाश्रयतयास्त्वात्मेति वेदान्तिनः ॥ "

अर्थात्—ईश्वर और जीव में भेद है; इस मत पर आस्था रखनेवाले जड़ बुद्धि लोग विशेष कर के नैयायिक ईश्वर को व्यापक जानते हैं। कापिलसाङ्ख्य मानने वाले लोग उसे पुरुष बोल कर कुछ भी न करने धरनेवाला बतलाते हैं। साङ्ख्य के एक देशी पातञ्जल योग मत के विश्वासी लोग उस को लगभग कापिलों ही के तुल्य मानते हैं, इन दोनों साङ्ख्य प्रस्थानवालों के मत में ईश्वर न केवल निरर्थक प्रत्युत बकरे के गले में लटकते स्तन की नाईं संसार के पक्ष में भारभूत प्रतीयमान होता है। वैशेषिक दर्शनवाले लोग ईश्वर को प्रत्येक कार्य का काल आदि की नाईं साधारण कारण मानते हैं। पूर्व मीमांसा माननेवालों के एक देशी लोग कर्म के उत्पद्यमानफलों के प्रति भगवान को प्रतिभू अर्थात् जामिन्दार स्वीकार करते हैं। वेदान्ती लोग बतलाते हैं कि वह ईश्वर कोई हम जीवों का एक ही आत्मा विराजमान है; जिस के अज्ञान के आश्रय जीवगण हैं।

दूसरा श्लोक यथा :—

" स्थाणुस्त्वं स्वयमेव हे पशुपते पुत्रो विशाखोऽपि ते
किञ्च त्वञ्च जटालवालसलिलो योषाप्यपर्णा तव।
त्वत्तः किं फलमश्नुमो भुवि वयं किंवा त्वया दीयते
जानीमस्त्वदुपासनेन सुचिरं जन्मक्षयः केवलम् ॥ "

अर्थात्—हे पशुपत शिव तुम आप स्थाणु * हो। तुम्हारा बेटा विशाख (स्कन्द का नाम) है पक्षान्तर में अक्षरार्थ शाखा रहित ठूंठा है। तुम्हारी जटा रूपी थाले में गङ्गाजल है (तात्पर्य जिस की जड़ में थाबा जल से भरा हो वह पेड़ फल दे सकता है।) स्त्री तुम्हारी अपर्णा (पार्वती का नाम) है पक्षान्तर में पत्र रहित है। पृथ्वी में तुम हमें क्या फल देओगे और क्या तुम से हम पावेंगे। हम यही जानते हैं कि तुम्हारी सदा सेवा करते रहना क्या है। निरा जन्म गंवाना (मोक्षप्राप्ति) है।

---

* प्रलय में भी स्थित रहने से शिव को स्थाणु संज्ञा है। ठूंठे पेड़ के डूंड़ को भी स्थाणु कहते हैं। (अनुवादक)

श्रीयुक्त महेशचन्द्र तर्करत्न।

ये दीनाजपुर के राजवंश के पुरोहित के पीढ़ीजात सन्तान हैं। इन ने पढ़ने की दशा में नादिया में विद्याभ्यास किया। इन की बनाई संस्कृत में 'काव्यपेटिका' है। इस (काव्य) के आरम्भ का श्लोक यह है—

"मञ्जीररणितमधुरैः सरसैर्भावान्वितैः पदन्यासैः।
मुखरङ्गेषु कवीनां गिरो नवीनाः प्रनृत्यन्तु॥"

अर्थात्—कवियों के मुखरूपी रंगस्थलों में नवीन कविता वाणीरूपी नटियां अच्छी नाच नाचें। नटियां रस भाव से भर कर ठमक २ पांव धरती हैं और उन के पांवों में घुघुरू मधुर शब्द करते हैं। कवियों की वाणियां भी घुघुरू के शब्द सदृश मधुर, रसभाव युक्त पद विन्यासवाली होती हैं *—

इस काव्य में इन ने अपने नाम की छापदी है। यथा—

"अभिनवभावपरीता कृतिरविगीता महेशचन्द्रस्य।
जनयतु विदुषां तोषं चिरमेषा काव्यपेटिका नाम॥"

अर्थात्—महेशचन्द्र की यह रचना अपूर्व भावों से भरी निर्दोष है। इस का नाम 'काव्यपेटिका' है। विद्वानों के चित्त में चिरकाल लों सन्तोष उत्पन्न करती रहे।

इसे छोड़ बङ्गभाषा में 'निवातकवचवध' आदि काव्य इन के बनाये हैं। ये बङ्गला १२४८ संवत् में दीनाज़पुर में जन्मे।

श्रीयुक्त गोविन्द कान्त विद्याभूषण।

इन ने "लघुभारत" और "गोविन्दनामामृत" दो ग्रन्थ रचे हैं।

---

* बङ्गाली १२७७ संवत् में (काव्यपेटिका) पहिले छपी। ऊपर उक्त श्लोक पहिलीवार के छापे का प्रथम श्लोक है। दूसरी वार के छापे में यह श्लोक द्वितीय श्लोक हुआ है। अबकी वार उस का प्रथम श्लोक यह है—

'जयतिकविकण्ठवीणावादननिपुणा कलावती वाणी।
पादन्यासैः सयतिभिरुपादिशच्छन्दसां तालान्॥' प्रकाशक।

अर्थात्—कवियों के कण्ठरूपी वीणा के बजाने की विद्या कला में प्रवीणवाणी जय को प्राप्त होती है; जिस ने छन्दों की रचना में ठीक ठिकाने विरामवन्त चरण विन्यास रूपी तालों का उपदेश दिया।

श्रीयुक्त चन्द्र कान्त तर्कालङ्कार ।

इन का निवास स्थान शेरपुर है। इन ने 'सतीपरिणय' 'तत्त्वावली' और 'प्रबोधशतक' आदिक बहुत से काव्य बनाये हैं। सतीपरिणय काव्य का प्रथम श्लोक यह है—

"यद्यात्मतत्त्वं यतयो गतेहा विन्दन्तिसाक्षात्क्षतपुण्यपापाः ।
अगम्यमप्यातमाविशेषगम्यं परात्परं तत्परिचिन्तयामि ॥"

अर्थात्—

निष्कामयोगिर्जिहिं दुर्लभ, शुद्धचित्त-
वृत्त्येकगम्य, सब से पर, ध्याइ साक्षात् ।
प्रत्यक्षकै सुकृतदुष्कृत बन्धमुक्त
हो जातु हैं हमसु आत्म सतत्त्व ध्यावैं ॥ १ ॥

यह काव्य बंगला १२७८ संवत् श्रावण की सौर द्वितीया को अर्थात् १८११ खीष्टाब्द की १७वीं जुलाई को पहिले पहिल छपा।

संस्कृत कोकिलदूत के रचयिता * (~ हरिमोहन प्रामाणिक)

हम ने सब के अन्त में इस खण्ड काव्य का नाम स्पष्ट लिख दिया है। इस के रचयिता का नाम कवियों की श्रेणी में डालते डर लगता है। यद्यपि इस की काव्यादिकृति में यथोचित परिशीलन देख बहुतेरे लोग परितोष को प्राप्त हुए हैं तौ भी क्या यह कवि पद भागयोग्य हो सकता है? संस्कृत में उबखान है—

"द्युतिमात्रेण खद्योतः किं खद्योतसमोभवेत्"

अर्थात्—क्या केवल तनिक चमक देने से जुगनू सूर्य की समसरिका हो सकता है?

यह काव्य शक १७७७ में बना और १७८५ शक में छपा। यथा—

" [illegible] शके देवप्रसादतः ।
[illegible] काव्यामृतं गवि ॥"

अर्थात [illegible] त पृथ्वीतल में. कोकिलदूतकाव्यामृत शक १७७ [illegible]

---

* प्रथम माघ कवि का भी बनाया संस्कृत में एक कोकिल दूत काव्य है (अनुवादक)

इस का मङ्गलाचरण श्लोक यह है—

"वृन्दावृन्दमरन्दविन्दुनिचयस्यन्देन सन्दीपिता-
द्गन्धाद्यस्य सनन्दनादिरमृतानन्देऽपि मन्दादरः ।
मोक्षानन्दथुनिन्दि सेवनसुखस्वाच्छन्द्यसन्दोहदं
तद्वन्देमहि नन्दनन्दनपदद्वन्द्वारविन्दं मुहुः ॥"

अर्थात्—मोक्षानंद की भी निंदा करनेहारे नंदनंदन के उन चरण कमल युगल की हम बंदना करें। कैसे हैं वे चरण कमल युगल जिन के सेवन से सुख लाभ में अविच्छिन्न स्वच्छंदता प्राप्त होती है। फिर कैसे हैं? अपने पर अर्पित तुलसी की मञ्जरी पुञ्जों से झरते मकरंद बिंदुओं के रस के सुवास से चटकीले भये अपने सुगंध से जो सनंदन आदिकों के अमृत पान जनित आनंद की चास को मिटा देते हैं।

इस ग्रंथ का आरंभ इस श्लोक से होता है—

"वृन्दारण्यान्मधुपुरमिते माधवे तस्य पश्चा-
दायास्यामि त्वरितमितिवाग्वीजसम्भूतमेकम्।
आशावृक्षं नयनसलिलैः सिञ्चती वर्द्धयंती
राधा बाधाविवशहृदया यापयामास मासान्॥"

अर्थात्—मैं शीघ्र लौट आऊंगा ऐसा धैर्य दे कर वृन्दावन से जब माधव मथुरा को चले गये, तब उन के वचनरूपी बीज जनित एक आशा रूपी वृक्ष को नयन जल से सींच २ संवर्द्धित करती बिरह वेदना से विह्वलमना राधा मासों को बिता ले चली।

यद्यपि इस काव्य की समालोचना तत्त्वबोधिनी पत्रिका, सोमप्रकाश पत्र, एजुकेशन गेज़ेट और रहस्यसंदर्भ आदि पत्रों के सम्पादक तथा अपरापर सहृदय महोदय लोग कर चुके हैं और उन से इसे समादर भी मिला है, तौ भी दोषगुण के विवेक में सुदक्ष विचक्षण विद्वानों के ऊपर भी इस का भार अर्पित है। *

॥ सम्पूर्णम् ॥

---

* संस्कृत श्लोकों का उल्था मूल पुस्तक में अधिकांश का नहीं हुआ था परन्तु अनुवादक ने हिन्दी में किया है।